सन्त नामदेव

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ अन्नपूर्णा ®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से 9
पाठकों से निवेदन 11

जीवन 13
- नामदेव के गुरु 16
- निजी जीवन पर रचनाएँ 25
- उत्तर भारत की यात्रा 32
- देहान्त 33
- वाणी 34

सन्देश 36
- संसार और शरीर की असलियत 37
- कर्म तथा फल 44
- मन और इसके विकार 50
- मन को वश में करने का उपाय: सन्तों की शरण 58
- मनुष्य-जन्म 60
- परमात्मा 68
- प्रभु की खोज 81

सतगुरु 90
प्रभु-प्राप्ति का साधन – प्रभु का नाम 108
नाम की साधना 124
प्रभु का प्रेम, प्रभु की भक्ति 143
रज़ा, शरण और प्रार्थना 161
सार 178

संकलित रचनाएँ 181
हे प्रभु, तू मेरी माता है 181
राम अभै पद दाता 182
काल भै बापा सहया न जाइ 182
सो भजि परि है गुर की सरना 183
कांइ रे मन विषिया बन जाहिं 184
राम रसायन रसना चाषौं 184
रामची भगति दुहेली रे बापा 185
नामदेव प्रीति नराइंण लागी 185
तू ही कर्ता 186
कउन को कलंकु रहिओ राम नामु लेत ही 186
धृग ते बकता 187
सभ्य वेषधारी चोर 187
जागि रे जीव कहा भुलाना 188
निर्मल मन में ही परमात्मा निवास करता है 189
भाई रे इन नयननि हरि पेषो 189
कर नाम सिमरन, सुन शब्द-धुन 190
तुम बिनु घरि येक रहूं नहि न्यारा 191
तूं ह्वै मैं नहीं हौं मांधौ 191
राम को नामु जपउ दिन राती 192
सुख के सागर सतगुरु 193

जब देखा तब गावा 193
अपना पयांनां राम 194
दास अनिंन मेरो निज रूप 195
ऐसे जगथैं दास नियारा 195
हुआ जब प्रभु से मिलन 196
जिन पाया तिनही लुकाया 197
आन्तरिक अनुभव 197
देवा तेरी भगति न मो पै होइ जी 198
आन न जानौं देव न देवा 199
रांम सो नामा नाम सो रांमा 199
कोई बोलै निरवा कोई बोलै दूरि 200
नांम न बिसरूं एकौ घड़ी 200
जपि रांम नांम नर लै पुरी 200
नारांइंण सूं मन न रंजै 201
रांम तजि मेरौ मन अनत न जाई 202
देवा पाहन तारीअले 202
हरि हरि करत मिटे सभि भरमा 203
मो कउ तारि ले रामा तारि ले 204
हरि का नामु नित नितहि लीजै 204
रांम नांम खेती रांम नांम बारी 205
माई तूं मेरे बाप तूं 206
जौ बोलौ तौ रामहिं बोलि 206
रांमनाम मेरे पूंजी धना 207
ऐसे रामहिं जानौ रे भाई 207
ऐसे राम ऐसे हेरौं 208
पांणीया बिन मीन तलफै 208
जे न भजै नर नारांइना 209
लाधौ तौ लाधौ मैं राम नांम लाधौ 209

माधौ भीतरि मार दुहेली 210
लागी जनम जनम की प्रीति 210
इन औसर गोबिंद भजि रे। 211
माधो जी कहा करुं या मन कौ। 212
रामनांम मैं पिंड पषाल। 212
पांडे मोंहि पढावहु हरी 213

अंत्य टिप्पणी 214
सन्दर्भ-ग्रन्थ 230
पदानुक्रमणिका 233
हमारे प्रकाशन 237

जीवन

सन्त नामदेव जी का आगमन गुरु नानक साहिब से लगभग 200 वर्ष और कबीर साहिब से 130 वर्ष पूर्व हुआ। इस तरह आपको मध्यकाल के सबसे पहले निर्गुणवादी सन्तों में शामिल किया जाता है। आपके उपदेश की निर्गुणवादी सन्तों के उपदेश के साथ समानता के कारण ही आपकी वाणी श्री आदि ग्रन्थ में संकलित की गई है।

सन्त नामदेव जी भारत के उन पहले सन्तों में से हैं, जिनकी वाणी हमें आसानी से उपलब्ध है, पर उनके जीवन के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। मराठी, पंजाबी, हिन्दी और अंग्रेज़ी में उनकी कई जीवन कथाएँ लिखी जा चुकी हैं, पर उनमें कई बातें परस्पर-विरोधी हैं। आपकी कुछ रचनाओं में भी आपके जीवन के बारे में संकेत मिलते हैं। आपके समकालीन भक्तों की रचनाओं में भी कहीं-कहीं आपके बारे में उल्लेख है।

सर्वप्रथम अनन्त दास ने भक्त त्रिलोचन, भक्त पीपा, भक्त धन्ना, सन्त कबीर तथा गुरु रविदास के अतिरिक्त सन्त नामदेव जी के जीवन के हालात पर प्रकाश डाला। आपने 1588 ई. में नामदेव की 'परिचयी' में उनके जीवन के बारे में संक्षिप्त विवरण दिये हैं। इस परिचयी में ज़्यादा ज़ोर नामदेव जी के जीवन से जुड़ी करामाती घटनाओं के वर्णन पर दिया गया है। जनाबाई आपके परिवार में सेविका थी। उसके कुछ पदों से भी आपके जीवन और परिवार के सदस्यों के बारे में कुछ-एक संकेत मिले हैं।

सन् 1927 में ज.र. आजगांवकर ने गहन खोज के बाद सन्त नामदेव की पहली जीवनी लिखी। इसमें उन्होंने नामदेव के जीवन की ओर संकेत करनेवाली बहुत-सी रचनाओं को सन्देहपूर्ण बताया है। उनका मत है कि समय बीतने के साथ, न केवल जीवन के हालात में, बल्कि सन्त नामदेव जी की बहुत-सी कविताओं में भी बढ़ोतरी और फेरबदल होता गया। उनका यही मत नामदेव के समकालीन भक्तों की कृतियों के बारे में भी है।[1] आधुनिक युग के अन्य बहुत-से विद्वान भी आजगांवकर के मत से सहमत हैं। 1989 ई. में छपवाई गई विनंद एम. कॅलवर्ट तथा मुकन्द लाठ की रचना *नामदेव की हिन्दी पदावली* में भी गहन खोज के बाद उपरोक्त मत की ही पुष्टि की गई है। इसलिये यहाँ दी जा रही आपकी संक्षिप्त जीवनी में मुख्यत: सर्वमान्य घटनाएँ ही ली गई हैं।

सन्त नामदेव जी के एक अभंग (पद) से पता चलता है कि आपका जन्म महाराष्ट्र में 26 अक्तूबर, 1270 में हुआ।[2] आपके पिता का नाम दामाशेठ और माता का नाम गोणाई था। विद्वानों के अनुसार आपके जन्म-स्थान का नाम नरसी बामनी ग्राम है जो कि महाराष्ट्र में करहड के पास है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार यह स्थान मराठवाड़ा के परबणी ज़िले में है। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि नामदेव पंढरपुर में पैदा हुए। आपके पूर्वज दर्ज़ी (शिंपी)[3] थे। आपके पिता जी भी इसी व्यवसाय से उपजीविका कमाते थे और यही व्यवसाय नामदेव जी ने भी अपनाया।

बचपन से ही नामदेव की रुचि प्रभु की ओर थी। आपके परिवार के लोग विट्ठल की मूर्ति के उपासक थे। उनके बारे में एक कथा प्रसिद्ध है। आपके पिता दामाशेठ पूजा के समय विट्ठल की मूर्ति को दूध का भोग लगाते थे। एक दिन पिता को व्यापार के सिलसिले में कहीं बाहर जाना पड़ा। उन्होंने अपने पाँच वर्षीय पुत्र नामदेव को ताकीद की कि वह उनकी अनुपस्थिति में मूर्ति की पूजा करना और इसे भोग लगाना न भूले। इसलिये आपने पूजा के समय सोने की कटोरी में कपिला गाय का दूध लेकर विट्ठल की मूर्ति के आगे रख दिया। जब नामदेव ने मूर्ति की आराधना के बाद इसे दूध का भोग लगाया तो मूर्ति ने उसे छुआ तक नहीं। अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार नामदेव ने यह समझा कि मूर्ति रोज़ उनके पिता के द्वारा चढ़ाया हुआ दूध पी लेती

होगी। बालक नामदेव, विट्ठल के आगे बिलखते हुए कहते हैं कि दूध पीकर मेरे मन को प्रसन्न करो। यदि आपने दूध नहीं पिया तो मेरे पिता जी नाराज़ होंगे। इस परेशानी की हालत में वे बिलखने लगे। आपने आँसुओं की झड़ी लगा दी। आप सोच रहे थे कि आपसे कोई भूल हो गई है जिसके कारण विट्ठल की मूर्ति ने दूध का भोग स्वीकार नहीं किया। ऐसी मान्यता है कि जब आपने दूध पिलाने का हठ किया तो भगवान् विट्ठल बालक नामदेव की इस ज़िद के आगे झुक गए और उन्होंने दूध पी लिया और भगवान् ने निश्छल बालक को अपना दर्शन दे दिया। नामदेव जी अपनी वाणी में कहते हैं :

दूधु कटोरै गडवै पानी॥ कपल गाइ नामै दुहि आनी॥[4]
दूधु पीउ गोबिंदे राइ॥ दूधु पीउ मेरो मनु पतीआइ॥[5]
नाही त घर को बापु रिसाइ॥ सुोइन कटोरी अंम्रित भरी॥[6]
लै नामै हरि आगै धरी॥ एकु भगतु मेरे हिरदे बसै॥
नामे देखि नराइनु हसै॥ दूधु पीआइ भगतु घरि गइआ॥
नामे हरि का दरसनु भइआ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1163-64

इस घटना से आपके सरल स्वभाव का तो पता चलता ही है, साथ ही आपके दृढ़ विश्वास और अटूट निष्ठा का भी बोध होता है। ये दोनों गुण परमार्थ में उन्नति के लिये बहुत सहायक होते हैं।

नामदेव जी बहुत कोमलचित्त और दयालु थे। वे दूसरों का दु:ख सहन नहीं कर सकते थे। उन्हें हमेशा यह चिन्ता रहती कि उनके द्वारा किसी दूसरे को दु:ख न पहुँचे। कहा जाता है कि एक समय उनकी माता गोणाई को बहुत ज़ोर की खाँसी हो गई। गाँव के वैद्य ने उन्हें एक काढ़ा देने के लिये कहा। इस काढ़े में किसी वृक्ष की छाल भी पड़ती थी। नामदेव को छाल लाने के लिये भेजा गया। वृक्ष की छाल निकालने के लिये जब नामदेव ने कुल्हाड़ी वृक्ष पर चलाई तो उसमें से पानी रिसने लगा। नामदेव को ऐसे महसूस हुआ जैसे वृक्ष में से ख़ून बह रहा हो। वे वृक्ष का दु:ख सह न सके। उन्हें ऐसा लगा कि स्वयं उनके शरीर पर कुल्हाड़ी चला दी गई हो और

उसमें से रक्त बह रहा हो। वह बिना छाल लिये ही घर वापस लौट आए। इससे भी आपके हृदय की कोमलता और आपका दयाभाव प्रकट होता है।

नामदेव के गुरु

नामदेव का झुकाव बचपन से ही प्रभु-भक्ति और प्रभु-प्राप्ति की ओर था किन्तु युवावस्था तक उनकी किसी सन्त-सतगुरु से मुलाक़ात नहीं हुई। उन्हें ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर), निवृत्तिनाथ आदि भक्तों की संगति में रहकर मालूम हो चुका था कि परमार्थ में उन्नति के लिये गुरु का होना अनिवार्य है।

एक बार आपकी मुलाक़ात भक्त गोरा कुम्हार से हुई। भक्त ने नामदेव को समझाया कि गुरु के बिना तुम मिट्टी के कच्चे बर्तन के समान हो जो ज़रा-सी भी चोट से टूटकर बिखर जाता है। पहले तो नामदेव को यह बात बहुत बुरी लगी पर जब उन्होंने गहराई से इसके बारे में विचार किया तो आपको इसमें छिपे हुए सत्य का आभास होने लगा। आपके मन में गुरु से मिलाप की तीव्र इच्छा पैदा हो गई। आप गुरु की प्राप्ति के लिये प्रभु से प्रार्थना करते थे परन्तु आप यह बात समझ नहीं पाते थे कि गुरु को कैसे और कहाँ खोजें।

कहा जाता है कि नामदेव जी को अपने गुरु विसोबा खेचर जी के दर्शन नागनाथ[7] के मन्दिर में हुए। अपने गुरु से पहली मुलाक़ात का वर्णन करते हुए आप कहते हैं:

लेटा एक बूढ़ा कोढ़ी, देव के ऊपर कर पाँव, हो शान्त,
देख नामा, हुआ विस्मित, कैसा यह प्राणी! लेटा यूँ देव-निकट,
प्रभु पर रखे पाँव तूने, उठ तू उठ, अरे ओ अन्ध,
उठाया क्यों मुझे तूने नामदेव से बोला खेचर,
प्रभु से रिक्त कहाँ है कोई ठौर, नामा देख विचार कर,[8]
अंतर में कर विचार, जहाँ न हो प्रभु, पाँव मेरे रख वहाँ,
देखा नामा ने, हर जगह है प्रभु, रिक्त प्रभु से दिखा न कोई ठौर।

देवावरी पाये ठेउनि खेंचर
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1349

आप कहते हैं कि मन्दिर में जाने पर मैंने देखा कि एक बूढ़ा कोढ़ी भगवान् की मूर्ति पर पाँव रखकर लेटा हुआ है। आपको यह अधार्मिकता बहुत बुरी लगी। आपने उस कोढ़ी को बहुत बुरा-भला कहा और पाँव विठ्ठल की मूर्ति से हटाने को कहा। इस पर बूढ़े कोढ़ी ने कहा कि मैं बहुत कमज़ोर हूँ, मैं अपने पाँव नहीं हिला सकता, इसलिये तुम मेरे पाँव उठाकर वहाँ रख दो जहाँ परमेश्वर न हो।

अत्यन्त सरल ढंग से दिये गए इस साधारण किन्तु गूढ़ कथन का नामदेव के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वे एकदम चौंक गए। उनकी चेतनता जाग्रत हो उठी। उन्होंने सोचना शुरू किया कि वह प्रभु तो सर्वव्यापक है। कोई भी जगह प्रभु से ख़ाली नहीं है। इसके साथ ही उन्हें यह बात भी समझ में आ गई कि कोई मूर्ति उस सर्वव्यापी परमेश्वर का स्थान नहीं ले सकती।

नामदेव के हृदय से कोढ़ी के प्रति घृणा का भाव एकदम मिट गया। उनके हृदय में कोढ़ी के प्रति प्रेम का सागर उमड़ आया और उन्होंने अकस्मात् उनके चरणों पर अपना सिर रख दिया तथा परमेश्वर के बारे में ज्ञान देने और मार्ग सुझाने की प्रार्थना की। कोढ़ी ने अपना नाम विसोबा खेचर बताते हुए नामदेव से कहा कि मैं उठ नहीं सकता, इसलिये तुम मुझे उठाकर मन्दिर से बाहर ले चलो। नामदेव जी ने बहुत प्रेमपूर्वक वृद्ध को उठाया और बाहर ले आए और एक साफ़-सुथरे स्थान पर उसे बिठा दिया।

नामदेव जी यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि बूढ़े कोढ़ी के स्थान पर एक तेजस्वी सुन्दर व्यक्ति वहाँ बैठा प्रेमपूर्वक और दया-भरी दृष्टि से उनकी ओर निहार रहा है। विसोबा खेचर ने प्रसन्न होकर नामदेव को परमेश्वर-प्राप्ति के मार्ग का ज्ञान दिया। इस तरह नामदेव जी को प्रभु-भक्ति की सच्ची अन्तर्मुख साधना का ज्ञान प्राप्त हुआ। अब वे निगुरे अथवा मिट्टी का कच्चा बर्तन नहीं रहे।

नामदेव जी के गुरु विसोबा खेचर जी के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं मिलती परन्तु इतनी बात स्पष्ट है कि वे प्रभु-प्राप्ति के लिये पूजा के बाहरी साधनों को नहीं मानते थे। वे इस बात पर बल देते थे कि परमेश्वर शरीर में ही निवास करता है और उसके साथ अन्तर में ही मिलाप किया जा सकता

है। विसोबा खेचर जी के समकालीन भक्तों ने उन्हें मूर्ति-पूजा का कट्टर विरोधी बताया है। अपने एक पद में उन्होंने नामदेव से कहा:

इच्छा उमड़े तो जाता तीर्थ, मिटता न कभी अज्ञान।
देकर तन को व्यर्थ कष्ट, पाये ना चिर कल्याण।
ध्यान, धारणा, मुद्रा, जप, यम-नियम और करता तप।
कटे न इससे तेरे जन्म-मरण, कर एक भाव से आराधन।
पर-स्त्री जान माता, पर-द्रव्य पर रख न चित्त।[9]
मान इसे ही सार, कर गुरु-सेवा एकचित्त।
देंगे वे तुझे गूढ़-ज्ञान, होगा तुझे आत्मज्ञान।
मिटेंगे भ्रम, देह के शून्य भवन में दिखेंगे निरंजन।
दिखेगा सुन्दर प्रकाश, अहर्निश होगी सोऽहं गर्जन।[10]
साक्षात पायेगा परमेश्वर, होगा तुझे आत्मज्ञान।
सत्य न माने इसे जो नर, पाता फिर जन्म-मरण।
गुरु खेचर करें बिनती, नामदेव।
तज कोप [क्रोध] कर पूर्ण-पुरुष का ध्यान।

छंदे छंदे तीर्था जासी
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2

आप कहते हैं कि तीर्थों पर जाने से अविद्या का नाश नहीं होता। ध्यान, धारणा, मुद्रा, जप-तप, यम-नियम आदि द्वारा शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है, इससे जन्म-मरण समाप्त नहीं हो सकता। परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हो तो अन्तर में परमात्मा का ध्यान करो। अपना नैतिक जीवन सुधारो। पर-स्त्री को माता के समान समझो तथा पर-धन की ओर भी ध्यान मत जाने दो। गुरु की सेवा करो। गुरु तुम्हें आत्म-ज्ञान देगा और तुम्हारी भ्रांतियाँ दूर करेगा। जब गुरु के उपदेश पर चलोगे तो देह के शून्य भवन में प्रकाश प्रकट हो जाएगा, सोऽहं की ध्वनि गूँजती सुनाई देगी और परमेश्वर के दर्शन होंगे। खेचर कहते हैं कि हे नामदेव! काम, क्रोध आदि का त्याग करके उस परमपुरुष का ध्यान करो।

सतगुरु से दीक्षा तथा नाम के अन्तर्मुख अभ्यास की युक्ति प्राप्त होने के बाद नामदेव पूरी तरह बदल गए। आपका हृदय गुरु के प्रति कृतज्ञता और प्रेम से परिपूर्ण हो गया। अपनी कई रचनाओं में उन्होंने गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा के भाव प्रकट किये हैं। वे कहते हैं:

गुरु ने दिया मंत्र, धरा हाथ मस्तक पर,
नामा ने किया तन अर्पण, गुरु के चरणों पर,
गुरु विसोबा हैं प्रेम का अखूट भंडार,
अब और क्या तू चाहता, दे दिया जब पूर्ण ज्ञान,
देकर नाम का गूढ़ ज्ञान, किया भव-बन्धन से पार,
ज्ञान ही है गुरु, खेचर कहे नामा से,
वह प्रभु है अगोचर, जान लिया नामा ने गुरु-ज्ञान से।

श्रवणीं सांगितली मात मस्तकीं
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1359

हे माँ खेचर,
पाई प्रभु की अखण्ड छाया, तुमसे मिलकर।
टूटे सब जन्म-मरण के बन्धन,
दूर हुए अब सारे डर,
मिटी चिन्ता मोक्ष की, औ संसार की फ़िक्र।[11]
लगी समाधि पाया अखण्ड ज्ञान,
मिला अनुभव और सब साधन,
नामा कहे, न छोड़ूँ कभी, गुरु खेचर के चरण॥

कृपेची साउली अखंड लाधली
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1370

आप कहते हैं कि मेरे गुरु विसोबा खेचर प्रेम का भण्डार हैं। उन्होंने मुझे मन्त्र दिया, मेरे मस्तक पर हाथ रखा और मुझे नाम का गूढ़ ज्ञान देकर आवागमन के बन्धनों से मुक्त कर दिया। आप गुरु को माता (माउली)

कहकर पुकारते हैं। आप कहते हैं कि जब मुझे गुरु की कृपा की अखण्ड छाया मिली तो मेरे जन्म-मरण के बन्धन छूट गए। इसके बाद मुझे न किसी बन्धन की चिन्ता रही और न ही मुक्ति की लालसा रही। मेरी समाधि लग गई और मुझे अन्तर में ही सब कुछ दिखाई देने लग गया। मैं गुरु विसोबा खेचर के चरणों को कभी नहीं भुला सकता, क्योंकि मुझे सब कुछ उन्हीं से प्राप्त हुआ है।

सन्त नामदेव जी ने प्रभु-प्राप्ति के लिये गृहस्थ के त्याग को अनिवार्य नहीं माना। आपने स्वयं गृहस्थ-जीवन व्यतीत किया तथा अपनी हक़-हलाल की कमाई द्वारा अपने परिवार का पालन करते हुए लोगों को सच्चे परमार्थ पर चलने का उपदेश दिया।

नामदेव जी ने उपदेश दिया कि प्रभु-प्राप्ति का सम्बन्ध मन और आत्मा के साथ है और त्याग का सम्बन्ध भी मन और आत्मा के साथ है, शरीर के साथ नहीं। आपने समझाया कि मनुष्य हाथों-पैरों से काम करते हुए भी अपना ध्यान सदा उस परमात्मा की ओर रख सकता है। आपका एक पद है:

रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ॥ राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ॥
भगति करउ हरि के गुन गावउ॥ आठ पहर अपना खसमु धिआवउ॥
सुइने की सूई रुपे का धागा॥ नामे का चितु हरि सउ लागा॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 485

आप कहते हैं, "मैं हाथ से सिलाई का काम करता हूँ परन्तु मेरा मन सदा राम के नाम में रमा रहता है। मैं हृदयनिवासी अपने परमात्मारूपी पति के ध्यान में मग्न रहता हूँ। ईश्वर के नाम का उच्चारण करते समय मेरी लोहे की सूई मुझे सोने जैसी प्रतीत होती है और कपास का धागा चाँदी जैसा लगता है, मानो इस सूई-धागे ने मेरा चित्त भी हरि के साथ सी दिया हो।"

श्री आदि ग्रन्थ की वाणी से एक सुन्दर प्रसंग प्राप्त है। नामदेव को दर्ज़ी के तौर पर कार्य करते हुए देखकर त्रिलोचन ने व्यंग्य किया कि तुम माया के मोह में फँसे हुए हो, तुम सारा दिन कपड़े सिलने में व्यस्त रहते हो और परमात्मा की भक्ति की ओर ध्यान नहीं देते:

नामा माइआ मोहिआ कहै तिलोचन मीत॥
काहे छीपहु छाइलै राम न लावहु चीतु॥[12]
आदि ग्रन्थ, पृ. 1375

नामदेव जी ने उत्तर दिया कि भक्ति का सम्बन्ध मन और आत्मा से है शरीर से नहीं। जब मेरे हाथ-पाँव सांसारिक कार्यों में लगे होते हैं तब मेरा मन परमात्मा की भक्ति में लगा होता है:

नामा कहै तिलोचना मुख ते रामु संम्हालि॥
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 1375-76

नामदेव जी ने 'सुक्रित' अर्थात् अच्छे और नैतिक कार्यों द्वारा की गई कमाई से गुज़ारा करने को बहुत महत्त्व दिया है। ऐसी नेक कमाई की महिमा बताते हुए आप कहते हैं कि इससे मनुष्य 'सुमति' अर्थात् अच्छी निर्मल बुद्धि वाला होकर गुरमत में रहकर नाम का अभ्यास करने के योग्य बन जाता है और इस प्रकार वह परमधाम को प्राप्त कर लेता है:

भनति नामदेउ सुक्रित सुमति भए॥
गुरमति रामु कहि को को न बैकुंठि गए॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 718

गुरु की शरण में आने से पहले नामदेव पंढरपुर में स्थित विठ्ठल की मूर्ति की उपासना करते थे। उपवास, तीर्थ-यात्रा, पवित्र नदियों और स्थानों में स्नान आदि पर उनका विश्वास था। अब उनको इन सबकी निरर्थकता का आभास होने लगा। अपने एक पद में वे कहते हैं:

पत्थर की मूरत न बोलती कभी, कैसे करेगी वह श्रद्धा स्वीकार,
पत्थर की मूरत को मानते हरि, वह है सर्वव्यापक प्रभु से भिन्न,
मूरत करती अगर इच्छा पूर्ण, ज़रा-सी चोट से टूटती क्यों वह,
करे जरे कोई पाषाण उपासना, मूर्खता से अपनी खोता वह सर्वस्व।

कहे जो कोई भक्त से, बोलती पत्थर की मूरत, कहता, सुनता हैं दोनों मूर्ख,
जो करते मूर्ति का महिमागान और कहते ख़ुद को भक्त,
ऐसे नर को अधम जान, उसकी बात पर दो न ध्यान,
पत्थर की मूरत को मान भगवान, की आराधना बहुत साल।
क्या देगी वह उसका आभार, हृदय में अपने कर विचार,
हर तीर्थ पर होता है पानी और पाषाण, वहाँ न होता भगवान,
बाराशी गाँव में दिया उपदेश, प्रभु से रिक्त न कोई स्थान,
गुरु खेचर ने किया उपकार, प्रभु के दर्शन करा दिए अन्दर॥

पाषाणाचा देव बोलेचि ना कधीं
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1369

आप कहते हैं कि लोग अज्ञानवश पत्थर की मूर्ति को ही ईश्वर मानते हैं। यह मूर्ति न तो कभी बोलती है और न ही कुछ महसूस करती है, फिर यह लोगों के दु:ख कैसे दूर कर सकती है? यदि मूर्ति में दूसरों की इच्छाएँ पूर्ण करने की शक्ति होती तो वह स्वयं ज़रा-सी चोट से टूट क्यों जाती है? जो पत्थर की मूर्ति की उपासना करते हैं, वे कुछ भी हासिल नहीं कर पाते हैं। अगर कोई कहता है कि पत्थर की मूर्ति भक्तों से बातचीत करती है तो जो कहते हैं और जो सुनते हैं, दोनों ही मूर्ख हैं। जो लोग मूर्तियों के महत्त्व को बताते हैं और अपने को भक्त कहलवाते हैं, ऐसे लोगों को अधम मानो, उनकी न सुनो। अपने दिल से पूछो कि अगर एक पत्थर की मूर्ति बनाकर उसकी कई वर्षों तक उपासना की जाए तो क्या वह आभार प्रकट करेगी?

तीर्थों में पत्थर और पानी के सिवाय और कुछ नहीं है। मुझे जब नाम का अन्तर्मुख भेद मिला तो मालूम हुआ कि परमेश्वर सर्वव्यापक है। संसार में कोई भी स्थान प्रभु से ख़ाली नहीं है। मेरे गुरु विसोबा खेचर ने मुझ पर उपकार करके मुझे अपने अन्दर प्रभु के दर्शन करा दिये।

गुरु की शरण प्राप्त होने के बाद नामदेव जी के लिये मन्दिरों और मूर्तियों का कोई महत्त्व न रहा। उन्हें अपना शरीर सच्चा मन्दिर दिखाई देने लगा और प्रभु या विट्ठल के दर्शन भी अन्तर में ही होने लगे। उनके लिये

विठ्ठल शब्द कोई मूर्ति या अवतार न होकर सारे संसार में व्याप्त परमपिता परमेश्वर का प्रतीक हो गया।

गुरु की शरण प्राप्त होने के बाद लिखे गए अभंगों में नामदेव जी ने जहाँ भी बीठल, विट्ठल, श्रीरंगा, राम, हरि आदि नाम लिये हैं, वे सब परमपिता परमेश्वर की ओर संकेत करते हैं। इसी प्रकार गुरु नानक, सन्त कबीर, सन्त दादू दयाल, सन्त पलटू आदि सन्तों ने राम, हरि, मुरारी, गोबिन्द आदि नाम संसार में व्याप्त परमेश्वर के लिये प्रयोग किये हैं, न कि किसी अवतार या मूर्ति के लिये। नामदेव की बाद की कृतियों में दिखाई देते इस स्पष्ट परिवर्तन के बारे में डॉ. निकोल मॅकनिकॉल लिखती हैं, "नामदेव के जीवन में एक दिलचस्प बात उनके धार्मिक विचारों के परिवर्तन और विकास की है, जो उनके अभंग स्पष्ट बताते हैं।... यह परिवर्तन और विकास उनके अभंगों में स्पष्ट है, यद्यपि उनका ऐतिहासिक क्रम हमें नहीं मिल पाया है और हमें पता नहीं है कि कौन-सा अभंग कब लिखा गया।"[13]

अन्तर में परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाने के बाद नामदेव जी को हर प्राणी में एक ही प्रभु का प्रकाश दिखाई देने लगा। कहा जाता है कि एक बार यात्रा के दौरान नामदेव ने एक पेड़ के नीचे बैठकर खाने के लिये कुछ चपातियाँ पोटली से निकालीं। चपातियों को एक तरफ़ रखकर उन्हें चुपड़ने के लिये आप एक छोटे बर्तन में से घी निकालने लगे। उसी समय एक कुत्ता आया और चपातियाँ मुँह में लेकर भाग गया। घी की कटोरी हाथ में लेकर नामदेव उसके पीछे दौड़ते हुए बोले, "मेरे स्वामी! रूखी रोटियाँ मत खाओ, मुझे इन्हें चुपड़ लेने दो।" इस घटना के बारे में नामदेव जी का एक अभंग इस प्रकार है:

रुखडी न खाइयो स्वामी रुखडी न खाइयो।
हाथ हमारे घिरत कटोरी, अपनी बांटा ले जाइयो॥
दौडे दौडे जात स्वामी रोटणियां मुख मांहि।
हम तो दौंडे पहुँच न साकै, मेल लेहु गोसाइं॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2334

नामदेव को न केवल प्रभु सर्वव्यापक दिखाई देने लगा, बल्कि ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे परमात्मा में समाए हुए हैं और परमात्मा उनमें समाया हुआ है। नामदेव के बारे में श्री रानाडे लिखते हैं, ''परमात्मा का अनुभव (नामदेव को) इतना पूर्ण होता गया कि उन्हें 'सोऽहं' का अनुभव होने लगा, कि मैं वही परमेश्वर हूँ और परमेश्वर मुझमें है, ऐसा उन्हें साक्षात्कार होने लगा।''[14]

सन्त नामदेव जी का जन्म महाराष्ट्र में हुआ था परन्तु प्रभु-भक्ति के कारण उनकी प्रसिद्धि सारे भारत में फैल गई। आपने अपनी आध्यात्मिक यात्रा सगुण-भक्ति से शुरू की परन्तु आप शीघ्र ही निर्गुण-भक्ति की ओर अग्रसर हो गए। इस तरह सगुण तथा निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति का श्रेय सन्त नामदेव जी को जाता है।

आपका अपने समय के भक्त ज्ञानदेव के साथ घनिष्ठ प्रेम था। एक बार ज्ञानदेव धार्मिक तीर्थ-स्थानों की लम्बी यात्रा पर जाते समय नामदेव को साथ ले जाना चाहते थे। नामदेव ने पहले तो जाने से इनकार कर दिया परन्तु फिर ज्ञानदेव के अनुरोध पर वे इसके लिये राज़ी हो गए। इस यात्रा के दौरान उन्हें राजस्थान के रेगिस्तानों में से गुज़रना पड़ा, जहाँ पानी की बहुत कमी रहती है। बीकानेर शहर से क़रीब 40 किलोमीटर दूर कोलायत में[15] एक रोज़ उन्हें सुबह से दोपहर तक पानी की एक बूँद भी न मिली। सूर्य आग बरसा रहा था तथा शरीर को झुलसा देनेवाली लू चल रही थी। दोनों मित्र प्यास से व्याकुल थे। दोपहर के समय जब सूर्य सिर पर था तो उन्हें अचानक एक कुआँ दिखाई दिया। वे कुएँ के पास गए तो मालूम हुआ कि उसका पानी बहुत नीचे है। उनके पास पानी निकालने का कोई साधन नहीं था। ज्ञानदेव ने ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ वश में की हुई थीं। उन्होंने अपनी यौगिक शक्ति द्वारा लघु-रूप धारण कर कुएँ में प्रवेश किया और अपनी प्यास बुझाकर बाहर आ गए। नामदेव कुएँ के पास खड़े थे और प्यास के कारण उनके प्राण निकले जा रहे थे। ज्ञानदेव ने कहा कि वे चाहें तो वे दोबारा कुएँ में जाकर उनके लिये भी पानी ले आएँ। नामदेव को यह स्वीकार न हुआ, क्योंकि आप निर्गुणवादी धारा को अपना चुके थे। आपने कहा कि यदि प्रभु की इच्छा है कि मैं प्यासा मर जाऊँ तो मुझे यही मंजूर है। तब मालिक की ऐसी मौज हुई:

तब गड़गड़ाकर कुएँ के ऊपर से बहने लगा पानी ऐसे,
सिंधु उमड़े, कल्पना से परे जैसे।

तंव निजभुवनीं सुखें पंढरीनाथ
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 921

अर्थात् पानी कुएँ के ऊपर से बहने लगा। इससे यह पता चलता है कि नामदेव रूहानी शक्ति को लौकिक काम में लाने के विरुद्ध थे।

इन यात्राओं की समाप्ति पर ज्ञानदेव ने घोषित कर दिया कि उनका संसार में आने का कार्य पूरा हो चुका है। इसके कुछ ही समय बाद उन्होंने, उनके दोनों भाइयों निवृत्तिनाथ और सोपानदेव ने और बहन मुक्ताबाई ने शरीर त्याग दिया। इन सबकी मृत्यु थोड़े-थोड़े समय के अन्दर हो गई। उस समय उन सबकी आयु 20 से 30 वर्ष की थी।[16] इन घटनाओं ने नामदेव जी के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। इसके बारे में उन्होंने अपनी रचनाओं में भी उल्लेख किया है।

निजी जीवन पर रचनाएँ

सन्त नामदेव जी के जीवन के साथ कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ जुड़ी हुई हैं जिनका उन्होंने स्वयं अपनी वाणी में भी उल्लेख किया है।

भगत जनां कउ देहुरा फिरै

सर्वविदित है कि जाति-प्रथा का आरम्भ कार्य के आधार पर हुआ था जिसके अनुसार विद्यादान में लगे लोगों को ब्राह्मण, सैनिकों को क्षत्रिय, व्यापारियों को वैश्य और अन्य अनेक प्रकार की सेवा में लगे लोगों को शूद्र कहा जाता था। व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता था। हमारे धर्म-शास्त्रों में व्यक्ति की श्रेष्ठता कर्म तथा भक्ति पर आधारित की गई है, जन्म तथा जाति पर नहीं। दुर्भाग्यवश समय के साथ-साथ जाति-प्रथा विकृत होकर कार्य के स्थान पर जन्म से जुड़ गई। फलस्वरूप साधारण जाति के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। उनसे धार्मिक विद्या का अधिकार छीन लिया गया और

उनके लिये पूजा-स्थलों में प्रवेश करने पर भी पाबन्दी लगा दी गई। सन्त नामदेव जी के दिनों में भी जाति-पाँति के आधार पर भेदभाव किया जाता था और अज्ञानतावश साधारण जाति के लोगों को पूजा-स्थलों पर जाने नहीं दिया जाता था। आप इस प्रसंग में अपने जीवन की एक घटना बयान करते हुए कहते हैं:

हसत खेलत तेरे देहुरे आइआ॥ भगति करत नामा पकरि उठाइआ॥
हीनड़ी जाति मेरी जादिम राइआ॥ छीपे के जनमि काहे कउ आइआ॥
लै कमली चलिओ पलटाइ॥ देहुरै पाछै बैठा जाइ॥
जिउ जिउ नामा हरि गुण उचरै॥ भगत जनां कउ देहुरा फिरै॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1164

आप कहते हैं कि हे प्रभु! मैं ख़ुशी-ख़ुशी आपके द्वार पर आया था। मुझे भक्ति करते समय पुजारी पण्डों ने मन्दिर के सामने से यह कहकर ज़बरदस्ती उठा दिया कि मैं छीपा हूँ और मेरी जाति साधारण है। हे प्रभु! इस दुर्व्यवहार से दु:खी होकर मेरे मन में संशय उत्पन्न हुआ कि यदि साधारण जाति वाले लोग प्रभु-भक्ति के अधिकारी नहीं हैं तो आपने मुझे छीपे के घर जन्म क्यों दिया? मैं निराश होकर अपना कम्बल लेकर मन्दिर के पीछे आ बैठा। वहाँ बैठा हुआ मैं आपका गुणगान करता रहा। आपकी विचित्र लीला से मन्दिर का मुँह मेरी ओर हो गया। आपका भाव है कि प्रभु, भक्ति-भाव देखता है, जाति-पाँति नहीं। उसके भक्तों का किसी भी जाति से सम्बन्ध क्यों न हो, प्रभु सदैव उनकी लाज रखता है।

नामदेव जी के उपरोक्त शब्द से यह सुन्दर सन्देश मिलता है कि प्रभु ने तथाकथित ऊँची जाति के लोगों को छोड़कर अपने सच्चे भक्त नामदेव को सम्मान दिया। सन्त नामदेव जी हम अज्ञानी जीवों को बहुत सुन्दर ढंग से यह समझाना चाहते हैं कि प्रभु को भक्ति प्यारी है, जाति-पाँति नहीं। प्रभु के लिये न तो ब्राह्मण बड़ा है और न ही कपड़े सीनेवाला छीपा छोटा है। प्रभु के लिये वही बड़ा है जो भक्ति, प्रेम तथा विनम्रता में बड़ा है।

'श्री आदि ग्रन्थ' में सन्त नामदेव जी का यह शब्द प्राप्त है: 'सुलतानु पूछै सुनु बे नामा॥ देखउ राम तुम्हारे कामा॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1165)।

आप इस शब्द में विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि उस समय के राजा ने आपकी परीक्षा लेने के लिये उन्हें मृतक गाय को ज़िन्दा करने के लिये कहा। सन्त नामदेव जी इस प्रकार की करामात के विरुद्ध थे। आपने सुलतान से कहा कि किसी मृतक को पुन: जीवित कर सकना सम्भव नहीं है, परन्तु प्रभु की दया से मृतक गाय ज़िन्दा हो गई। सन्त नामदेव जी शब्द के अन्त में कहते हैं: 'नामे की कीरति रही संसारि॥ भगत जनां ले उधरिआ पारि॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1166)। आप समझाना चाहते हैं कि प्रभु के ढंग निराले हैं। वह अपने भक्तों की लाज रखने के लिये कुछ भी कर सकता है। आप कहते हैं कि प्रभु की कृपा से नामदेव का यश संसार में फैल गया और वह अपने भक्तों सहित भवसागर से पार हो गया।

दूसरी घटना का सन्त नामदेव जी अपनी वाणी में इस प्रकार उल्लेख करते हैं:

पाड पडोसणि, पूछिले नामा, कापहि छानि छवाई हो॥
तोपहि दुगनी मजूरी देहउ मोकउ बेढ़ी देहु बताई हो॥
री बाई, वेढ़ा देनु न जाई॥ देखु बेढ़ी रहिउ समाई॥
हमारै बेढ़ी प्रान अधारा॥
बेढ़ी प्रीति मजूरी मांगे जउ कोऊ छानि छवावै हो॥
लोग कुटुंब समहु ते तेरै तउ आपन बेढ़ी आवै हो॥
ऐसो बेढ़ बरनि न साकउ सभ अंतर सभ ठाईं हो॥
गूंगे महा अमृतरस चाखिआ पूछे कहनु न जाई हो॥
बेढ़ा के गुन सुनि री बाई जलधि बांधि ध्रु थापिउ हो॥
नामेके सुआमी सीअ बहोरी लंक भभीखण आपिउ हो॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2259

नूतन भक्तमाल में कहा गया है कि एक दिन अचानक नामदेव के घर आग लग गई। जो वस्तु अलग थी, उसको भी वे आग में डालने लगे और विनय की कि इन सबको भी अंगीकार कीजिये। भगवान् बहुत हँसे और कहा कि क्या आग में भी मुझको जानता है? नामदेव ने कहा कि यह घर

आपका है, इसे दूसरा कौन स्पर्श कर सकता है? भगवान् ने प्रसन्न होकर नवीन और सुन्दर छप्पर छा दिया।[17]

उपरोक्त शब्द में नामदेव जी बताते हैं कि उनके ख़ूबसूरत छप्पर को देखकर उनकी एक पड़ोसिन उनसे यह पूछने लगी कि तूने इतना सुन्दर छप्पर किस कारीगर से बनवाया है? वह बोली कि मुझे उस कारीगर का नाम बता दो, यदि वह मुझे भी एक ऐसा छप्पर बाँध दे तो मैं उसे दोगुनी मज़दूरी दूँगी। नामदेव जी का छप्पर प्रभु की कृपा से बना था, इसलिये नामदेव जी अपनी पड़ोसिन को बड़ी विनम्रता से समझाते हुए कहते हैं कि हे बाई (बहन)! वह कारीगर इस प्रकार नहीं बुलाया जा सकता, क्योंकि वह तो हरएक के अन्तर में समाया हुआ है और वह हम सबके जीवन का आधार है।

आप कहते हैं कि यदि कोई उस कारीगर से अपना छप्पर बँधवाना चाहे तो मज़दूरी के रूप में उसे अपनी प्रीति अर्पित करनी होगी। अगर कोई उसके प्रेम में अपने सभी सगे-सम्बन्धियों से मोह तोड़ ले तो वह कारीगर अपने आप ही उसके पास चला आता है। आप कहते हैं कि मैं उस कारीगर की महिमा बयान नहीं कर सकता, क्योंकि वह सबके अन्तर में और हर जगह समाया हुआ है। जिस प्रकार कोई गूँगा अमृत रस चखकर उसका स्वाद नहीं बता सकता, इसी प्रकार उस अन्तर्यामी और सर्वव्यापक कारीगर यानी प्रभु की महिमा का गुणगान नहीं किया जा सकता।

नामदेव जी कहते हैं कि हे बाई! मैं उस कारीगर की क्या महिमा बखान करूँ, जिसने समुद्र पर पुल बाँध दिया, भक्त ध्रुव को आकाश में अचल स्थान दे दिया और जिसने राम के रूप में (रावण को मारकर) सीता को वापस लाकर विभीषण को लंका का राज्य सौंप दिया।

इस अभंग से यह भाव भी लिया जा सकता है कि जो अपना सब कुछ प्रभु को न्योछावर कर देता है, प्रभु भी उसका बन जाता है और जो कुछ प्रभु का है, वह सब कुछ उसका बन जाता है।

उपरोक्त दोनों घटनाओं में करामाती रंग है, परन्तु वास्तव में इनसे यह सन्देश मिलता है कि प्रभु को अपने भक्त प्यारे होते हैं और उन्हें भगवान् से

कोई याचना या प्रार्थना नहीं करनी पड़ती। वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञाता प्रभु स्वयं अपने भक्तों की रक्षा और सहायता के लिये कुछ भी करने के लिये तत्पर रहता है। भाई गुरदास जी की वाणी है:

कंम कितै पिउ चलिआ नामदेव नो आखि सिधाइआ।
ठाकुर दी सेवा करीं दुधु पीआवणु कहि समझाइआ।
नामदेउ इसनानु करि कपल गाइ दुहिकै लै आइआ।
ठाकुर नो न्हावालिकै चरणोदकु लै तिलकु चड़ाइआ।
हथि जोड़ि बिनती करै दूधु पीअहु जी गोबिंद राइआ।
निहचउ करि आराधिआ होइ दइआलु दरसु दिखलाइआ।
भरी कटोरी नामदेवि लै ठाकर नो दूध पीआइआ।
गाइ मुई जीवालीओनु नामदेउ दा छपर छाइआ।
फेरि देहुरा रखिओन चारि वरन लै पैरी पाइआ।
भगत जना दा करे कराइआ॥

वारां भाई गुरदास, 10:11

आप नामदेव जी के जीवन के साथ जुड़ी आश्चर्यजनक घटनाओं का वर्णन करते हुए अन्त में कहते हैं, 'भगत जना दा करे कराइआ' – अर्थात् वह प्रभु अपने भक्तों की लाज रखने के लिये कुछ भी कर सकता है। सन्त नामदेव जी ने ख़ुद अपनी ओर संकेत किया है, 'मेरा कीआ कछू न होइ॥ करि है रामु होइ है सोइ॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1165)।

चौथी घटना में कहा जाता है कि एक समय नामदेव जी भक्ति में निमग्न थे कि किसी मुसलमान मस्त क़लन्दर ने नामदेव जी के हाथ से करताल छीन लिये। आप उस क़लन्दर को प्रभु का रूप समझकर एक शब्द में कहते हैं:

आउ कलंदर केसवा॥ करि अबदाली भेसवा॥
जिनि आकास कुलह सिरि कीनी कउसै सपत पयाला॥[18]
चमर पोस का मंदरु तेरा इह बिधि बने गुपाला॥
छपन कोटि का पेहनु तेरा सोलह सहस इजारा॥[19]

भार अठारह मुदगरु तेरा सहनक सभ संसारा॥[20]
देही महजिदि मनु मउलाना सहज निवाज गुजारै॥
बीबी कउला सउ काइनु तेरा निरंकार आकारै॥
भगति करत मेरे ताल छिनाए किह पहि करउ पुकारा॥
नामे का सुआमी अंतरजामी फिरे सगल बेदेसवा॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1167

आप कहते हैं कि ऐ क़लन्दर के रूप में आए (प्रभु) केशव! अब आप ऐसे अब्दाली (मुसलमान फ़क़ीर) का भेष धारण करके आए हो जिसने सिर पर आकाश की टोपी ली हुई है और सात पाताल जिसकी पादुकाएँ हैं। हे गोपाल! इस प्रकार अब तूने यह भेष धारण किया हुआ है कि चाम का शरीर तेरा मन्दिर है। तेरा चोला छप्पन करोड़ बादलों का बना हुआ है। सोलह हज़ार गोपियाँ तेरा तम्बा या पायजामा हैं। अठारह भार का तेरा मुगधर (मुगली भाँग घोटनेवाला) है। सारा संसार तेरा थाल है। शरीर तेरी मस्जिद है जिसमें मनरूपी मौलवी नमाज़ पढ़कर प्रसन्न होता है। बीबी कडली अर्थात् माया के साथ तेरा निकाह (विवाह) हुआ है, जो निराकार प्रभु को साकार रूप में बदल देने का सामर्थ्य रखती है। आपने भक्ति करते हुए मेरे करताल छीन लिये हैं, अब मैं किसके आगे फ़रियाद करूँ? नामदेव जी कहते हैं कि मेरा प्रभु अन्तर्यामी है और हर जगह, हर रूप में मौजूद है। बेशक उसका अपना कोई एक देश अथवा ठिकाना नहीं है, पर वह सब जगह परिपूर्ण है।

सन्त नामदेव जी इस शब्द में हिन्दी और उर्दू, फ़ारसी की मिली-जुली शब्दावली में प्रभु का गुणगान करते हैं। आप उस प्रभु को केशव, गोपाल और निरंकार भी कहते हैं तथा मुसलमान के भेष में प्रकट होनेवाला क़लन्दर और अब्दाली भी कहते हैं। आप शरीर को चमड़े का बना हुआ मन्दिर भी कहते हैं और ऐसी मस्जिद भी कहते हैं जिसमें मनरूपी मौलाना नमाज़ गुज़ार रहा है। आप शब्द के अन्त में कहते हैं, 'नामे का सुआमी अंतरजामी फिरे सगल बेदेसवा॥' आप समझाते हैं कि प्रभु सर्वव्यापक है। उसका घट-घट में निवास है। हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों आदि सबके अन्दर उस एक

प्रभु का प्रकाश समाया हुआ है। इसलिये हर प्रकार के बाहरी भेद-भाव भुलाकर संसार के समस्त प्राणियों को उस एक प्रभु का रूप मानना चाहिये। और हर प्रकार के बाहरी भटकाव को त्यागकर मन को अन्तर में प्रभु में लीन करना चाहिये।

तुलादान

नूतन भक्तमाल में इसी प्रकार की एक और घटना भी दी गई है। कहा जाता है कि पंढरपुर में एक साहूकार ने तुलादान किया। सारे नगर में ख़ूब सोना बाँटा। किसी के कहने पर नामदेव को भी बुलाया। उन्होंने दो बार कहला भेजा कि हमको द्रव्य से क्या प्रयोजन! तीसरी बार कहलाने पर वे गए। साहूकार ने कहा, "थोड़ा आप भी अंगीकार करें।" नामदेव ने एक तुलसी के पत्ते पर भगवान् का नाम लिखकर उसके बराबर सोना माँगा। पहले साहूकार, जैसे बलि ने वामन से कहा था, उसी प्रकार बोला, "कुछ और माँगिये", मगर नामदेव जी ने कुछ नहीं माँगा। पहले घर का, फिर औरों से माँग-माँगकर सोना तराज़ू में रखा, मगर उस तुलसी-पत्र के बराबर न तुला। बहुत शर्मिन्दा हुआ। इस प्रकार साहूकार के धन का गर्व दूर हुआ।

तब नामदेव जी ने कहा कि सारी उम्र जो पुण्य किया है उसका संकल्प कर दे, शायद बराबर हो जाएँ। साहूकार ने वह भी संकल्प कर दिया। फिर भी तराज़ू बराबर नहीं तुला। बहुत लज्जित होकर साहूकार ने कहा कि जो है, सो सब ले जाओ। नामदेव ने कहा, "अरे अज्ञानी! यह धन हमारे किस काम का है! हमें तो एक भक्ति-धन ही चाहिये।"

नामदेव जी अज्ञानी जीव को यह समझाना चाहते हैं कि पुण्य-दान प्रभु-प्राप्ति का साधन नहीं है। पुण्य-दान बुरा नहीं है। पुण्य-दान तो प्रभु के प्रति अपना आभार प्रकट करने का तुच्छ प्रयत्न है। प्रभु के दिये हुए धन को, प्रभु के जीवों के साथ बाँटकर खाने से मन में नम्रता पैदा होती है, मन से धन का मोह निकलता है तथा धन के सदुपयोग द्वारा परमार्थी वृत्ति बलवान् होती है, परन्तु केवल पुण्य-दान को प्रभु-प्राप्ति का साधन समझ लेना भारी अज्ञानता है।

उत्तर भारत की यात्रा

नामदेव जी का जीवन-चरित्र लिखने के लिये श्री परशुराम चतुर्वेदी ने हिन्दी, मराठी और अंग्रेज़ी के लगभग सभी उपलब्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया है। वे लिखते हैं:

"तीर्थ-यात्रा से लौट आने के कुछ दिनों के बाद सन्त ज्ञानेश्वर ने समाधि ले ली और उस समय से सन्त नामदेव जी का मन दक्षिण में रहने से उचाट होने लगा। इस कारण कुछ काल तक और वहाँ रहकर, वे दूसरी देश-यात्रा में पंजाब की ओर चले आए और इधर-उधर बहुत दिनों तक भ्रमण करते रहे।"[21]

कहा जाता है कि उस समय तक इनकी आयु लगभग 50 वर्ष की हो चुकी थी और इनका अपनी सन्तान, पत्नी आदि की ओर से भी मोह भंग हो गया था। मैकॉलिफ़ ने सन्त नामदेव की उस समय की आयु 55 वर्ष की बताई है। नामदेव जी की यह यात्रा साधारण नहीं थी। इसके पीछे उनका ध्येय सन्तों का सन्देश देश के कोने-कोने में फैलाना था। एक तरह से अब उनका असली कार्य शुरू होने जा रहा था। उनकी यात्रा के स्पष्ट विवरण तो नहीं मिलते हैं, पर यह माना जाता है कि वे 25 वर्ष से अधिक समय तक भारत के विभिन्न स्थानों पर पैदल घूमते रहे।

विद्वानों के अनुसार महाराष्ट्र में इस यात्रा के 53 वर्ष बाद तक नामदेव के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता। उनके दो पुत्रों गोदा और विठा ने अपने अभंगों में लिखा है, "नामा पंढरपुर छोड़ गए" और "उन्होंने हमें अनाथ कर दिया।"[22]

अपनी यात्राओं में वे गुजरात, काठियावाड़, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब में भ्रमण करते रहे। इन प्रदेशों में कई ऐसे स्थान हैं जिनसे नामदेव का नाम लोक-कथाओं के द्वारा जुड़ा हुआ है। इसी तरह कई ऐसे लोक समुदाय भी हैं, जो अपने आपको नामदेव के अनुयायी मानते हैं।

सन्त नामदेव जी ने समझाया कि जाति-पाँति के भेदभाव तथा अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड इनसान के बनाए हुए हैं। भक्ति के बहिर्मुखी साधन न तो आवागमन के बन्धनों को काट सकते हैं और न ही जीवात्मा को परमात्मा से मिला सकते हैं। परमात्मा से मिलाप का ज़रिया सतगुरु है जो दीक्षा के समय

न केवल निर्मल आचरण अपनाने की हिदायत देते हैं बल्कि इसके साथ-साथ आध्यात्मिक अभ्यास की विधि भी बताते हैं जिसको अपनाकर आत्मा परमात्मा से मिलाप कर सकती है। आपने अपने उपदेश द्वारा बाद में आनेवाले निर्गुणवादी सन्तों कबीर, रविदास, गुरु नानक आदि का मार्ग प्रशस्त किया।

उत्तर भारत में नामदेव जी लगभग 25 वर्ष तक भ्रमण करते रहे और अन्त में पंजाब के गुरदासपुर ज़िले के एक निर्जन स्थान में आ गए। समय के साथ यहाँ उनके भक्त और चाहनेवाले आकर रहने लगे और धीरे-धीरे यहाँ एक गाँव बस गया। इस गाँव का नाम घुमान है। 18 साल तक नामदेव यहाँ परमेश्वर का ध्यान और भजन करते हुए शब्द-मार्ग का उपदेश देते रहे। 1350 ई. में उन्होंने शरीर त्याग दिया।

देहान्त

नामदेव जी ने 1350 ई. में शरीर त्याग दिया। कुछ विद्वानों का मत है कि उन्होंने घुमान में शरीर छोड़ा, जहाँ उन्होंने अपने जीवन के आख़िरी 18 वर्ष बिताए, जब कि कुछ अन्य का मत है कि 80 वर्ष की आयु में वे वापस पंढरपुर चले गए और विठोबा के मन्दिर के पास शरीर त्यागा। लेकिन विद्वानों ने स्वीकार किया है कि उन्होंने समाधि ले ली।[23] वास्तविक महत्त्व इस बात का नहीं कि सन्त नामदेव जी ने अपना नश्वर शरीर घुमान में छोड़ा या पंढरपुर में। वास्तविक महत्त्व तो उनके उपदेश या सन्देश का है। यह बात भी स्पष्ट है कि आपने अपना उपदेश महाराष्ट्र से पंजाब तक फैलाया। उन दिनों में, जब यातायात के साधनों का अभाव था, आपने लोक-कल्याण के लिये उत्तरी भारत के कोने-कोने में भ्रमण किया।

सन्त नामदेव जी के समय भारत जाति-पाँति तथा बहिर्मुखी कर्मकाण्ड के बन्धनों में बुरी तरह जकड़ा हुआ था। सन्त नामदेव जी ने इस बात पर बल दिया कि हर जाति और हर सम्प्रदाय के लोग बिना किसी भेद-भाव के उस प्रभु की भक्ति के अधिकारी हैं। आपने न केवल निम्न जाति के लोगों को ही, बल्कि स्त्रियों को भी पूर्ण सम्मान दिया। आपके दरबार में सब लोगों को धर्म, जाति, स्त्री-पुरुष, धनवान्-निर्धन, विद्वान-अनपढ़ आदि का भेद-भाव

किये बिना पूर्ण प्रेम तथा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। आपने लोगों को हर प्रकार के बहिर्मुखी आडम्बरों से मुक्त करके उन्हें एक प्रभु की अन्तर्मुख भक्ति की ओर प्रेरित किया। आपके प्रयत्नों से लोग अनेक देवी-देवताओं की पूजा और भक्ति के बजाय एक पारब्रह्म परमेश्वर की भक्ति की ओर प्रेरित हुए। गुरु अमर दास जी आपकी स्तुति करते हुए कहते हैं:

नामा छीबा कबीरु जुोलाहा पूरे गुर ते गति पाई॥
ब्रहम के बेते सबदु पछाणहि हउमै जाति गवाई॥[24]
सुरि नर तिन की बाणी गावहि कोइ न मेटै भाई॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 67

नामदेव छीपा और कबीर जुलाहे ने वक़्त के गुरु के ज़रिये शब्द के माध्यम से पूर्ण आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त की। परमात्मा से एकाकार होने पर जाति-पाँति का भेदभाव मिट गया – नामदेव छीपा न रहा, कबीर जुलाहा न रहा, दोनों शब्द-रूप हो गए। ऐसे सन्तों की अमर वाणी का गायन सुर और नर भी करते हैं।

वाणी

सन्त नामदेव जी को महाराष्ट्र में भक्ति परम्परा के संस्थापक तथा निर्गुण भक्ति के प्रमुख सन्त कवियों में स्थान दिया जाता है। आपने सन्त कबीर, गुरु रविदास तथा गुरु नानक आदि निर्गुणवादी सन्तों से पहले वाणी की रचना की। इस वाणी की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। इसे बहुत प्रेम और श्रद्धापूर्वक गाया तथा सुना जाता है।

सन्त नामदेव जी ने अधिकतर वाणी मराठी में लिखी है परन्तु हिन्दी और साध-भाषा[25] में भी आपकी बहुत-सी वाणी उपलब्ध है। आपकी वाणी जितनी गम्भीर है उतनी ही मधुर और सरल भी है। सदियाँ बीत जाने पर भी लोगों पर आपके उपदेश का प्रभाव ज्यों का त्यों बना हुआ है। हिन्दी वाणी का प्रभाव पंजाब सहित उत्तर भारत की जनता पर विशेष रूप से है। इस वाणी द्वारा नामदेव ने उत्तर भारत में निर्गुणवादी विचारों की क्रांतिकारी

चिनगारी प्रज्वलित की। आपके गीत छोटे, पर कलात्मक हैं। आपके सरल शब्दों में गूढ़ अर्थ भरे हुए हैं। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से उनके द्वारा रचित खड़ी-बोली के पदों को राग-रागिनी की शैली प्रदान की गई है।

आपने एक ओर तो महाराष्ट्र में जन-जागृति के लिये मराठी को अपनाया, तो दूसरी ओर उत्तर भारत की जनता के लिये हिन्दी और साध-भाषा को अपनी वाणी का माध्यम बनाया। मराठी में आपके 2500 से अधिक अभंग प्राप्त हैं। अभंग वास्तव में एक प्रकार के गाए जा सकनेवाले धार्मिक गीत हैं। इसी प्रकार हिन्दी तथा ब्रजभाषा में आपके लगभग 234 पद प्राप्त हैं। आपकी अधिकतर हिन्दी रचनाओं में मराठी रचनाओं वाले ही भाव प्रकट हुए हैं।

सन्त नामदेव जी की वाणी सांकेतिक है। इसमें परमार्थ के गूढ़ तथा रहस्यमयी अनुभवों को उपमाओं, अलंकारों तथा रूपकों के द्वारा प्रकट करने का यत्न किया गया है। इस वाणी में उच्चतम काव्य गुणों को राग तथा स्वर से जोड़ा गया है, जिससे इसका कलात्मक स्तर बहुत ऊँचा उठ जाता है। श्रेष्ठतम भावों को श्रेष्ठतम भाषा तथा शैली में प्रकट करने की दृष्टि से इस वाणी का काव्य जगत् में विशेष स्थान है। यह सारी वाणी गेय है, साधारण से साधारण व्यक्ति भी इस वाणी को गाकर इससे आनन्द ले सकता है और विशेषज्ञ इसे सनातनी रागों के अनुकूल गाकर इससे आनन्द उठा सकते हैं। जिस दृष्टि से भी देखें, इसकी गणना संसार के श्रेष्ठतम साहित्य में की जा सकती है।

आपने अपनी वाणी में अन्य सन्तों के उपदेशों के अनुरूप विभिन्न विषयों, जैसे कि परमात्मा, मनुष्य-जन्म, सतगुरु, सत्संग, नाम, संसार की नि:सारता, कर्म, प्रेम-भक्ति, मन आदि को बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया है। इन विषयों से सम्बन्धित कुछ चुने हुए अभंग एवं पद विषयानुसार आगे दिये जा रहे हैं। उल्लेखनीय है कि आपके अलग-अलग अभंगों में परमार्थ के कई गूढ़ विषयों पर प्रकाश डाला गया है, इसलिये इन्हें किसी एक विषय के अन्तर्गत लेना कठिन है। फिर भी विषयों की प्रमुखता को ध्यान में रखते हुए इन्हें विषयानुसार विभाजित करने का प्रयास किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिये पुस्तक के अन्त में इन अभंगों की एक पदानुक्रमणिका भी जोड़ दी गई है ताकि किसी अभंग विशेष को ढूँढ़ने में कठिनाई न आए।

सन्देश

संसार के सभी सन्त-महात्मा मानवता को सदैव एक ही सन्देश देते आए हैं। सन्तों की भाषा अलग-अलग हो सकती है, परन्तु उनका सन्देश सदैव एक ही रहता है। सन्देश की इसी समानता के कारण आदि ग्रन्थ के संकलन के समय सन्त नामदेव जी की वाणी आदि ग्रन्थ में सम्मिलित की गई।

सन्त नामदेव जी जीवात्मा को संसार तथा शरीर की असलियत के प्रति सावधान करते हैं। आप उसे संसार में कार्यशील कर्म तथा फल के नियम तथा चौरासी की दु:खदाई भटकन के बारे में चेतावनी देते हैं। आप मनुष्य को जीवन के परमार्थी उद्देश्य के प्रति सचेत करते हैं। आप जीव को संसार के मोह, विषय-विकारों, इन्द्रियों के भोगों, मायावी इच्छाओं-तृष्णाओं से ऊपर उठकर प्रभु के प्रेम द्वारा, उसके साथ मिलाप करने की प्रेरणा देते हैं।

आप संसार में प्रचलित अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों तथा भक्ति के बहिर्मुखी साधनों के बारे में चेतावनी देते हुए, प्रभु-भक्ति के सच्चे अन्तर्मुख साधन पर प्रकाश डालते हैं ताकि जीवात्मा इस पर चलकर, मानव-जन्म के अमूल्य अवसर का सदुपयोग कर सके।

संसार और शरीर की असलियत

बाप मंझा समझि न परई। सांचो ढारि अवर कछु भरई॥[1]
पानी का चित्र पवन का थंभा। कौन उपाइ रच्यौ आरंभा॥
इहां का उपज्या इंहां बिलाना। बोलनहारा ए कहां समाना॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 42

हे मेरे पिता-परमेश्वर! मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि लोग प्रभुरूपी सत्य को छोड़कर, नश्वर संसार तथा उसकी असत्य वस्तुएँ इकट्ठा करने में क्यों लगे हुए हैं? उस रचयिता की कारीगरी का रहस्य समझ से परे है। पानी के चित्र और हवा के स्तम्भ पर खड़े भवन के समान यह संसार सर्वथा निराधार होने के बावजूद सत्य होने का भ्रम पैदा करता है। एक और आश्चर्यजनक बात यह है कि संसार में जो कुछ पैदा होता है, यहीं विलय हो जाता है परन्तु यह पता नहीं चलता कि शरीर के नाश हो जाने पर उसके अन्दर बैठी आत्मा कहाँ चली जाती है?

सन्त नामदेव जी इस बात को दृढ़ करना चाहते हैं कि जिस शरीर और संसार को हम अपना और असली समझते हैं, जिस संसार को हम आँखों से देखते हैं, उसे भोगते हैं, वह नश्वर है। संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है और जो परिवर्तशील है, वही नश्वर है। अब इस शरीर को ही देखें जो बचपन से जवानी, जवानी से प्रौढ़ावस्था और फिर बुढ़ापे में तबदील होता है। यह शरीर की परिवर्तनशीलता की निशानी है। बात यहीं ख़त्म नहीं हो जाती, लेकिन हम परिवर्तनशील और नश्वर शरीर और संसार को स्थायी समझने के भ्रम का शिकार हैं, हम संसार और इसके पदार्थों को सच्चा और स्थायी समझकर इनको अपना बनाने का यत्न करते हैं और इनमें सच्चे और स्थायी सुख की तलाश करने की कोशिश भी करते हैं।

संसार तथा जीवन की क्षणभंगुरता का ज़िक्र करते हुए आप कहते हैं:

अनेक मर मर जाहिंगे रे अवधू। एक राम नाम तत रहैला॥[2]
मुईज आसा मुईज तृष्णा। मुईज मनसा साई लोभ हमारी बहणी मुई।

तिनका सोच हम नाही रे अवधू॥
माई का गोत मद मत्सर मूवा। बाप का गोत अहंकारे।[3]
काम क्रोध भाई भतीजा मर गया। तिनका सोच नाही रे अवधू॥
जाकी करनी जोगेश्वर मूवा। तास घरन मैं जाऊंगा।[4]
नामदेव सतगुरु साहिता। गोविंद चरन निवासा रे अवधू॥

सन्त नामदेव, पद 234

हे भक्तजनो! संसार तथा जीवन क्षणभंगुर हैं। यह संसार मर्त्य-मण्डल है, यहाँ किसी को भी सदैव नहीं रहना है। रोज़ाना लोग संसार को छोड़कर चले जा रहे हैं। अमर पदार्थ या सार वस्तु केवल प्रभु का नाम है। संसार के वस्तु-पदार्थ तथा उनकी आशा-तृष्णा करनेवाले भी यहाँ सदैव नहीं रहेंगे। कुल तथा जाति का अहंकार करनेवाले तथा अनेक प्रकार की विषय-वासनाओं में लिप्त लोग भी यहाँ सदैव नहीं रह पाएँगे, बल्कि सदा आवागमन के चक्र से बँधे रहेंगे। सन्त नामदेव जी कहते हैं कि मैं योगीजनों का अनुसरण करते हुए जगत् की आशा-तृष्णा का मार्ग छोड़कर सतगुरु द्वारा बताए गए प्रभु-भक्ति तथा नाम की कमाई के मार्ग पर चलकर प्रभु के परमधाम पहुँच जाऊँगा। मैं जगत् की प्रीति छोड़कर प्रभु के चरण-कमलों से प्रीति करूँगा और प्रभु में ही समा जाऊँगा।

बिनसि जाइ झूठी देही

गहरी करि कै नीव खुदाई ऊपरि मंडप छाए॥
मारकंडे ते को अधिकाई जिनि त्रिण धरि मूंड बलाए॥[5]
हमरो करता रामु सनेही॥
काहे रे नर गरबु करत हहु बिनसि जाइ झूठी देही॥
मेरी मेरी कैरउ करते दुरजोधन से भाई॥
बारह जोजन छत्रु चलै था देही गिरझन खाई॥[6]
सरब सुोइन की लंका होती रावन से अधिकाई॥
कहा भइओ दरि बांधे हाथी खिन महि भई पराई॥

दुरबासा सिउ करत ठगउरी जादव ए फल पाए॥[7]
क्रिपा करी जन अपुने ऊपरि नामदेउ हरि गुन गाए॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 692-93

सन्त नामदेव जी एक दुनियादार की वृत्ति की एक सच्चे परमार्थी की वृत्ति से तुलना करते हैं। आप मार्कण्डेय ऋषि का उदाहरण देते हैं जिन्हें सबसे दीर्घ आयुवाला महात्मा माना जाता है। पुराणों में कहा गया है कि आपकी आयु हज़ारों वर्ष की थी, किन्तु आपने अपने रहने के लिये कुटिया तक भी नहीं बनाई। जब वर्षा होती तो आप अपने सिर पर एक तिनका रख लेते। जब कोई श्रद्धालु कुटिया बनाने का आग्रह करता तो आप उत्तर देते कि कुटिया तो तब बनाएँ यदि यहाँ सदैव रहना हो। नामदेव जी कहते हैं कि अज्ञानी लोग संसार और जीवन को स्थायी समझकर, यहाँ हमेशा रहने की आशा रखते हैं। वे गहरी नींव खोदकर उस पर सुन्दर भवनों का निर्माण करते हैं ताकि अनन्त काल तक आनन्द से उनमें रह सकें। वे यह समझने का यत्न नहीं करते कि शरीर और संसार दोनों नश्वर हैं।

शरीर की नश्वरता के इसी भाव को आगे बढ़ाते हुए नामदेव जी कहते हैं कि कौरव, जिनके दुर्योधन जैसे बलवान् भाई थे और जिनका छत्र 12 योजन (48 कोस) तक झूलता था, अन्त समय उनके शवों को सँभालनेवाला भी कोई नहीं था और गिद्ध उन्हें नोच-नोचकर खा गए। सोने की लंका का स्वामी महाबली रावण जिसके द्वार पर अनेक हाथी बँधे रहते थे, उसका भी सर्वनाश हो गया।

कुछ यादव नवयुवकों ने दुर्वासा ऋषि से उपहास किया। ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया जिसके फलस्वरूप वे आपस में ही लड़कर मर गए। इसलिये किसी भी वस्तु का अहंकार करना व्यर्थ है। नामदेव जी कहते हैं कि मेरे प्रभु ने मुझ पर अपार कृपा करके मुझे अपनी भक्ति में लगा लिया है। आप समझाना चाहते हैं कि नश्वर संसार और इसके शक्लों-पदार्थों में से कभी किसी को सच्चा सुख प्राप्त नहीं हुआ। परमेश्वर सत्य है और आत्मा भी सत्य है। इसलिये नश्वर शरीर तथा नश्वर संसार का मोह त्यागकर आत्मा को परमेश्वर से जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये।

सन्त नामदेव जी इस सृष्टि को जादूगर का एक खेल कहते हैं। जैसे एक जादूगर खेल दिखाकर सबको चकित कर देता है लेकिन जब वह झोला उठाकर चल पड़ता है तो पता चलता है कि यह सब तो खेल तथा आँख का धोखा मात्र था। आप कहते हैं:

बाजी रची बाप बाजी रची। मैं बलि ताकी जिन सूं बची॥[8]
बाजी जामन बाजी मरना। बाजी लागि रह्यो रे मना॥[9]
बाजी मन मैं सोचि बिचारी। आपै सुरति आपै सुत्रधारी॥[10]
नामदेव कहै तेरी सरनां। मेटि हमारै जांमन मरना॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 40

संसार परमात्मा का खेल है। संसार के सब लोग इस खेल को सत्य समझकर इसमें उलझे हुए हैं। धन्य है वह व्यक्ति जिसे इस खेल की वास्तविकता का बोध हो गया है। प्रभुरूपी बाज़ीगर ने स्वयं संसार में जन्म-मरण का चक्र चलाया हुआ है। जीवात्मा और मन दोनों उसी के हाथ के खिलौने हैं। जीवात्माएँ कठपुतलियों के समान हैं। वह प्रभु उनको नाना प्रकार के नाच नचानेवाला सूत्रधार है। आप कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तेरी शरण में आ गया हूँ, तू अपनी कृपा द्वारा मुझे जन्म-मरण के खेल से मुक्त कर दे। माया के रचयिता प्रभु का ज़िक्र करते हुए आप कहते हैं:

बीहौं बीहौं तेरी सबल माया। आगै इनि अनेक भरमाया॥[11]
माया अंतर ब्रह्म न दीसै। ब्रह्म के अंतर माया नहीं दीसै॥
भणत नामदेव आप बिधांनां। दहू घोडां न चढाइ हौ कान्हा॥[12]

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2145

माया प्रभु की जादुई शक्ति है, जो सच के झूठ तथा झूठ के सच होने का भ्रम पैदा करती है। बादलों के कारण सूरज दिखाई नहीं देता। इसी तरह माया द्वारा उत्पन्न किये गए भ्रम के कारण प्रभुरूपी सत्य दिखाई नहीं देता और नश्वर संसार सत्य प्रतीत होने लगता है। अगर प्रभुरूपी सत्य प्रकट हो जाए तो मायारूपी परदा हट जाता है। लेकिन, नामदेव जी कहते हैं कि संसार के

सब जीवों को प्रभु की शक्तिशाली माया ने घेर रखा है। संसार के सब लोग झूठे मायावी जगत् को सच्चा समझने के भ्रम के शिकार हैं। प्रभु द्वारा सृजित माया, प्रभु के आदेशानुसार ही अपना खेल खेल रही है। जो लोग इस भ्रम के शिकार हैं कि वे मायावी जगत् के प्रेम और प्रभु-भक्ति दोनों में समान रूप से उन्नति कर लेंगे, वे दो घोड़ों पर सवार होने का प्रयत्न कर रहे हैं। जो दो घोड़ों पर सवार होना चाहता है, अवश्य नीचे गिरता और चोट खाता है। एक सूफ़ी दरवेश का कथन है: 'हर चिह ख़ाही दीन ओ दुनिया-ऐ दूं, ईं ख़याल असतो मुहाल असतो जनूं।' अर्थात् यदि कोई यह समझता है कि वह संसार तथा प्रभु दोनों को एक साथ प्राप्त कर लेगा तो यह उसका भ्रम है, पागलपन है।

संसार माया जाल रे

रे मन पंछीया न परसि पिंजरै। संसार माया जाल रे।[13]
येक दिन मैं तीन फेरा। तोहि सदा झंपै काल रे॥[14]
धन जोबन रूप देषि करि। गरव्यो कहा गंवार रे।
कुंभ कांचौ नीर भरीयो। बिनसतां नहीं बार रे॥[15]
अमी कुंदन कपूर भोजन। नित नवा सिंगार रे।
हंस कावडि छाडि चाल्यौ। देह ह्वै है छार रे॥[16]
ते पिता जननी आहि ल्यछमी। पूत सब परिवार रे।
अंति ऊभा मेल्हि करि। ऐकलो जाइ नहीं लार रे॥[17]
बरस लगि तेरी माइ रोवै। बहनड़ी छह मास रे।
अस्त्री रोवै दस देहाडा। चित वंती घर बास रे॥
भनत नांमदेव सुनूं हो तिलोचन। घटिदया ध्रम पालि रे।[18]
पाहुनां दिनच्यारि केरा। सुकृत राम संभारि रे॥[19]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 75

सन्त नामदेव जी कहते हैं कि आत्मारूपी पक्षी शरीररूपी पिंजरे में क़ैद है। यह संसार माया का जाल है, इसमें कुछ भी सच्चा नहीं है। काल या मृत्यु सदा जीव पर नज़र टिकाए हुए है। सुबह, दोपहर, शाम – किसी भी समय मृत्यु

जीव को झपट सकती है। आप कहते हैं, "ऐ मूर्ख! तू धन और यौवन का गर्व न कर। यह सब पानी से भरे कच्चे घड़े के समान है जो ज़रा-सी चोट से टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। जिस शरीर का पालन-पोषण करने के लिये तू स्वादिष्ट भोजन खाता है और सुन्दर दिखने के लिये प्रतिदिन नाना प्रकार के शृंगार करता है, आत्मारूपी पक्षी के उड़ते ही वह मिट्टी की ढेरी बन जाएगा। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी, धन-सम्पत्ति आदि के मोहवश तू फूला नहीं समाता। अरे अज्ञानी! अन्त समय इनमें से कोई भी तेरा साथ नहीं देगा। ऐ मेरे साथी त्रिलोचन! जीवात्मा यहाँ चार दिन की मेहमान है। इस भ्रम का शिकार नहीं हो कि जीवन स्थायी तथा सच्चा है। सच्चा तथा स्थायी केवल वह प्रभु है। इसलिये प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप करने का यत्न कर।"

मैला मलिता सब संसार

मैला मलिता सब संसार। हरि निरमल जाकौ अंत न पार॥[20]
मैला वीजरु मैला षेत। मन मैला काया जस हेत॥
मैला मोती मैला हीर। मैला पवन पावक अरु नीर॥[21]
मैला तीन लोक ब्रह्मांड इकवीस। मैला निसिबासुर दिनतीस॥
मैला ब्रह्मा मैला इंद्र। सहसकला मैला रवि चंद॥[22]
सब जग मैला आनहिं भाई। जन निर्मल जब हरि गुन गाई॥
मैला पुनि अरु मैला पाप। मैला आनदेव का जाप॥
मैला तीरथ मैला दान। व्रत मैला पूजा सनांन॥
मैला सुर मैली सुरसरी। नामदेव कौ ठाकुर निरमल हरी॥[23]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 121

सन्त नामदेव जी कहते हैं कि समस्त मायावी संसार मलिन तथा नश्वर है। केवल वह अनन्त-अपार प्रभु ही निर्मल तथा अमर-अविनाशी है। मनरूपी खेत भी मैला है और इसमें उगनेवाले आशाओं-तृष्णाओं तथा विषय-विकारों के बीज भी मैले हैं। संसार के पदार्थों की नश्वरता का बयान करते हुए आप कहते हैं कि मोती भी मैले हैं, हीरे भी मैले हैं। पवन, अग्नि और जल भी

मैले हैं। तीनों लोक और इक्कीस ब्रह्माण्ड भी मैले हैं। महीने और दिन-रात भी मैले हैं। ब्रह्मा भी मैला है, इन्द्र भी मैला है। हज़ारों कलाओं वाले ये सूर्य और चन्द्रमा भी मैले हैं। तन-मन से प्रभु-भक्ति में निमग्न लोगों को छोड़कर, सारा संसार मलिन है। पाप तो मैले हैं ही, पुण्य भी मैले हैं। एक प्रभु को छोड़कर किसी अन्य की पूजा भी मैली है। तीर्थ, व्रत, दान, पूजा, स्नान आदि सब मैले हैं। सब देवता तथा गंगा-गोदावरी जैसी पवित्र नदियाँ भी मैली हैं। यानी जो कुछ भी प्रलय-महाप्रलय में नाश हो जानेवाला है, उसे नामदेव जी ने मैला यानी झूठा बताते हुए केवल एक अविनाशी प्रभु को निर्मल यानी सच्चा बताया है।

उपरोक्त वर्णन से प्रत्यक्ष है कि सन्त नामदेव जी ने नश्वर संसार की वास्तविकता पर कई पहलुओं से प्रकाश डाला है। आप कहते हैं कि प्रभु की विचित्र लीला है कि जो संसार वास्तव में परिवर्तनशील तथा नश्वर है, वह सत्य होने का भ्रम पैदा करता है। हमें संसार तथा इसकी शक्लें और पदार्थ स्थायी प्रतीत होते हैं, जब कि वास्तव में ये सब पल-पल बदलते रहते हैं और समय पाकर नष्ट हो जाते हैं।

साधारण वस्तुओं और मानव-शरीर की बात तो एक ओर रही, पृथ्वी, चाँद, सूर्य, सितारे आदि भी नश्वर हैं। किसी वस्तु की अवधि पल-दो पल की है, किसी की दो-चार घण्टे की, किसी की कुछ दिनों या सालों की और कुछ की हज़ारों या लाखों या करोड़ों वर्ष की। देर-सवेर, समय सबको निगल जाता है।

जब से जीवात्मा प्रभु से बिछुड़कर इस सृष्टि का अंग बनी है, यह सच्चे सुख की तलाश में है। इसे यह संसार और इसकी शक्लें और पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं, इसलिये यह इनमें सुख की तलाश करती है। इनसान संसार के अधिक से अधिक पदार्थ इकट्ठे कर लेना चाहता है। वह अपना परिवार बढ़ाता है। वह ऐश्वर्य तथा वैभव में वृद्धि के लिये जी-तोड़ कोशिश करता है क्योंकि वह इन सबको सुख के साधन मानता है। होता क्या है? समय आने पर वे वस्तुएँ भी उसका साथ छोड़ जाती हैं, साथी भी साथ छोड़ जाते हैं, सम्पत्ति, समृद्धि तथा मान-बड़ाई भी साथ छोड़ जाती है।

संसार के साथ हमारा जो भी सम्बन्ध है, शरीर के कारण है। न हमारा शरीर हमेशा हमारा साथ देता है, न ही हमारे मित्रों-सम्बन्धियों का शरीर सदा उनका साथ देता है। अनेक लोग हमें छोड़कर चले जा रहे हैं और अनेक लोगों को छोड़कर हम यहाँ से चले जाएँगे। न हमसे पहले आए लोग यहाँ से कुछ साथ ले जा सके और न ही हम ले जा सकेंगे। विडम्बना यह है कि हम शरीर, संसार तथा इसकी शक्लों और पदार्थों के मोह में फँसकर यहाँ जो-जो कार्य करते हैं, वे हमें आवागमन के दु:खदायी चक्र से बाँध देते हैं। हमें किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिये बार-बार इस मर्त्य-लोक में जन्म लेना पड़ता है। हुज़ूर महाराज जी फ़रमाया करते थे कि शरीर में "हम बाद में आते हैं, मौत पहले ही आँखों के आगे आकर खड़ी हो जाती है।"[24]

हम संसार को वास्तविक समझते हैं, इसलिये हमारे मन में अनेक प्रकार की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ घर कर लेती हैं जिन्हें पूरा करने के लिये हम अनेक प्रकार के दु:ख झेलते हैं। एक इच्छा पूरी नहीं होती कि मन में अनेक इच्छाएँ और उत्पन्न हो जाती हैं। सारा जीवन संघर्ष तथा बेचैनी में गुज़र जाता है। अन्त समय सिवाय निराशा के कुछ भी हाथ नहीं लगता।

इसी लिये नामदेव जी मनुष्य को बार-बार सावधान करते हैं कि तुम संसार की वास्तविकता को समझने का यत्न करो। जब तक तुम संसार को सत्य समझने की अज्ञानता में फँसे रहोगे, तुम कर्म तथा फल और आवागमन के जाल से भी बँधे रहोगे।

कर्म तथा फल

अकुल पुरख इकु चलितु उपाइआ॥ घटि घटि अंतरि ब्रहमु लुकाइआ॥[25]
जीअ की जोति न जानै कोई॥ तै मै कीआ सु मालूमु होई॥[26]
जिउ प्रगासिआ माटी कुंभेउ॥ आप ही करता बीठुलु देउ॥
जीअ का बंधनु करमु बिआपै॥ जो किछु कीआ सु आपै आपै॥[27]
प्रणवति नामदेउ इहु जीउ चितवै सु लहै॥ अमरु होइ सद आकुल रहै॥[28]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1351

नामदेव जी कहते हैं कि उस प्रभु ने एक विचित्र लीला रच रखी है। बाहर से देखने में सब जीव अलग-अलग दिखाई देते हैं लेकिन वास्तव में हर घट के अन्दर वह एक प्रभु छिपा बैठा है। लोगों का ध्यान शरीर पर होता है, अन्तर में बैठी आत्मा को कोई नहीं देखता। उस अन्तर्यामी की ज्योति को तो कोई नहीं जानता, पर मेरे-तेरे के भेद को सब समझते हैं। आत्मा, परमात्मा का रूप है। जैसे कुम्हार अनेक प्रकार के बरतनों का सृजन करता है, वैसे ही वह प्रभु अनेक रंग-रूप वाले जीवों का सृजनहार है। प्रभु ने जीव को कर्म और फल की डोरी से बाँधा हुआ है। जो भी कर्म वह करता है, उसे ख़ुद ही भोगना पड़ता है। सृजनहार भी एक है और हर जीव के अन्दर बैठी आत्मा भी एक है, रूपों की भिन्नता का कारण जीवों के कर्म हैं। जीव किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिये विवश है। आप कहते हैं कि मैं उस जीव को प्रणाम करता हूँ जो अकालपुरुष का सदा ध्यान करता है, वह अमर हो जाता है।

जीव की आशा-तृष्णा कर्म को जन्म देती है और कर्म, फल को जन्म देता है। जितनी प्रबल किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होती है या जितना अधिक किसी वस्तु में जीव का ध्यान होता है, वह उतनी ही तेज़ी से उसकी ओर खिंचा चला जाता है।

मनुष्य जो भी बुरे कर्म करता है, इस भ्रम के अधीन करता है कि न तो कोई उसे देख रहा है और न ही उसे किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। वास्तविकता इसके विपरीत है। संसार कर्म-भूमि है। नामदेव जी ने यह समझाने का यत्न किया है कि कर्म और फल का नियम अटल है।[29] जीव जैसे कर्मों का बीज बोता है, वैसी फ़सल उसको काटनी पड़ती है। पुनर्जन्म अथवा आवागमन का नियम भी कर्म और फल के सिद्धान्त का ही महत्त्वपूर्ण अंग है। इनसान एक जन्म में किये गए सभी कर्मों का फल, उसी जन्म में नहीं भोग सकता। कोई हत्यारा किसी की हत्या कर देता है। मारा गया व्यक्ति, उसी समय उठकर हत्यारे से बदला नहीं ले सकता। इस तरह अनभोगे कर्म जमा होते रहते हैं, जिनका हिसाब देने के लिये इनसान सदैव आवागमन के चक्र में बँधा रहता है। पूर्व-जन्मों के कर्मों में से, वर्तमान जन्म में भोगने के लिये, दिये गए कर्मों को प्रारब्ध कहा जाता है। इन कर्मों को

भोगते हुए जो नए कर्म करते हैं, वे क्रियमान कर्म कहलाते हैं। जन्मों-जन्मों के अनभोगे कर्मों के भण्डार को संचित कर्म कहा जाता है। मर्त्य-लोक से लेकर नरकों-स्वर्गों तक और मनुष्य से लेकर देवी-देवताओं तक सब जीव, किये हुए कर्मों का भुगतान करने के लिये बार-बार जन्म लेते और मरते रहते हैं।

कर्मों को आमतौर पर पुण्यों और पापों में बाँटा जाता है। मन, वचन और कर्म द्वारा किसी को सुख देना पुण्य है और मन, वचन और कर्म द्वारा किसी को दुःख देना पाप है। पुण्य कर्मों के फलस्वरूप सुख प्राप्त होते हैं और पाप कर्मों के कारण दुःख भोगने पड़ते हैं। पुण्य, पापों का नाश नहीं कर सकते। पुण्य, पुण्यों के और पाप, पापों के लेखे में जमा होते हैं तथा दोनों प्रकार के कर्मों के भुगतान के लिये मनुष्य चौरासी का हिस्सा बना रहता है।

कर्म और कर्म-फल की अटलता का समर्थन सभी पूर्ण सन्तों ने किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

रामचरितमानस, 2:218:2

गुरु नानक देव जी कहते हैं:

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 433

स्वामी जी महाराज कहते हैं:

दुक्ख सुक्ख जो ब्यापत होई। पिछले कर्म भोग हैं सोई॥

सारबचन संग्रह, 33:23:19

जैसी करनी वैसी भरनी

सोच विचार न करता अपनी करनी पर, सारा दोष क्यों डालता प्रभु पर,
क़साई करता जब पशु-वध, और कट जाती अँगुल,

मर गया, मर गया कहकर, हो जाता विह्वल॥
अपने दुःख से दुःखी होता, पर पीड़ित पर ख़ूब हँसता,
धन-कमाई, घर डाकू लूट लेता, चिल्ला-चिल्लाकर ख़ूब रोता,
औरों को वह सदा रहा लूटता, उसे कभी ना याद आता,
चोर चुरा ले जाते सब सोना, छाती पीट-पीटकर रोता॥
औरों को था उसने ठगा, यह भी वह भूल जाता,
मंगता जो आए दर पर, हे देव! क्या करूँ कहता,
ख़ुद माँगता, परम सुख पाता, देते वक़्त कलेजा फटता,
जन्म से शिशु सा मेमना पाला, उसी के वध हेतु छुरी थामता॥[30]
अपने गले जब फन्दा पड़ता, मैंने क्या किया कहता,
कितने जीवों को उसने मारा, अपना किया भूल जाता,
कहे नामा, ऐसे निर्लज्ज कहलाते भक्त, भगवन् उन्हें कैसे मिलता॥

आपुली करणी न विचारी मनीं
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1839

नामदेव जी कहते हैं कि हे मन! तूने कर्म करते समय यह नहीं सोचा कि तुझे स्वयं ही इनका फल भोगना पड़ेगा। अब अपने भाग्य के लिये विधाता को दोष क्यों देता है? पशु का गला काटते समय ग़लती से क़साई की अपनी अँगुली कट जाए, तो वह दर्द से 'मर गया', 'मर गया', कहकर चिल्लाता है, पर पशुओं की गर्दन पर छुरी चलाते समय उन्हें होनेवाली असह्य पीड़ा का उसे बिल्कुल आभास नहीं होता। मनुष्य अपने दुःख से बिलखता है, पर दूसरों के दुःख पर खिलखिलाकर हँसता है। इनसान डाकुओं द्वारा अपना घर लुट जाने पर रोता है, परन्तु दूसरों को लूटते समय बिल्कुल निर्दयी हो जाता है। सुनार दूसरों की माँ-बहन का सोना चुराते समय निर्लज्ज हो जाता है, परन्तु यदि चुराया हुआ सोना भी चोरी हो जाए तो अपनी छाती पीटता है। भिखारी दूसरों से कुछ लेते समय बहुत प्रसन्न होता है, परन्तु यदि उसे किसी को कुछ देना पड़ जाए तो दुःख महसूस करता है। मानव इतना निर्दयी हो जाता है कि मांस प्राप्त करने के लिये, बच्चे की तरह पाले हुए भेड़ के

बच्चे के गले पर छुरी चलाने से भी नहीं झिझकता। वह दूसरों को दुःख और कष्ट पहुँचाने में रत्ती भर भी संकोच नहीं करता, लेकिन जब अपने गले में फाँसी का फन्दा पड़ता है, तो वह सोचता है कि मैंने ऐसा क्या किया जो यह फाँसी का फन्दा मेरे गले पड़ा है? तब वह भूल जाता है कि उसने कितने जीवों को मारा तथा दुःख पहुँचाया है। नामदेव जी कहते हैं कि पापी तथा निर्दयी और निर्लज्ज लोग भले ही अपने को भगवद्-भक्त कहलाएँ, पर उनका परमेश्वर से मिलाप कदापि नहीं हो सकता। मनुष्य मन के अधीन होकर बेतहाशा कर्म करता चला जाता है, इसलिये उसे अपने किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

इसी बात पर ज़ोर देते हुए बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु॥[31]
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु॥[32]
आदि ग्रन्थ, पृ. 1379

आप आश्चर्य प्रकट करते हैं कि किसान पौधा तो कीकर का लगाता है, परन्तु इससे आशा बिजौर के बढ़िया अंगूर की रखता है! वह ऊन का धागा कतवाता है, परन्तु कपड़ा रेशम का पहनना चाहता है! यह कदापि सम्भव नहीं।

जिन जस लादा तिन तस पाया

यह संसार हाट कौ लेखा, सब कोउ बनीजहिं आया।[33]
जिन जस लादा तिन तस पाया, मूरख मूल गवाया॥
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2333

आप चेतावनी देते हैं कि यह संसार एक बाज़ार की तरह है, जहाँ हर कोई व्यापार कर रहा है। जो जैसी वस्तु ख़रीदता है, उसे उसकी वैसी ही क़ीमत चुकानी पड़ती है। इसी तरह हर व्यक्ति को किये गए कर्मों के अनुरूप फल भोगना पड़ता है। समझदार लोग साँसों की पूँजी को प्रभु-भक्ति में

लगाकर मुक्ति का फल प्राप्त कर लेते हैं जब कि अज्ञानी लोग इस अमूल्य पूँजी को व्यर्थ के धन्धों में लुटा देते हैं।

आप आगे कहते हैं:

जौ ऐसौ औसर बिसरैगो, तौ मरकट कौ औतार धरैगौ॥
करम डोरि बाजीगर कै बसि, नाचत घरि घरि बार फिरैगो॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 178

आप सावधान करते हैं कि मनुष्य-जन्म में प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप कर लोगे तो आवागमन के बन्धनों से सदा के लिये मुक्त हो जाओगे। यदि इस अमूल्य अवसर को व्यर्थ के अन्य धन्धों मे गँवा दोगे तो कर्म और फल के जाल से बँधे रहोगे। फिर तुम्हारी वही दुर्गति होगी जो मदारी के हाथों बन्दर की होती है। धर्मराज के आदेशानुसार अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिये अनेक योनियों में भटकते रहोगे।

इससे स्पष्ट है कि मनुष्य का असल बन्धन उसके अपने कर्म हैं, क्योंकि जब तक सारे कर्मों का नाश नहीं होता, आत्मा बन्धन-मुक्त नहीं हो सकती। कर्मों से छुटकारे का एकमात्र साधन पूर्ण गुरु की शरण तथा प्रभु-भक्ति या नाम की कमाई है। वास्तव में प्रभु-भक्ति या नाम-भक्ति का मूल उद्देश्य कर्मों का नाश है। जैसे-जैसे जीव सतगुरु के उपदेश के अनुसार अपनी लिव अन्तर में शब्द से जोड़ता है, सुरत पर चढ़ी कर्मों की मैल उतरती जाती है और आत्मा पुनः निर्मल होकर प्रभु से मिलाप करने के योग्य बन जाती है।

इसलिये नामदेव जी कहते हैं:

जे जन राम नाम रंगि राता, छाडि करम की आसा।
ते जन रामै राम समानै, प्रणवत नामदेव दासा॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 82

जो व्यक्ति किसी सन्त-महात्मा की बताई युक्ति के अनुसार नाम की साधना करता है, वह कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है और प्रभु में समाकर प्रभु का रूप बन जाता है।

मन और इसके विकार

सन्त नामदेव जी समझाते हैं कि परमार्थी साधना अथवा प्रभु से मिलाप के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा इनसान का मन है। मन काल का कारिंदा है। यह जीवात्मा को संसार की तृष्णाओं, विषय-विकारों तथा इन्द्रियों के भोगों में उलझाकर प्रभु-प्रेम तथा प्रभु-प्राप्ति के मार्ग से दूर रखने का यत्न करता है। मन को वश में किये बिना प्रभु से मिलाप कर सकना असम्भव है। इसलिये जीवात्मा का एक और बड़ा संकट उसका मन है। मन जीवात्मा को इन्द्रियों के भोगों तथा विषय-विकारों की तरफ़ खींचता है। जीवात्मा इस भ्रम का शिकार हो जाती है कि इसे इनमें से सच्चा सुख प्राप्त हो जाएगा। इस तरह इसका संकट और गहरा होता जाता है।

आत्मा प्रभु की अंश है। इस रचना का भाग बनने से पहले इसका सत्यलोक में निवास था। वर्तमान अवस्था में यह मन और शरीर के साथ बँधी हुई है। जब से यह इस रचना का भाग बनी है, यह उस परम-आनन्द की खोज में है जो इसे सत्यलोक में प्राप्त था। इस नश्वर संसार में वह आनन्द मिल सकना असम्भव है। आत्मा का स्वाभाविक आकर्षण अपने स्रोत प्रभु की तरफ़ है, जब कि मन इसे मायावी रचना के साथ बाँधकर रखने के लिये विषय-विकारों में फँसा देता है। जितना अधिक जीव इन्द्रियों के भोगों और विषय-विकारों में लिप्त होता जाता है, उतना अधिक मायावी दलदल में फँसकर निज-घर से दूर होता जाता है। जीवात्मा की हालत उस अज्ञानी जैसी है, जो शत्रु को मित्र तथा नौकर को मालिक समझना शुरू कर देता है।

सन्त-महात्मा समझाते हैं कि मन, आत्मा को कार्यशील करने का यन्त्र है। आत्मा जन्म और कर्म से परे है, किन्तु मन-माया के मण्डलों में यह केवल मन द्वारा ही कार्य कर सकती है। मन भी अमरबेल की तरह है। अमरबेल की अपनी जड़ नहीं होती। वह जिस वृक्ष पर उगती है, उससे शक्ति लेकर उसी को सुखा देती है। मन भी आत्मा से शक्ति लेकर उसी को निर्बल बना देता है। वास्तव में मन, आत्मा का सेवक है, परन्तु इन्द्रियों का साथ लेकर मन ने आत्मा को अपने अधीन कर लिया है। आहिस्ता-आहिस्ता यह आत्मा पर हावी हो जाता है और इसे अपनी इच्छानुसार नचाता है।

मन एक तरह का कम्प्यूटर है। कम्प्यूटर अपने आप कुछ नहीं करता। हम जो कुछ कम्प्यूटर की 'मेमरी' (memory) में 'फ़ीड' करते (डालते) हैं, कम्प्यूटर उसे ही प्रकट करता है। इसी तरह मन हमारे ख़ुद के पूर्व में किये हुए कर्मों और हमारे संस्कारों के अनुसार कार्यशील होता है। मृत्यु के समय शरीर पीछे छूट जाता है, परन्तु किये हुए समस्त कर्मों का प्रभाव मन और आत्मा के साथ बना रहता है। अगले जन्म में शरीर बदल जाता है, किन्तु मन और आत्मा पूर्व संस्कारों के अधीन पुन: कर्म करते रहते हैं।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन के कार्यशील होने के यन्त्र हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार मन के शस्त्र हैं। मन में पल-पल अनेक इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। उन इच्छाओं की पूर्ति के लिये मन आत्मा को अपने साथ खींचकर इन्द्रियों के घाट पर ले आता है। मन कामनाओं की पूर्ति के लिये इन्द्रियों से कर्म करवाता है और किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिये मन तथा आत्मा आवागमन के चक्र से बँध जाते हैं। पूर्व जन्मों में मन-आत्मा अनन्त कर्म कर चुके हैं। जब तक इन सब कर्मों का नाश नहीं होगा, मन निर्मल नहीं हो सकता और आत्मा इसके चंगुल से आज़ाद होकर निज-घर वापस नहीं जा सकती।

मन बहुत शक्तिशाली है और इन्द्रियों के भोगों का रसिया है। अब सवाल पैदा होता है कि इसे वश में कैसे किया जाए? इसे वही वस्तु वश में कर सकती है जो इससे अधिक शक्तिशाली हो और जिसमें इन्द्रियों के भोगों से अधिक रस और आनन्द हो। ऐसा सामर्थ्य केवल प्रभु के सच्चे नाम में है। जब इसे सन्तों-महात्माओं की संगति द्वारा प्रभु की दिव्य-धुन (शब्द) का अलौकिक रस मिलता है तो यह सहज ही इन्द्रियों के विषय-विकारों से मुँह मोड़ लेता है। नामदेव जी कहते हैं:

काएं रे मन बिखिआ बन जाइ॥ भूलौ रे ठगमूरी खाइ॥[34]
जैसे मीनु पानी महि रहै॥ काल जाल की सुधि नही लहै॥
जिहबा सुआदी लीलित लोह॥ ऐसे कनिक कामनी बाधिओ मोह॥[35]
जिउ मधु माखी संचै अपार॥ मधु लीनो मुखि दीनी छारु॥[36]

गऊ बाछ कउ संचै खीरु॥ गला बांधि दुहि लेइ अहीरु॥[37]
माइआ कारनि स्रमु अति करै॥ सो माइआ लै गाडै धरै॥[38]
अति संचै समझै नही मूढ़॥ धनु धरती तनु होइ गइओ धूड़ि॥[39]
काम क्रोध त्रिसना अति जरै॥ साधसंगति कबहू नही करै॥
कहत नामदेउ ता ची आणि॥ निरभै होइ भजीऐ भगवान॥[40]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1252

आप सावधान करते हैं कि हे मन! तू विषय-विकारों के जंगल में क्यों भटक रहा है? काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और आशाएँ, तृष्णाएँ आदि तुझे ठग रही हैं। तू इनको अपना मित्र या हितैषी समझने की अज्ञानता न कर। चोर चोरी से धन चुरा लेता है। डाकू ज़बरदस्ती धन लूटकर ले जाता है। ठग अपना होने का ढोंग रचकर ठग लेता है। आप समझाते हैं कि ठग यात्रियों के साथ मिल जाते हैं, वे मिष्ठान्न (मिठाई) में ऐसा पदार्थ मिलाकर उन्हें खिला देते हैं जिससे यात्री बेहोश हो जाते हैं और ठग उनका माल लेकर चम्पत हो जाते हैं। आप सावधान करते हैं कि विषय-विकार वे ठग हैं जो आत्मा से उसकी परमार्थी पूँजी हथिया लेते हैं। मछली यह नहीं जानती कि शिकारी ने काँटे के साथ आटा या गोश्त उसके लाभ के लिये नहीं, उसको पकड़ने के लिये लगाया है। आटे या गोश्त के लालच में वह काँटा भी निगल जाती है और अपनी जान गँवा देती है। इसी तरह इनसान विकारों के जाल में फँसकर अपना जन्म तथा परमार्थ नष्ट कर लेता है।

मधुमक्खियाँ शहद इकट्ठा करती हैं, लोग उन्हें धुएँ से उड़ाकर शहद निकाल लेते हैं। गाय अपने बछड़े के लिये दूध पैदा करती है, लेकिन अहीर (ग्वाला) बछड़े को एक ओर बाँधकर उसका दूध दुह लेता है। लोग धन प्राप्त करने के लिये कड़ी मेहनत करते हैं और उस धन को ज़मीन में गाड़ देते हैं। वे मूर्ख यह नहीं समझते कि उनका धन ज़मीन में ही दबा रह जाएगा और उनका शरीर मिट्टी में मिलकर मिट्टी बन जाएगा। आप समझाते हैं कि ऐ इनसान, तू काम, क्रोध, आशा, तृष्णा आदि के विकारों से इतना ग्रस्त हो जाता है कि साध-संगत की तरफ़ कभी ध्यान ही नहीं देता। हे मन! तुझे

परमात्मा की सौगन्ध है कि तू संसार की आशा-तृष्णा को त्यागकर, निडर होकर प्रभु के नाम का सिमरन कर।

छाडि मनारे झूठी आसा

काहे रे मन भूला फिरई। चेति न राम चरन चित धरही॥
नरहरि नरहरि जपिरे जीयरा। अवधि काल दिन आवै नियरा॥[41]
पुत्र कलित्र धन चित बेसासा। छाडि मनारे झूठी आसा॥[42]
तू जिनि जानै ग्रेही ग्रेहा। बिनसत बार कछू नहीं देहा॥[43]
कहत नांमदेव झूठी देही। तौ सांची जे राम सनेही॥[44]

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2184

नामदेव जी चेतावनी देते हैं: हे मन! तू भ्रम में क्यों खोया हुआ है? तू प्रभु के चरण-कमलों से प्रीति क्यों नहीं करता? आयु दिनों-दिन घटती जा रही है और अन्तिम घड़ी नज़दीक आ रही है, इसलिये तुझे स्वास-स्वास प्रभु के नाम का सिमरन करना चाहिये। बेटे-बेटियाँ, स्त्री, धन आदि सब मोह-माया का प्रपंच हैं। इनसे सच्ची शान्ति की आशा रखना अज्ञानता है। यह शरीर भी झूठा और नाशवान् है, जिस घर और भाई-बन्धुओं को तू अपना समझे बैठा है, वे भी सदा तेरा साथ नहीं देंगे। अन्त में ज़ोर देकर चेतावनी देते हैं कि यह देह झूठी है, सच्ची तब साबित होगी, जब परमात्मा से प्रीत करेगा।

सापु कुंच छोडै बिखु नही छाडै

सापु कुंच छोडै बिखु नही छाडै॥ उदक माहि जैसे बगु धिआनु माडै॥[45]
काहे कउ कीजै धिआनु जपंना॥ जब ते सुधु नाही मनु अपना॥
सिंघच भोजनु जो नरु जानै॥ ऐसे ही ठगदेउ बखानै॥[46]
नामे के सुआमी लाहि ले झगरा॥ राम रसाइन पीओ रे दगरा॥[47]

आदि ग्रन्थ, पृ. 485-86

नामदेव जी कई उदाहरणों द्वारा यह बात समझाने का प्रयत्न करते हैं कि प्रभु-भक्ति के लिये मन की निर्मलता आवश्यक है। आप कहते हैं कि साँप अपनी केंचुली उतार देता है, पर अपना विष कभी नहीं छोड़ता। बगुला जल में एक टाँग पर खड़ा होकर ध्यान लगाता है, परन्तु उसके मन में मछली को पकड़कर खाने का कपट छिपा होता है। जब तक मन निर्मल नहीं, ऐसे ध्यान का क्या लाभ? जिस तरह शेर अपनी ख़ुराक के लिये जंगल में जानवरों को कपट से मारकर अपना पेट भरता है, उसी तरह जो व्यक्ति अपनी जीविका के लिये दूसरों के पेट पर छुरी चलाता है, ऐसे व्यक्ति को नामदेव जी ठगों का देवता कहते हैं। नामदेव जी इन्हीं उदाहरणों द्वारा यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि प्रभु-भक्ति के लिये मन की निर्मलता आवश्यक है। इसलिये आप प्रार्थना करते हैं कि इनसान हृदय की कठोरता और कपट छोड़कर निर्मल मन से नाम के अमृत को पीने का यत्न करे।

स्वामी जी महाराज कहते हैं:

बड़ा बैरी यह मन घट में। इसी का जीतना कठिना॥
पड़ो तुम इसही के पीछे। और सबही जतन तजना॥

सारबचन संग्रह, 19:2:8-9

पलटू साहिब की वाणी है:

मन हस्ती मन लोमड़ी, मनै काग मन सेर।
पलटुदास साची कहै, मन के इतने फेर॥

पलटू साहिब की बानी, भाग 3, पृ. 77

मन कभी हाथी की तरह शक्तिशाली, कभी लोमड़ी की तरह चालाक, कभी कौए के समान मलिन तो कभी शेर के समान ख़ूँख़्वार बन जाता है। मन के हेर-फेर समझ सकना और इसे वश में कर पाना अति कठिन है।

छांडि दे रे मन हमिता ममिता

छांडि दे रे मन हमिता ममिता। सब घट रांम रह्यौ रमि रमता॥[48]
आसा करि मन जइये जहिंया। राम बिना सुष नाहीं तहिंया॥[49]

जन की प्रीति अगम पियारी। ज्यों जल निरषि भरै पनिहारी॥[50]
भणत नांमदेव सब गुन आगर। भजि हरि चरन कृपा सुष सागर॥[51]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 123

नामदेव जी कहते हैं, "हे मेरे मन! तू मोह-ममता और घमण्ड छोड़ दे। तू चाहे किसी वस्तु की तलाश में कहीं भी भटकता फिरे, प्रभु के बिना तुझे कहीं भी सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। तेरा प्रभु में इस तरह ध्यान होना चाहिये जैसे पनिहारिन का पानी ढोते समय सिर पर रखी मटकी में होता है। हे मन! तू सदैव उस गुण-निधान तथा सुख-सागर प्रभु के चरण-कमलों की आराधना में लगा रह।"

सबै चतुरता बरतै अपनी

सबै चतुरता बरतै अपनी।
ऐसा न कोइ निरपष ह्वै षेलै, ताथै मिटै अंतर की तपनीं॥[52]
अंतरि कुटिल रहत षेचर मति, ऊपरि मंजन करत दिन षपनी॥[53]
ऐसा न कोइ सरबंग पिछानै, प्रभु बिन और रैनि दिन सुपनी॥[54]
सोई साध सोई मुनि ग्यानी, जाकी लागि रही ल्यौ रसनी॥
भणत नामदेव तिनि थिति पाई, जाके रांम नांम निज रटनी॥[55]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 13

संसार के सभी लोग बहुत चतुराई से अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे हुए हैं। ऐसा कोई दिखाई नहीं देता जो संसार से उदासीन होकर अपने अन्दर से विषय-विकारों की आग, प्रभु-भक्ति द्वारा दूर करने का यत्न करे। परन्तु यह अपना पूरा जीवन बाहर के तीर्थों आदि के स्नान में लगा रहता है और अपने आपको उजला प्रस्तुत करने का आडम्बर करता है। सच्चा साधु और सच्चा ज्ञानी वही है, जो संसार को सपने की तरह झूठा समझकर अपनी लिव सदैव अविनाशी प्रभु से जोड़कर रखता है। सन्त नामदेव जी कहते हैं कि शान्ति उसी को मिलती है जो हमेशा राम-नाम के सिमरन में लगा रहता है।

समझि मन मूरिष

अभिमांन लीषां नर आयौ रे।[56]
पर आत्म आत्म नहीं चीन्हीं। नर वपु नांव धरायो रे॥[57]
गरभबास मैं हुतौ दीनता। त्राहि त्राहि ल्यौ लायौ रे।
हा हा करत विसंभर आगै। गहि आपदा छुड़ावौ रे॥[58]
अब रातौ तै बिषै बासना। संग तृस्नां कै धायौ रे।[59]
गुन्हेगार गोबिंद देव कौ। कबहूं राम न गायौ रे॥
मैं हरि नांम अधार धार कै। साधू सरनि बतायौ रे।
नांमदेव कहै समझि मन मूरिष। जौ समझै समझायौ रे॥[60]

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2269

नामदेव जी कहते हैं कि विषय-विकारों में लिप्त मनुष्य हमेशा अहंकार में डूबा रहता है। वह अहंकार में दूसरों के साथ मनुष्यों जैसा व्यवहार नहीं करता। वह भूल जाता है कि जब वह माता के गर्भ में अत्यन्त दयनीय अवस्था में उलटा लटक रहा था तो इस आपदा से छुटकारा पाने के लिये बार-बार प्रभु से प्रार्थना करता था कि इस गर्भ की कोठरी से बाहर निकलने पर मैं पल-पल तुझे याद रखूँगा। उस वादे को भूलकर वह विषय-विकारों और आशा-तृष्णा के वेग में बहा जा रहा है। इसलिये वह उस परमात्मा का बहुत बड़ा गुनाहगार है जिसने उसकी गर्भ में रक्षा की थी। बाहर आकर वह उसके गुण नहीं गाता, उसको भूल जाता है। आप कहते हैं कि मैंने तो सन्तों की शरण प्राप्त कर ली है और उनकी बताई युक्ति के अनुसार हरिनाम को अपने जीवन का आधार बना लिया है। आप कहते हैं कि हे मूर्ख मन! सन्तों के बताए उपदेश को समझ और उस पर चलने का यत्न कर।

जब तक नहीं छोड़ता मैं-तू मन

ममत्व देह का जब तक नहीं छूटता,
जब तक नहीं हटता विषयों से मन।

आत्मिक सुख तब तक कैसे पाता,
जब तक नहीं छोड़ता मैं-तू मन।
भक्त-मुक्त मैं ही, पतित यह मानता,
कहे नामा, शान्ति पाए कैसे जीव, तेरी कृपा बिना।

देहाचें ममत्व जंव नाहीं तुटलें
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1921

जब तक देह की ममता नहीं टूटती, मन विषय-वासना के भोगों को नहीं छोड़ता और अहंभाव नष्ट नहीं होता, तब तक आत्मिक सुख-शान्ति कैसे मिल सकती है? नामदेव जी दीनतापूर्वक कहते हैं कि मुझ जैसे पतित और दुराचारी का यह कहना उचित नहीं है कि मैं प्रभु का भक्त हूँ और मैंने मुक्ति प्राप्त कर ली है। हे देव! भक्ति, शान्ति और मुक्ति केवल तुम्हारी कृपा द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

मानै बासै नाना भेदी भरमतु है संसारी

मन की बिरथा मनु ही जानै कै बूझल आगै कहीऐ॥[61]
अंतरजामी रामु रवांई मै डरु कैसे चहीऐ॥[62]
बेधीअले गोपाल गोसाई॥ मेरा प्रभु रविआ सरबे ठाई॥[63]
मानै हाटु मानै पाटु मानै है पासारी॥
मानै बासै नाना भेदी भरमतु है संसारी॥[64]
गुर कै सबदि एहु मनु राता दुबिधा सहजि समाणी॥[65]
सभो हुकमु हुकमु है आपे निरभउ समतु बीचारी॥[66]
जो जन जानि भजहि पुरखोतमु ता ची अबिगतु बाणी॥[67]
नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख बिडाणी॥[68]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1350-51

नामदेव जी कहते हैं कि अपनी मनोदशा केवल मैं ही जानता हूँ, कोई दूसरा इसे नहीं जान सकता। मैं सदैव उस प्रभु के नाम के सिमरन में लीन

रहता हूँ। मेरा मन उस सर्वव्यापक प्रभु में लीन हो गया है, इसलिये मैं पूरी तरह से निर्भय हो गया हूँ। पहले मेरा चंचल मन पल भर में बाज़ार में पहुँच जाता था, पल भर में शहर में घूमने चला जाता था। यह मन नाना प्रकार के रंग दिखाता था और सारे संसार का भ्रमण करता रहता था। अब मन सतगुरु के शब्द के रंग में रँग गया है। इसकी दुविधा तथा भटकन दूर हो गई है। यह पूरी तरह निश्चल हो गया है। अब इसे ऐसी सद्बुद्धि प्राप्त हो गई है कि इसे समस्त सृष्टि उस प्रभु की लीला प्रतीत होती है। आप कहते हैं कि जिस प्रभु-भक्त को इस रहस्य का बोध हो जाता है वह अन्तर में अनहद वाणी से जुड़ जाता है और उसका उस अलख-पुरुष से मिलाप हो जाता है।

मन को वश में करने का उपाय: सन्तों की शरण

अब सन्त नामदेव जी मन के विकारों को दूर करने के साधन बयान करते हुए समझाते हैं:

दस बैरागनि मोहि बसि कीन्ही

दस बैरागनि मोहि बसि कीन्ही पंचहु का मिट नावउ ॥[69]
सतरि दोइ भरे अंम्रित सरि बिखु कउ मारि कढावउ ॥
पाछै बहुरि न आवनु पावउ ॥
अंम्रित बाणी घट ते उचरउ आतम कउ समझावउ ॥
बजर कुठारु मोहि है छीनां करि मिंनति लगि पावउ ॥[70]
संतन के हम उलटे सेवक भगतन ते डरपावउ ॥
इह संसार ते तब ही छूटउ जउ माइआ नह लपटावउ ॥
माइआ नामु गरभ जोनि का तिह तजि दरसनु पावउ ॥
इतु करि भगति करहि जो जन तिन भउ सगल चुकाईऐ ॥[71]
कहत नामदेउ बाहरि किआ भरमहु इह संजम हरि पाईऐ ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 693

इन्द्रियों और विकारों को नियन्त्रित किये बिना भक्ति-मार्ग पर आगे बढ़ सकना असम्भव है। नामदेव जी कहते हैं कि मैंने दस इन्द्रियों – पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों – को वश में कर लिया है तथा पाँच विकारों पर विजय प्राप्त कर ली है। इस तरह मेरे शरीर की 72 हज़ार नाड़ियाँ विषमुक्त हो गई हैं और सारा शरीर नाम के अमृत से भर गया है। इस तरह मेरे आवागमन के बन्धन कट गए हैं। मेरा मन अन्तर में शब्दरूपी सच्ची वाणी में लीन हो गया है। इससे मन और आत्मा निर्मल हो गए हैं। मैंने गुरु की शरण प्राप्त करके उनकी कृपा द्वारा शब्द की तेज़ कुल्हाड़ी से मोह के बन्धनों को काट दिया है। मैंने संसार से मुँह मोड़कर सन्तों की शरण ले ली है। अब मैं मन-इन्द्रियों के स्थान पर सन्तों का दास बन गया हूँ।

आप कहते हैं कि माया के मोह के कारण ही इनसान बार-बार जन्म लेता तथा मरता है। इस भवसागर से तभी छुटकारा हो सकता है, जब मन, माया के मोह से मुक्त हो जाए। माया से मुक्ति मिलते ही सहज-रूप से प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है। जो लोग प्रेमपूर्वक प्रभु की भक्ति करते हैं, उनके सब डर समाप्त हो जाते हैं। आप कहते हैं कि बाहर भटकना व्यर्थ है। वह प्रभु हमारे शरीर के अन्दर है तथा उसे पाने का एकमात्र साधन गुरु के उपदेश के अनुसार माया का मोह त्यागकर नाम की कमाई करना है।

गुरु अमर दास जी कहते हैं:

इसु मन कउ होरु संजमु को नाही विणु सतिगुर की सरणाइ ॥
सतगुरि मिलिए उलटी भई कहणा किछू न जाइ ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 558

सतगुरु की शरण में आए बिना इस मन को किसी भी अन्य साधन द्वारा वश में नहीं किया जा सकता। सन्तों की शरण लेने से मन की अवस्था बदल जाती है। यह मन जो सदा संसार के विषय-विकारों में फँसा हुआ नीचे की तरफ़ जा रहा था, सतगुरु की बताई हुई युक्ति पर चलने से यह विषय-विकारों से मुँह मोड़ लेता है तथा नीचे इन्द्रियों की ओर जाने के बजाय आँखों के ऊपर पहुँचकर आन्तरिक रूहानी मण्डलों में पहुँच जाता

है। वहाँ पहुँचकर इसे वह अनुपम आनन्द और शान्ति प्राप्त होती है, जिसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

मीराबाई कहती हैं:

जनम जनम का सोया मनुआ, सतगुरु शब्द सुन जागा॥
मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 841

सतगुरु की शरण तथा सुरत-शब्द के अभ्यास द्वारा, जन्म-जन्म का सोया हुआ मन जाग्रत हो जाता है। इसकी वृत्ति अन्तर्मुख हो जाती है और यह इन्द्रियों के भोगों से मुँह मोड़कर शब्द के आनन्द में लीन हो जाता है।

मनुष्य-जन्म

मानव प्रभु की श्रेष्ठतम रचना है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद प्रभु की अपार कृपा और सौभाग्य से मानव-जन्म का श्रेष्ठ वरदान प्राप्त होता है। इसलिये मानव को इस दुर्लभ अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये। लेकिन देखा जाता है कि दुनिया के अधिकतर लोग मनुष्य-जन्म को इन्द्रियों के भोगों तथा विषय-विकारों की पूर्ति का साधन समझते हैं। वे समझते हैं कि जीवन का मंतव्य अधिक से अधिक धन इकट्ठा करना है, ऐशो-इशरत के अधिक से अधिक साधन जुटाना है तथा अधिक से अधिक मान-बड़ाई प्राप्त करना है। सन्त नामदेव जी जीवात्मा को मानव-जन्म के परमार्थी उद्देश्य के प्रति सावधान करते हैं, क्योंकि जीवात्मा शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, प्रेम-रूप तथा आनन्द-रूप, दयालु प्रभु की अंश है।

मानव की श्रेष्ठता दो बातों में है। प्रभु ने इसे विवेक प्रदान किया है। विवेक मनुष्य को चयन की शक्ति प्रदान करता है। मानव भले-बुरे, उचित-अनुचित में भेद कर सकता है। इसे अपनी वर्तमान दशा को सुधार सकने की क्षमता प्रदान की गई है। वृक्ष, कीड़े-मकोड़े तथा पशु-पक्षी अपनी हालत सुधार नहीं सकते क्योंकि इनमें विवेक का तत्त्व नहीं है। मानव अपने विवेक का ठीक ढंग से उपयोग करके किसी भी विद्या, कला, विज्ञान, सदाचार, आध्यात्मिकता आदि में उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। इसके साथ

ही मानव में प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप करने का सामर्थ्य भी रखा गया है यानी चौरासी लाख योनियों में केवल मानव को ही यह सौभाग्य प्रदान किया गया है कि वह प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप कर सके। यदि मानव इस वरदान का सदुपयोग करता है तो वह नर से नारायण बन जाता है, नहीं तो वह सदा आवागमन के चक्र से बँधा रहता है।

मनुष्य-जन्म की विशेषता

सन्त-महात्मा जीवात्मा को सावधान करते हैं कि इन्द्रियों के भोग तो इसे पशु-पक्षियों की योनियों में भी प्राप्त थे। खाने, पीने, सोने तथा सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति पशु-पक्षियों में भी होती है। पशु-पक्षी अपने भावों पर नियन्त्रण नहीं रख सकते। वे अपनी मूल प्रवृत्तियों (instincts) के वश में होते हैं, उनकी इन्द्रियाँ उनके वश में नहीं होतीं। इन्द्रियों को वश में करके शरीर और मन-माया के बन्धन तोड़कर प्रभु का रूप हो जाने की शक्ति तो केवल मानव को दी गई है। मानव की असली महिमा इस बात में है कि वह पाशविक वृत्तियों (animal instincts) का त्याग करके सच्चे अर्थ में मानव बने। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि के वश में होकर इनसान शैतान बन जाता है। शील, संयम, क्षमा, विवेक, नम्रता, त्याग, सेवा, प्रेम तथा दया के बिना मानव, मानव कहलाने का हक़दार नहीं बन सकता।

केवल अपने लिये जीना पाशविक वृत्ति है। दूसरों के लिये सोचना और जीना मानवीय वृत्ति है। इससे आगे चलकर प्रभु-भक्ति द्वारा अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन करने का प्रयत्न करना परमार्थी वृत्ति है। मानव वास्तव में मानव तभी कहला सकता है यदि वह नैतिक तथा आध्यात्मिक, दोनों प्रकार की वृत्तियों को विकसित करके आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाए और प्रभु में समाकर उसी का रूप बन जाए।

सन्तजन समझाते हैं कि मनुष्य के सिर पर पूर्व-जन्मों के अनन्त कर्मों का भार है। यह भार केवल प्रभु-भक्ति द्वारा ही उतारा जा सकता है। आत्मा के अन्दर प्रभु का स्वभाविक प्रेम है, परन्तु संसार के मोह तथा पूर्व-जन्मों

के कर्मों के कारण यह प्रेम निर्बल हो गया है। प्रभु-भक्ति द्वारा इस प्रेम को पुनः प्रबल बनाकर मनुष्य सहज ही प्रभु से मिलाप कर सकता है।

बागा षूब बनाया

हरि दरजी का मरम न पाया। जिनि यहु बागा षूब बनाया॥[72]
पाणी का चित्र पवन का धागा। ताकूं सीवत मास दस लागा॥
स्यौं सुरवाल मुकट बनि आया। ये दोइ हीरालाल लगाया॥[73]
भगति मुकति का पटा लिषाया। पूरण पारब्रह्म पद पाया॥[74]
आपै सीवै आप पहिरावै। निरत नांमदेव नांव धरावै॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 130

सन्त नामदेव जी मानव-जन्म को प्रभु की दया द्वारा प्राप्त महान् वरदान कहते हैं क्योंकि मानव प्रभु-भक्ति द्वारा, प्रभु से मिलाप करके प्रभु का रूप बन सकता है। आप कहते हैं कि परमात्मा ऐसा अद्भुत दर्ज़ी है जिसका कोई भेद नहीं पा सका। उसने बड़ी ख़ूबसूरती से पानी यानी रक्त और पवन यानी प्राणों के संयोग से यह मनुष्य-शरीररूपी वस्त्र बनाया है, जिसे तैयार होने में लगभग दस माह लगते हैं। प्रभु ने मनुष्य-शरीर को इतना सुन्दर और अद्भुत बनाया है कि यह देवताओं का भी सरताज बन गया है। चौरासी लाख योनियों में श्रेष्ठतम योनि मनुष्य की है। परमात्मा ने इस मनुष्य-शरीररूपी मुकुट पर भक्ति और मुक्तिरूपी हीरा और लाल जैसे अमूल्य नगीने लगाकर इसे पूर्ण पारब्रह्म-पद पाने का हक़दार बना दिया है। आप कहते हैं कि मेरा यह शरीररूपी वस्त्र प्रभु ने ख़ुद ही बनाया है, ख़ुद ही मुझे पहनाया है और इसका नाम नामदेव रख दिया है।

नहीं ऐसो जन्म बारंबार

नहीं ऐसो जन्म बारंबार।
कहीं पूरब लै पुनि पाईयौ। मनिषा औतार॥[75]

ग्रभ बास मैं प्रतिपाल कीन्हीं। ताहि सुमरि गंवार।
कहा उतर देहगौ। राजाराम कै दरबार॥
बधत पल पल घटत छिन छिन जात न लागै बार।
तरवर सूं फल झड़ि पड़ै। बहौरि न लागै डार॥[76]
संसार सागर मंडी बाजी। सुरति कीन्हीं सारि।
मनिष जन्म का हाथि पासा। जीति भावै हारि॥[77]
संसार सागर विषम तिरणां। निपट उंडी धार।[78]
सुरति निरति का बांधे भेरा। उतरिये लै पार॥[79]
काम क्रोध मद लोभ लालच। ताहि बंध्यौ संसार।
दास नामैं जग जीति लीया। केवल नांव अधार॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2272

नामदेव जी कहते हैं कि मनुष्य-जन्म का अमूल्य वरदान बार-बार नहीं मिलता। प्रभु की अपार कृपा और पूर्व जन्मों के श्रेष्ठ कर्मों से ही यह सौभाग्य प्राप्त होता है। आप कहते हैं कि जिस करुणामय प्रभु ने माँ के गर्भ में तेरी रक्षा की और अब भी पल-पल तेरी रक्षा कर रहा है, तूने उसे क्यों भुला रखा है? यदि तूने प्रभु नाम का सिमरन नहीं किया तो मृत्यु के बाद जब कर्मों का हिसाब देना पड़ेगा तो प्रभु को क्या जवाब देगा? ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है, तेरी आयु घटती जा रही है और किसी भी पल अन्त समय आ सकता है। तब तेरी दशा पेड़ से टूटे फल की तरह हो जाएगी जो दोबारा वृक्ष पर नहीं लग सकता।

नामदेव जी सावधान करते हैं कि यह संसार एक विकराल सागर है जिसे पार कर सकना बहुत कठिन है। यह एक मण्डी की भाँति है, जिसमें लोग अनेक प्रकार की वस्तुएँ ख़रीदते और बेचते हैं। यह चौपड़ के खेल के समान है जिसमें जीवात्माएँ गोटियों के समान अपना-अपना खेल खेलती हैं। मनुष्य-जन्म वह दाँव है, जिसके सदुपयोग द्वारा जीवात्मारूपी गोटी निज-घर पहुँचकर सदा के लिये चौरासी के चक्र से मुक्त हो सकती है। यदि यह इस दाँव का सदुपयोग नहीं करती तो फिर से चौरासी के चक्र में पड़ जाती है।

आप समझाते हैं कि संसाररूपी विकराल सागर की तेज़ धारा के विरुद्ध तैरकर पार जा सकना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। भवसागर से पार जाने के लिये जीवात्मा को सतगुरु द्वारा सिखाई गई युक्ति के अनुसार अपना ध्यान अन्तर में, आँखों के ऊपर और मध्य एकाग्र तथा स्थिर कर लेना चाहिये। इस तरह सुरत द्वारा शब्द की ध्वनि को सुनती हुई और निरत द्वारा शब्द के प्रकाश को देखती हुई आत्मा आन्तरिक मण्डलों को पार करके परमधाम पहुँच जाएगी। यही वह नौका या जहाज़ है जिस पर सवार होकर जीवात्मा भवसागर को पार करके निज-घर पहुँच सकती है।

संसार के लोगों को बुरी तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों के भ्रम-जाल में फँसा हुआ देखकर आप प्रभु-नाम को जीवन का आधार बताते हैं जिसके ज़रिये इस भवसागर को पार किया जा सकता है।

स्वामी जी महाराज का भी यही उपदेश है:

यह तन दुर्लभ तुमने पाया। कोटि जन्म भटका जब खाया॥
अब या को बिरथा मत खोवो। चेतो छिन छिन भक्ति कमावो॥

सारबचन संग्रह, 16:1:1-2

जौ ऐसौ औसर बिसरैगो

हरि बिन कौन सहाइ करैगो।
जौ ऐसौ औसर बिसरैगो, तौ मरकट कौ औतार धरैगौ॥[80]
करम डोरि बाजीगर कै बसि, नाचत घरि घरि बार फिरैगौ।
ले लुकटी तौहि त्रास दिषावै, जन जन कै तूं पाइ परैगौ॥[81]
जूं हमाल सिरि बोझ बहुत है लालच कै संगि लागि मरैगौ।[82]
ज्यूं कुलाल चक्री कूं फेरै ऐसे तूं कई बार फिरैगौ॥[83]
भजि भगवंत मुक्ति कै दाता, राम कहया कछु ना बिगरैगौ।
नांव प्रताप राषि उर अंतर, नामदेव सरणै उबरैगौ॥[84]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 178

सन्त नामदेव जी हम जीवों को सम्बोधित करते हुए पूछते हैं कि प्रभु के सिवाय तेरा सच्चा सहारा कौन है? तुझे यह मनुष्य-जन्म प्रभु के मिलाप के लिये मिला हुआ सुनहरा अवसर है। यह दुर्लभ वरदान तुझे बार-बार नहीं मिलेगा। यदि तू इस शुभ अवसर को व्यर्थ गँवा देगा तो तेरी दशा मदारी के उस बन्दर की तरह हो जाएगी जो कर्मों की डोर से बँधा हुआ धर्मराजरूपी मदारी के इशारे पर अनन्त योनियों में अनेक प्रकार के नाच दिखाता आया है। मदारी बन्दर के सिर पर अपना डण्डा रखता है और उसे डर के मारे जन-जन के पाँव छूने पड़ते हैं। आप सावधान करते हैं कि यदि तू प्रभु-भक्ति के लिये मिले इस अमूल्य वरदान को संसार की इच्छाओं-तृष्णाओं की पूर्ति के लोभ में पड़कर व्यर्थ गँवा देगा तो तेरी हालत उस कुली जैसी हो जाएगी जिसे पैसे के लालच के कारण सिर पर जन-जन का भारी बोझ उठाना पड़ता है। नतीजा यह होगा कि तुझे कुम्हार के चाक की तरह सदैव चौरासी के चक्र में घूमते रहना पड़ेगा।

आप प्रेरणा देते हैं कि मानव-जन्म से लाभ उठाकर उस मुक्तिदाता प्रभु की भक्ति में लग जा। प्रभु-भक्ति में लाभ ही लाभ है। अपनी लिव अन्तर में प्रभु के नाम से जोड़कर रख ताकि भवसागर के चक्र से मुक्त होकर प्रभु से मिलाप कर सके।

मानव इस भ्रम का शिकार रहता है कि मृत्यु दूसरों के लिये है, मेरे लिये नहीं। लोग बाक़ी सब काम जल्दी से जल्दी करना चाहते हैं परन्तु जब प्रभु-भक्ति की बात आती है तो यह कह देते हैं कि पहले घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारियाँ पूरी कर लें, कुछ दिन ऐशो-इशरत, मौज-मस्ती कर लें, फिर आराम से प्रभु-भक्ति करेंगे। जीवन का कोई भरोसा नहीं है। जीवन चार दिन का खेल है। प्रभु-भक्ति की उपेक्षा करके, इसे व्यर्थ के धन्धों में गँवा देना निरी अज्ञानता है।

रांम रमे रमि रांम संभारै

रांम रमे रमि रांम संभारै। मैं बलि ताकी छिन न बिसारै॥
रांम रमे रमि दीजै तारी। वैकुंठनाथ मिलै बनवारी॥
रांम रमे रमि दीजै हेरी। लाज न कीजै पसुवां केरी॥[85]

सरीर सभागा सो मोहि भावै। पारब्रह्म का जे गुन गावै॥[86]
सरीर धरे की इहै बड़ाई। नांमदेव राम न बीसरि जाई॥
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2112

सन्त नामदेव जी कहते हैं कि मैं बलिहारी जाता हूँ उस पर जो मनुष्य-जन्म के दुर्लभ अवसर से लाभ उठाकर हर पल प्रभु के नाम के सिमरन में लगा रहता है तथा प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु में समा जाता है। आप कहते हैं कि वास्तव में भाग्यशाली वही है और मानव-जन्म भी उसी का सफल है जो पल भर भी प्रभु के ध्यान से दूर नहीं होता और अपनी लिव सदैव प्रभु के नाम से जोड़कर रखता है। आप विनती करते हैं कि हे प्रभु! आप अपने भक्तों को भोली-भाली गउओं के समान समझते हुए स्वयं आवाज़ देकर अपने पास बुला लें। वही भाग्यशाली जीव प्रभु को भाता है जो उसकी भक्ति और प्रेम में मग्न रहता है क्योंकि भवसागर को केवल प्रभु की शरण द्वारा ही पार किया जा सकता है। मानव-जीवन की असल बड़ाई प्रभु-भक्ति में है, इसलिये जीव को चाहिये कि वह पल भर के लिये भी प्रभु को न बिसारे।

रामनाम बिन धृग जीवना

कांइ रे भूले मूढे जना। चांमद करवा नहीं आपना॥[87]
लोही रक्ता मंझा घनां। तुम जिनि जानौ तन अपना॥
भणत नांमदेव नाराइनां। रामनाम बिन धृग जीवना॥[88]
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2199

'रामनाम बिन धृग जीवना' यानी प्रभु-भक्ति के बिना मनुष्य-जन्म अर्थहीन है। आप कहते हैं कि हे मूर्ख! तू हाड़-चाम, रक्त और मज्जा से बनी देह को अपनी समझने की अज्ञानता को त्याग दे। यह देह सदैव नहीं रहेगी और चलते समय साथ नहीं देगी। तू बिना विलम्ब किये प्रभु-भक्ति द्वारा अपनी देह का सदुपयोग करके मनुष्य-जन्म को सफल बना ले।

गुरु अर्जुन देव जी भी उपदेश देते हैं:

भई परापति मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम॥ मिलु साधसंगति भजु केवल नाम॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 12

मनुष्य-जन्म का दुर्लभ अवसर बड़े श्रेष्ठ भाग्य से मिला है, क्योंकि इसी योनि में प्रभु से मिलाप हो सकता है। इसलिये हमें और सभी कार्यों की अपेक्षा साधु-सन्तों की संगति और नाम की कमाई को महत्त्व देना चाहिये।

जाग रे जाग कहा भुलाना

जाग रे जाग कहा भुलाना। आगे पीछे जाना ही जाना॥
दिवस चार का गोबली बासा। ता मै तो क्यों आवै हासा॥[89]
इह भ्रम लाग कहा तूं सोवे। काहे कूं जनम बाद ही खोवै॥
कहा तूं सोचे बारंबारा। राम नाम जप लेहू गवारा॥
भणत नामदेव चेत अयाना। औघट घाट अरु दूर पयाना॥[90]
सन्त नामदेव, पद 262

सन्त नामदेव जी अचेत जीव को सचेत करते हुए कहते हैं कि ऐ अयाणे! तू भ्रम की नींद में से जाग। किस भुलावे में तू अपनी ज़िन्दगी जी रहा है, उसे बेफ़ायदा क्यों गँवा रहा है? यह संसार तो चार दिन का रैन-बसेरा है। यहाँ से आज नहीं तो कल हर किसी को कूच कर जाना है। इस क्षणभंगुर जीवन को विषय-वासनाओं में डाल देना अज्ञानता है। जीवन बड़ी तेज़ी से अन्त की ओर भागा जा रहा है। रास्ता कठिन है और मंज़िल बड़ी दूर है। इसलिये तू राम-नाम के जाप में लग जा।

इसी भाव को आप आगे और खोलते हैं।

हरि बिन जनम अकारथ जाइ

गाइ मन गोबिंद गाइ रे गाइ। तेरो हरि बिन जनम अकारथ जाइ॥
मनिषा जनम न बारंबार। तातैं भजि लै रामपियार॥
रे मन गोबिंद काहे न गावै। मनिषा जनम बहुरि नहिं पावै॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 169

तू गोबिन्द के गुण गा ले, प्रभु की भक्ति में लग जा नहीं तो यह दुर्लभ अवसर अकारथ चला जाएगा। तुझे यह अमूल्य अवसर बार-बार नहीं मिलेगा।

मनुष्य-जन्म के वास्तविक महत्त्व की समझ न रखनेवाले व्यक्ति को अन्धा, पशु और गँवार कहते हुए समझाते हैं:

मनिषा जनम आई नहिं चेता। अंधे पसू गंवारा।
तेरे सिर काल सदा सर साधै। नांमदेव करत पुकारा रे नर॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 92

आप मनुष्य-जन्म के वास्तविक महत्त्व को न समझनेवाले व्यक्ति को अन्धा, पशु और गँवार करते हैं। अक़्ल का अन्धा हम उसे कहते हैं जिसे लाभ और हानि का ज्ञान न हो। पशु हम उसे कहते हैं जिसे खाने-पीने, सोने और सन्तान पैदा करने के अतिरिक्त और कुछ न सूझता हो। गँवार हम उसे कहते हैं जो सही और ग़लत, उचित और अनुचित, योग्य और अयोग्य में अन्तर न जानता हो। कहते हैं कि सयाना बन, काल तेरे सिर पर मौत का तीर ताने खड़ा है। तू सचेत होकर प्रभु-भक्ति में लग जा।

सन्त नामदेव जी ने विस्तारपूर्वक समझाया है कि मनुष्य-जन्म की सार्थकता प्रभु से मिलाप में है, इसलिये इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पूरा ध्यान देना चाहिये।

परमात्मा

संसार के अनेक लोग प्रभु को केवल कल्पना या अनुमान समझते हैं। उनका प्रभु के अस्तित्त्व में भरोसा नहीं है। सन्त नामदेव जी समझाते हैं कि परमात्मा कल्पना, ख़याल या सिद्धान्त-मात्र नहीं, वास्तविक अस्तित्व अथवा सत्ता है। वह अनादि और अविनाशी है, उसका न कोई आदि है, न मध्य और न ही अन्त। वह देश तथा काल की सीमा से परे और ऊपर है। आप अनेक उपमाओं, अलंकारों, रूपकों तथा चिह्नों द्वारा परमेश्वर के स्वरूप तथा स्वभाव पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं:

अदबुद अचंभा कथ्या न जाई। चींटी के नेत्र कैसे गजिंद्र समाई॥
कोई बोलै नेरे कोई बोलै दूरि। जल की मछली कैसे चढै षजूरि॥
कोई बोलै इंद्री बांध्या कोई बोलै मुक्ता। सहजि समाधि न चीन्हे मुगधा॥
कोई बोलै बेद सुमृत पुरांना। सतगुरु कथीया पद निरवानां॥
कहै नांमदेव परम तत है ऐसा। जाकै रूप न रेष वरण कहौ कैसा॥[91]
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 76

वह परमेश्वर अद्भुत, अलौकिक और अवर्णनीय परम सत्य है। जैसे चींटी की आँख में हाथी का समा सकना और पानी में रहनेवाली मछली का खजूर पर चढ़ सकना असम्भव है, इसी तरह उस परमेश्वर का वर्णन कर सकना भी असम्भव है। कोई उसे निकट कहता है तो कोई दूर, कोई उसे निर्गुण कहता है तो कोई सगुण। कोई कहता है कि वेद, पुराण आदि से उसके स्वरूप का ज्ञान होगा। नामदेव जी कहते हैं कि वह निराकार परमेश्वर रंग-रूप से न्यारा है। वह मन-इन्द्रियों का विषय नहीं है। आपका भाव है कि आत्मा परमेश्वररूपी परम तत्त्व का अनुभव कर सकती है परन्तु उसके गुण, कर्म और स्वभाव का वर्णन सर्वथा असम्भव है।

तेरी तेरी गति तूं ही जानै

तेरी तेरी गति तूं ही जानै। अल्प जीव गति कहा बषानै॥
जैसा तूं कहिये तैसा तूं नाहीं। जैसा तूं है तैसा आछि गुसाईं॥[92]
लूण नीर थै ना ह्वै न्यारा। ठाकुर साहिब प्रांण हमारा॥[93]
साध की संगति संत सूं भेंटा। प्रणवंत नांमा रांम सहेटा॥[94]
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 14

नामदेव जी कहते हैं कि हे सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ प्रभु! अपनी बड़ाई केवल तू स्वयं ही जानता है। हम तुच्छ तथा अल्पज्ञ जीव कदापि तेरी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। लोग बुद्धि, कल्पना या अनुमान द्वारा तेरी महिमा करते हैं, परन्तु जैसा तुझे वे बताते हैं, वैसा तू वास्तव में है नहीं। जब तुझ

जैसा कोई दूसरा है ही नहीं तो दूसरी किसी चीज़ से तुम्हारी तुलना कैसे की जा सकती है? आप कहते हैं कि जैसे पानी में घुले नमक को पानी से और प्राणों को शरीर से अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही वह प्रभु मेरे रोम-रोम में रमा हुआ है, उसे मुझसे और मुझे उससे अलग नहीं किया जा सकता। हे प्रभु! मैं तेरे सन्तों और भक्तों की संगति में तेरे प्रेम में मग्न रहता हूँ।

आदि जुगादि सत्य

आदि जुगादि जुगादि जुगो जुगु ता का अंतु न जानिआ॥
सरब निरंतरि रामु रहिआ रवि ऐसा रूपु बखानिआ॥[95]
गोबिदु गाजै सबदु बाजै॥ आनद रूपी मेरो रामईआ॥[96]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1351

सन्त नामदेव जी कहते हैं कि वह अनादि परमेश्वर युगों-युगों से, बल्कि युगों के भी पहले से है। वह बेअन्त है, जिसका अन्त आज तक किसी ने नहीं जाना। वह परमात्मा घट-घट में समाया हुआ है। वह आनन्द-रूप प्रभु शब्द-रूप में हरएक के अन्दर रमा हुआ है। उस शब्द, उस अनहद धुन की गर्जना को नामदेव जी 'गोबिदु गाजै सबदु बाजै' कहकर बयान करते हैं।

वर्णनातीत सत्य

मलै न लाछै पार मलो परमलीओ बैठो री आई॥[97]
आवत किनै न पेखिओ कवनै जाणै री बाई॥
कउणु कहै किणि बूझीऐ रमईआ आकुलु री बाई॥[98]
जिउ आकासै पंखीअलो खोजु निरखिओ न जाई॥
जिउ जल माझै माछलो मारगु पेखणो न जाई॥
जिउ आकासै घड़ूअलो म्रिग त्रिसना भरिआ॥[99]
नामे चे सुआमी बीठलो जिनि तीनै जरिआ॥[100]

आदि ग्रन्थ, पृ. 525

वह परम-चेतन तथा निर्मल प्रभु माया की मैल से मुक्त है। सुगन्ध दिखाई नहीं देती, परन्तु उसे महसूस किया जा सकता है। इसी तरह प्रभु को न तो मन-इन्द्रियों द्वारा जाना जा सकता है और न ही भाषा द्वारा उसका वर्णन किया जा सकता है। वह आत्मा द्वारा अनुभव किया जानेवाला परम-तत्त्व है। जिस प्रकार आकाश में उड़ रहे पक्षी तथा जल में तैर रही मछली को मार्ग दिखाई नहीं देता, उसी तरह प्रभु भी दिखाई नहीं देता, परन्तु उसे आत्मा द्वारा अवश्य जाना जा सकता है। जिस तरह आकाश में मृग-जल का आभास होता है, परन्तु उस पानी को ढूँढ़ सकना असम्भव है, इसी तरह मन-इन्द्रियों द्वारा प्रभु को जान सकना असम्भव है।

सभै घट रामु बोलै

सभै घट रामु बोलै रामा बोलै॥ राम बिना को बोलै रे॥
एकल माटी कुंजर चीटी भाजन हैं बहु नाना रे॥[101]
असथावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे॥[102]

आदि ग्रन्थ, पृ. 988

नामदेव जी कहते हैं कि वह प्रभु सर्वव्यापक है। वह हर घट में समाया हुआ है। जैसे अनेक प्रकार के छोटे-बड़े बरतन एक ही मिट्टी से निर्मित होते हैं, उसी तरह चींटी के समान छोटे से छोटे तथा हाथी जैसे बड़े से बड़े, हर जीव में उस एक प्रभु का प्रकाश समाया हुआ है। जंगम तथा स्थावर, चल तथा अचल, हर प्रकार के जीवों में उस एक प्रभु की ज्योति विद्यमान है।

सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई॥
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंद बिनु नही कोई॥
सूतु एकु मणि सत सहंस जैसे ओति पोति प्रभु सोई॥

जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिंन न होई॥
इहु परपंचु पारब्रहम की लीला बिचरत आन न होई॥
मिथिआ भरमु अरु सुपन मनोरथ सति पदारथु जानिआ॥
सुक्रित मनसा गुर उपदेसी जागत ही मनु मानिआ॥
कहत नामदेउ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी॥
घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 485

वह एक प्रभु ही अनन्त रंग, रूप, आकार धारण करके सब जगह व्यापक हो रहा है। माया अनेकता का भ्रम उत्पन्न करती है, पर वास्तव में अनन्त अनेकता के पीछे पूर्ण एकता व्याप्त है। जो कुछ है, गोबिन्द का ही रूप है। जैसे एक धागे में हज़ारों मनके पिरोए हुए हों, इसी तरह प्रभु सब में समाया हुआ है। पानी की लहरें, झाग और बुलबुले, पानी से भिन्न नहीं होते, इसी तरह यह समस्त रचना उस एक पारब्रह्म की लीला है तथा वह रचना के हर आकार में समाया हुआ है। जब तक सपना देख रहे हो, सपने में दिखाई दे रहे दृश्य सत्य प्रतीत होते हैं, परन्तु आँख खुलते ही पता चल जाता है कि यह सब भ्रम था। इसी तरह जब सतगुरु के उपदेश द्वारा सत्य का बोध होता है तो मन से माया द्वारा पैदा किया गया अनेकता का भ्रम दूर हो जाता है और यह बोध हो जाता है कि संसार उस प्रभु का खेल है और वह सर्वत्र व्याप्त है।

माधौ माली एक सयाना। अंतरिगत रहै लुकानां॥
आपै बाडी आपै माली, कली कली कर जोडै।
पाके काचे, काचे पाके, मनि मानै ते तोडै॥
आपै पवन आपही पाणी, आपै बरिषै मेहा।
आपै पुरिष नारि पुनि आपै आपै नेह सनेहा॥
आपै चंद सूर पुनि आपै, आपै धरनि अकासा।
रचनहार विधि ऐसी रची है, प्रणवै नामदेव दासा॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2216

आप कहते हैं कि माधव ऐसा विचित्र माली है जो सब में व्याप्त होते हुए भी कहीं दिखाई नहीं देता। बाग़ भी वही है, फूल और फल भी वही है। फल-फूल लगाता भी वही है और तोड़ता भी वही है। पाँच तत्त्व भी उसका ही रूप हैं, पुरुष भी वही है, नारी भी वही है और प्रेम तथा प्रेम करनेवाला भी वही है। चाँद भी वही है, सूर्य भी वही है, धरती तथा आकाश भी वही है। जो कुछ किया है, उस एक कर्ता ने किया है और वह कर्ता सर्वव्यापक है।

ईभै बीठलु ऊभै बीठलु बीठल बिनु संसारु नही॥
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिओ तूं सरब मही॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 485

आपन देउ देहुरा आपन

बदहु की न होड माधउ मो सिउ॥[103]
ठाकुर ते जनु जन ते ठाकुरु खेलु परिओ है तो सिउ॥[104]
आपन देउ देहुरा आपन आप लगावै पूजा॥[105]
जल ते तरंग तरंग ते है जलु कहन सुनन कउ दूजा॥
आपहि गावै आपहि नाचै आपि बजावै तूरा॥
कहत नामदेउ तूं मेरो ठाकुरु जनु ऊरा तू पूरा॥[106]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1252

नामदेव जी कहते हैं कि हे प्रभु! आप मुझसे शर्त लगा लो, मैं सिद्ध कर दूँगा कि भक्त और भगवान् में कोई अन्तर नहीं है। हे प्रभु! आप ही मन्दिर का देव हैं, आप ही मन्दिर हैं और आप ही पुजारी हैं। जल और लहर देखने में अलग-अलग प्रतीत होते हैं, इसी तरह भगवान् और भक्त देखने में अलग-अलग प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में एक ही होते हैं। हे प्रभु! गानेवाला भी तू है, नाचनेवाला भी तू है और तुरही बजानेवाला भी तू ही है। आप नम्रतापूर्वक कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तेरा सेवक हूँ, तू

मेरा स्वामी है; शरीर में बँधा होने के कारण मैं अपूर्ण हूँ, परन्तु तू सर्वथा पूर्ण है।

नामदेव जी समझाना चाहते हैं कि संसार नश्वर है, केवल परमात्मा सत्य है और जगत् में दिखाई देनेवाली अनेकता आँख का धोखा-मात्र है। द्वैत माया का पैदा किया हुआ भ्रम है। सत्य केवल इसके पीछे काम कर रही शक्ति है। इस असलियत का ज्ञान प्राप्त करने में ही इनसान का छुटकारा है, नहीं तो वह अनेकता की भूल-भुलैयाँ में फँसकर रह जाता है।

इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए आप समझाते हैं:

वेद बोलते हुक्म से तेरे।
तेरे हुक्म से चलता भास्कर॥[107]
ऐसा समर्थ तू, जगत का स्वामी।
शरण आया यह मर्म जानकर॥[108]
तेरे हुक्म से मेघ बरसते।[109]
गिरि पर ठहरें हुक्म से तेरे॥[110]
तेरे हुक्म से पवन है चलता।
हिले जो तिनका हुक्म से तेरे॥
कहे नामा, हे पाण्डुरंग आधार तू मेरा।[111]
जीवित हूँ मैं हुक्म से तेरे॥

तुझिया सत्तेनें वेदासी बोलणें
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 461

हे प्रभु! वेद आदि शास्त्र भी आपकी शक्ति से ही बोलते हैं और सूर्य भी आपकी शक्ति से ही चलता है। हे सर्वशक्तिमान् प्रभु! आप समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। मैंने यह मर्म समझकर आपकी शरण ले ली है। आपकी ही शक्ति से मेघ बरसते हैं और पर्वतों पर ठहरते हैं, वायु भी आपके ही इशारे से चलती है। आपकी आज्ञा के बिना तिनका भी नहीं हिल सकता। हे प्रभु! आप सबके आधार हैं, परन्तु आपको किसी आधार या सहारे की आवश्यकता नहीं है। आप स्वयंभू हैं और अपना आधार आप हैं।

तीनि लोक जाकी जोति फिरै

कहा ले आरती दास करै। तीनि लोक जाकी जोति फिरै॥
सात सुमंद जाकै चरन निवासा। कहा भये जल कुंभ भरे॥
कोटि भान जाकै नष की सोभा। कहा भयौ कर दीप फिरै॥
अठार भार जाकै बनमाला। कहा भये कर पहोप धरै॥[112]
अनंत कोटि जाकै बाजा बाजै। कहा घंटा झणकार करै॥
चौरासी लष व्यापक रांमा। केवल हरि जस गावै नामा॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2250

नामदेव जी कहते हैं कि जिस प्रभु की ज्योति तीनों लोकों में प्रज्वलित है, मैं तुच्छ सेवक थाल में दीपक और फूल रखकर उस अनन्त तथा सर्वव्यापक प्रभु की आरती कैसे कर सकता हूँ? सातों समुद्र जिस प्रभु के पावन चरण धो रहे हैं, मैं घड़े में जल भरकर उसको स्नान कैसे करवा सकता हूँ? जिस प्रकाश-पुँज प्रभु का हर नख करोड़ों सूर्यों से अधिक प्रकाशवान है, मैं थाल में दीपक जलाकर उसकी आरती कैसे कर सकता हूँ? जिनके गले में अठारह भार के फूलों की माला सुशोभित होती है, उनकी पूजा मैं एक फूल से कैसे कर सकता हूँ? जब समस्त सृष्टि में उस प्रभु के करोड़ों-करोड़ अनहद नाद गूँज रहे हैं तो मैं एक घण्टे से उसकी आरती कैसे कर सकता हूँ? वह प्रभु सृष्टि के कण-कण में और हर जीव के घट में व्याप्त है। इसलिये बाहर से उसकी पूजा-आराधना करने के बजाय, मैं नामदेव केवल तेरा ही गुणगान करता हूँ।

ऐसो राम राइ अंतरजामी

ऐसो राम राइ अंतरजामी॥ जैसे दरपन माहि बदन परवानी॥[113]
बसै घटा घट लीप न छीपै॥ बंधन मुकता जातु न दीसै॥[114]
पानी माहि देखु मुखु जैसा॥ नामे को सुआमी बीठलु ऐसा॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1318

उस सर्वज्ञ, अन्तर्यामी प्रभु की चर्चा करते हुए आप कहते हैं कि जैसे दर्पण में शक्ल साफ़ दिखाई देती है, उसी तरह उसे हरएक के मन की बात साफ़ दिखाई देती है। वह घट-घट में व्याप्त है परन्तु शरीर तथा आवागमन के बन्धनों से मुक्त है। नामदेव जी कहते हैं कि मुझे अपना स्वामी ऐसे प्रत्यक्ष दिखाई देता है जैसे पानी में अपना मुख दिखाई देता है। आपका भाव है कि आत्मा परमात्मा का रूप है और उसे अपने अन्तर में से ही परमात्मा की अनुभूति होती है।

नामदेव जी तथा दूसरे सन्त-महात्मा बार-बार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक तथा अन्तर्यामी है। वह घट-घट में समाया हुआ है और हर घट का ज्ञाता है। उसे अनेक नामों से याद किया जाता है, परन्तु वह एक है। हिन्दुओं-मुसलमानों में भी वही समाया हुआ है, सिक्खों-ईसाइयों में भी उसी का निवास है। आप समझाते हैं कि परमात्मा द्वारा पैदा किये गए हर जीव में एक ही आत्मा तथा एक ही परमात्मा का निवास है। इसलिये सब जीव बराबर हैं।

इस विचार का एक दूसरा पहलू भी है। परमात्मा को सर्वव्यापक मानना आध्यात्मिक उन्नति का आधार है। जो व्यक्ति प्रभु को सर्वव्यापक तथा अन्तर्यामी मानता है, वह कोई पाप, अपराध या अत्याचार कैसे कर सकता है? वह किसी से नफ़रत कैसे कर सकता है और किसी का गला कैसे काट सकता है? संसार में जो भी पाप, अपराध तथा अत्याचार होता है, इस भ्रम के अधीन होता है कि न कोई हमें देख रहा है और न ही हमें किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। इनसान की वृत्ति, रहनी तथा करनी में जो भी परिवर्तन होता है, परमात्मा को सर्वव्यापक तथा अन्तर्यामी समझने से होता है। बाबा फ़रीद अपने शिष्यों को समझाया करते थे कि तुम जो भी कर्म करो, यह समझकर करो कि तुम ख़ुदा को सामने देख रहे हो। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो हर काम करते हुए सोचो कि ख़ुदा तुम्हें देख रहा है। प्रभु को सर्वव्यापक और अन्तर्यामी मानने से मन में प्रभु का भय उत्पन्न होता है और यह भय ही प्रभु के प्रेम की नींव बन जाता है।

पतित पावन माधउ

पतित पावन माधउ बिरदु तेरा॥
धंनि ते वै मुनि जन जिन धिआइओ हरि प्रभु मेरा॥
मेरै माथै लागी ले धूरि गोबिंद चरनन की॥
सुरि नर मुनि जन तिनहू ते दूरि॥
दीन का दइआलु माधौ गरब परहारी॥
चरन सरन नामा बलि तिहारी॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 694

हे प्रभु! पापियों को पावन करना ही तुम्हारा धर्म और स्वभाव (बिरदु) है। तुम्हारा ध्यान करनेवाले, तुम्हारी पूजा और आराधना करनेवाले मुनिजन तथा भक्त धन्य हैं। हे प्रभु! मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे आपकी पावन चरण-धूलि प्राप्त हो गई है जिसके लिये बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि तथा भक्त भी तरसते हैं। आप दीनों पर दया करनेवाले और अहंकारियों का अहंकार चूर करनेवाले हैं। मैं आपकी शरण में आ गया हूँ और आप पर बलिहारी हूँ।

नामदेव जी समझा रहे हैं कि परमात्मा दया करते समय जीव के गुण-अवगुण नहीं देखता। यदि व्यक्ति को उसके गुणों के कारण कुछ दिया जाता है तो उसमें देनेवाले की दया नहीं होती। वह जीव अपने गुण के कारण दी गई वस्तु का अधिकारी होता है। दया उस बात में होती है जब व्यक्ति के अवगुणों के बावजूद उसे कुछ दिया जाता है। राजा, भिखारी के गुण देखकर भिक्षा नहीं देता। वह दया के भाव से भिक्षा देता है। वह दयालु प्रभु दया करते समय जीव के अवगुणों की तरफ़ ध्यान नहीं देता। वह दया करता है, क्योंकि दया करना उसका स्वभाव है।

सन्त तुकाराम जी कहते हैं:

पिता हो समर्थ और पुत्र दीन-हीन, हँसेंगे लोग किस पर,
अति अवगुणी हो पुत्र, करनी होगी सँभाल उसकी,
कहे तुका, वैसा मैं पतित, लगी नाम की मुहर मुझ पर॥

समर्थाचें बाळ कीविलवाणें दिसे
श्रीतुकाराम गाथा, अभंग 1055

हे प्रभु, यदि समर्थ पिता का पुत्र दीन-हीन दिखाई दे तो लोग किस पर हँसेंगे? पुत्र चाहे कितना भी बुरा क्यों न हो जाए, कितने ही अवगुणों से क्यों न भर जाए, आख़िर उसकी सँभाल तो पिता को ही करनी पड़ेगी। तुकाराम कहते हैं कि मैं भी एक पतित हूँ, पर मुझ पर तुम्हारी मुहर लग चुकी है, अर्थात् मुझे नाम मिल चुका है।

आप परमात्मा की दयालुता का ज़िक्र करते हुए कहते हैं:

हे देव! कर रहा कुटुंब सेवा, झेल रहा जग के दुख-ताप,
माँ पाण्डुरंग! ऐसे में, तेरे चरण आए मुझे याद।
जन्मों-जन्मों से ढोता रहा भार, छूटूँ कैसे, नहीं है ज्ञान,
अन्तर्बाह्य चोरों से मैं घिरा, किसी को न आती दया।[115]
लुटा-पिटा, पंगु मैं, बहुत दिनों से हूँ दु:खी मैं,[116]
हे दीनानाथ! ख्यात जग में नाम तेरा, कहे तुका दौड़, कर मेरी रक्षा॥

संवसारतायें तापलों मी देवा
श्रीतुकाराम गाथा, अभंग 91

हे प्रभु, मैं परिवार की सेवा में लगा हूँ और संसार के दु:खों में जल रहा हूँ। मुझे तेरे चरणों की याद आ गई है। अब तू ही मेरी माता है, प्रभु, जल्दी आ और मुझे बचा। मैं अनेक जन्मों के कर्मों के बोझ के नीचे दबा हूँ। इससे छुटकारा कैसे पाया जाए, इस रहस्य का मुझे ज्ञान नहीं। मुझे अन्दर (काम, क्रोध आदि पाँच विकारों के) और बाहर (सम्बन्धियों तथा मित्रों के रूप में) चोरों ने घेर रखा है। किसी को मुझ पर दया नहीं आती। पिंगला हो गया हूँ मैं और बुरी तरह लुट गया हूँ। बहुत देर से दु:खी हूँ मैं। तू संसार में दीनानाथ के नाम से प्रसिद्ध है। अब तेज़ी से भागकर आ और मेरी रक्षा कर।

सन्त नामदेव जी जीवात्मा को बाक़ी सब इष्टों का ध्यान छोड़कर केवल एक प्रभु की शरण लेने तथा उसकी भक्ति करने का सन्देश देते हैं। देवी-देवता भी नर-देही के लिये तरसते हैं। इसलिये वे किसी दूसरे को आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं कर सकते। केवल वह सर्वशक्तिमान् तथा दयालु प्रभु

ही जीवात्मा को अपने साथ मिलाकर आवागमन के बन्धन से मुक्त कर सकता है। वह प्रभु ही उसके सब दु:खों का नाश करके उसे अनन्त आनन्द प्रदान कर सकता है।

प्रभु की खोज

संसार के अनेक लोग प्रभु को केवल कल्पना या अनुमान समझते हैं। उनका प्रभु के अस्तित्व में भरोसा नहीं है। जो लोग प्रभु को सत्य मानते हैं, उनमें से अधिकतर लोग प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप की आवश्यकता महसूस नहीं करते। जो लोग प्रभु से मिलाप करना भी चाहते हैं, वे भी धर्म-स्थानों, तीर्थ-स्थानों, ग्रन्थों-शास्त्रों, जंगलों-पर्वतों आदि में उसे ढूँढ़ रहे हैं। सन्त नामदेव जी सावधान करते हैं कि वह दयालु प्रभु जीव के निकट से निकट है। वह उसके अन्दर विराजमान है। उसकी तलाश के लिये बाहर भटकना कोरी अज्ञानता है। आप कहते हैं:

जा कारन त्रिभुवन फिरि आये। सो निधान घटि भीतरि पाये॥
नामदेव कहै कहूं आइये न जाइये। अपने राम घर बैठे गाइये॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 29

आप समझाते हैं कि जिस प्रभु को पाने के लिये मैं स्थान-स्थान की ठोकरें खाता रहा, अन्तत: वह मुझे अपने शरीर के अन्दर से ही प्राप्त हो गया। अब उससे मिलाप के लिये मुझे कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं है।

परमेश्वर का साक्षात्कार अपने अन्दर करो

यह देह सुख का कोठर,[117]
परमात्मा का इसमें वास,
प्रभु है स्रोत सुख का,
पाना है सुख, कहा उसका मान।
देख आँख से, सुन कान से,
निरत-सुरत से प्रभु को जान,[118]

स्थिर कर चित्त, तू ध्यान लगा,
हो प्रेम-मगन, कर प्रेम-गान।
कण-कण में है उसका वास,
पूर्ण रूप से पूर्ण को जान,
समझ उसे, हृदय में धार,
रोम-रोम से कर बखान।[119]
कहे नामा बन उसका रूप,
हो जा तू भी पूर्ण।

अवघी ही पंढरी सुखाची वोवरी
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 414

परमेश्वर सब सुखों की खान है। हरएक घर (शरीर) में सम्पूर्ण ब्रह्मानन्द बसता है। प्रभु सुख का स्रोत है और उसकी आज्ञा मानने से सब सुख मिलते हैं। नयन से देखो, कान से सुनो, अर्थात् निरत और सुरत द्वारा परमात्मा को पूरी तरह से जान लो। पूर्ण मन से उसका ध्यान करो। पूर्ण प्रेम से उसके गीत गाओ। वह सर्वत्र व्याप्त है, वह कण-कण में रमा हुआ है। उस पूर्ण को पूर्ण रूप से मान लो और अपनी पूर्ण शक्ति से उसकी महिमा गाओ। मन से उसे समझो और हृदय में उतार लो। नामदेव जी कहते हैं कि प्रभु-भक्ति द्वारा अपनी आत्मा को उसमें लीन करके, उसी का रूप बन जाओ।

सभी पूर्ण सन्तों ने अपने-अपने ढंग से परमात्मा का यशोगान किया है। सन्त तुकाराम जी कहते हैं:

प्रभु है हमारा, सब जीवों की जान,
है हमारे भीतर-बाहर और निकट
सदय वह, भक्तों की करता, पूरी चाहत।
करता रक्षा और सँभाल, दबोचे बग़ल कलिकाल,[120]
देव है दयाल, तुका की कर रहा सँभाल॥

देव आमचा आमचा
श्रीतुकाराम गाथा, अभंग 1870

प्रभु हमारा है, हमारा है। वह समस्त प्राणियों का प्राण है। प्रभु है, निकट ही है, वह हमारे अन्दर है, बाहर भी है। वह स्वभाव से कोमल है, बहुत कोमल है। वह लाड़ले भक्तों की हर कामना पूरी करता है। प्रभु हमारी रक्षा करता है, सँभाल करता है। दुष्ट कलियुग को वह अपनी बग़ल में दबोचे रखता है (ताकि वह प्रभु के भक्तों को यातना न दे सके)। प्रभु दयालु है, परम दयालु है, वह तुकाराम की निरन्तर सँभाल कर रहा है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि सन्त नामदेव जी ने परमात्मा को अनादि और अविनाशी सत्य कहा है। उसका न कोई आदि है न अन्त। वह समय के प्रारम्भ होने से पहले भी था, अब भी है और भविष्य में भी सदा रहेगा।

आप कहते हैं कि वह सर्वशक्तिमान् प्रभु सृष्टि का रचयिता है। दृष्ट और अदृष्ट, स्थूल तथा सूक्ष्म, जड़ तथा चेतन, समस्त रचना उस रचयिता की पैदा की हुई है। उसकी विचित्र लीला है कि वह सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है, परन्तु इससे निर्लिप्त है। वह सर्वव्यापक, परन्तु अदृष्ट है।

आप विचार प्रकट करते हैं कि वह प्रभु मन, बुद्धि तथा कल्पना से परे है। वह अनन्त गुणों का भण्डार है, परन्तु अवर्णनीय है। उस सर्वव्यापक अगम, अगोचर प्रभु का कोई रंग, रूप या आकार नहीं है। आत्मा उस परम सत्य की अनुभूति तो कर सकती है, परन्तु उसका वर्णन सर्वथा असम्भव है।

सन्त नामदेव जी उपदेश देते हैं कि वह प्रभु अन्तर्यामी है, उससे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। परन्तु वह प्रेम तथा दया का सागर, क्षमाशील और दयालु है। वह जीव के अनन्त अवगुणों तथा पापों के बावजूद उस पर अपनी दया की वर्षा करता है। उस प्रभु की सबसे बड़ी दया यह है कि वह घट-घट में समाया हुआ है। वह हर जीव के अन्दर है और हर मनुष्य अपना ध्यान अन्तर्मुख करके सहज रूप में उससे मिलाप कर सकता है।

प्रभु की खोज

जा कारन त्रिभुवन फिरि आये। सो निधान घटि भीतरि पाये॥
नामदेव कहै कहूं आइये न जाइये। अपने राम घर बैठे गाइये॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 29

अपने निजी अनुभव के आधार पर आप समझाते हैं कि जिस प्रभु को पाने के लिये मैं स्थान-स्थान की ठोकरें खाता रहा, अन्ततः वह मुझे अपने शरीर के अन्दर ही प्राप्त हो गया। अब उससे मिलाप के लिये मुझे कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं है।

दुनिया के अधिकतर लोग प्रभु के साथ मिलाप करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते। जो गिनती के लोग उससे मिलाप करना भी चाहते हैं, उनमें से अधिकतर बहिर्मुखी साधनों में खो जाते हैं। वे उसे धर्म-स्थानों, ग्रन्थों-शास्त्रों, जंगलों-पहाड़ों आदि में ढूँढ़ते हैं। वे अनेक प्रकार के बहिर्मुखी कर्मकाण्ड को ही प्रभु की प्राप्ति का साधन समझने के भ्रम का शिकार हो जाते हैं।

सन्त नामदेव जी ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि उस प्रभु ने अनादि काल से अपने साथ मिलाप का साधन तथा मार्ग स्वयं बना रखा है। यह अनादि, सर्वव्यापी और परिवर्तनरहित साधन अथवा मार्ग सब धर्मों, जातियों तथा देशों के सब इनसानों के लिये समान है। वह दयालु प्रभु जीव के निकट से निकट है, शरीर के अन्दर विराजमान है और उससे मिलाप का साधन उसका शब्द या नाम भी अन्दर है। हर जीव अपने ध्यान को अन्तर्मुख करके अपनी लिव शब्द या नाम से जोड़कर सहज-रूप से प्रभु से मिलाप कर सकता है।

सन्त नामदेव जी समझाते हैं कि इस सच्चे साधन और मार्ग को छोड़कर दूसरे किसी भी बहिर्मुखी कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ आदि द्वारा प्रभु से मिलाप कर पाना सर्वथा असम्भव है। बाहरी कर्मकाण्ड से व्यक्ति की आन्तरिक दशा नहीं बदलती। प्रभु न वेदों-शास्त्रों के पाठ और विचार से मिलता है, न हठ-कर्मों द्वारा, न ही दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत, प्राणायाम आदि द्वारा। उसकी तलाश के लिये बाहर भटकना कोरी अज्ञानता है।

नामदेव जी हम जीवों को बार-बार प्रेरित करते हैं कि बहिर्मुखी पूजा, आराधना से मन मोड़कर, नाम की अन्तर्मुख भक्ति में लग जाओ। यह भक्ति केवल सतगुरु की समझाई युक्ति के अनुसार करनी है जिससे धीरे-धीरे जीव की मनोदशा बदलनी शुरू हो जाती है। सब गुणों का भण्डार प्रभु का नाम

है। अज्ञानता के अन्धकार का नाश भी नाम के अभ्यास द्वारा होता है, नैतिक गुण भी नाम के अभ्यास द्वारा उत्पन्न होते हैं और हर प्रकार की आध्यात्मिक प्राप्ति भी नाम के अभ्यास द्वारा होती है।

मन छोडि छोडि सगल भेदं

असुमेध जगने॥ तुला पुरख दाने॥ प्राग इसनाने॥[121]
तउ न पुजहि हरि कीरति नामा॥
अपुने रामहि भजु रे मन आलसीआ॥
गइआ पिंडु भरता॥ बनारसि असि बसता॥[122]
मुखि बेद चतुर पड़ता॥ सगल धरम अछिता॥
गुर गिआन इंद्री द्रिड़ता॥ खटु करम सहित रहता॥[123]
सिवा सकति संबादं॥ मन छोडि छोडि सगल भेदं॥[124]
सिमरि सिमरि गोबिंदं॥ भजु नामा तरसि भव सिंधं॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 873

सन्त नामदेव जी समझाते हैं कि भले ही कोई व्यक्ति अपार धन ख़र्च कर, अश्वमेध यज्ञ करवा ले, अपने शरीर के भार के बराबर सोना दान में दे दे, प्रयाग आदि तीर्थों पर बार-बार स्नान कर ले, तो भी ये साधन नाम या शब्द की अन्तर्मुख साधनारूपी सच्ची हरि-भक्ति का मुक़ाबला नहीं कर सकते। इसलिये ऐ मेरे आलसी मन, अपने प्रभु का सिमरन कर।

गया जाकर पिण्ड-दान करने से या बनारस जैसे पवित्र तीर्थ-स्थान पर जाकर बस जाने से, चारों वेदों को ज़बानी याद कर लेने से, सभी कर्म-धर्म कर लेने से, अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेने से, हिन्दू धर्म-शास्त्रों के अनुसार षट्कर्मों का पालन करते रहने से, बार-बार शिव जी और पार्वती की कथाओं का वर्णन करते रहने से भी ये सब साधन नामरूपी सच्ची प्रभु-भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। इसलिये आप कहते हैं कि हे मन! तू हर तरफ़ से ध्यान हटाकर केवल प्रभु के नाम का ही सिमरन कर, क्योंकि इस संसाररूपी भवसागर से पार उतरने का यही एकमात्र साधन है।

बीठलु भैला काइ करउ

आनीले कुंभ भराईले ऊदक ठाकुर कउ इसनानु करउ ॥[125]
बइआलीस लख जी जल महि होते बीठलु भैला काइ करउ ॥
जत्र जाउ तत बीठलु भैला ॥ महा अनंद करे सद केला ॥[126]
आनीले फूल परोईले माला ठाकुर की हउ पूज करउ ॥
पहिले बासु लई है भवरह बीठल भैला काइ करउ ॥
आनीले दूधु रीधाईले खीरं ठाकुर कउ नैवेदु करउ ॥[127]
पहिले दूधु बिटारिओ बछरै बीठलु भैला काइ करउ ॥
ईभै बीठलु ऊभै बीठलु बीठल बिनु संसारु नही ॥[128]
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिओ तूं सरब मही ॥[129]

आदि ग्रन्थ, पृ. 485

नामदेव जी कहते हैं कि लोग सरोवर के पानी को पवित्र समझकर उससे घड़ा भरकर ठाकुर को स्नान करवाते हैं, पर जिस पानी में 42 लाख क़िस्म के जीव रहते हैं, वह पानी भला ठाकुर के स्नान के योग्य कैसे हो सकता है। मुझे वह आनन्द-स्वरूप प्रभु सर्वत्र अपनी लीला करता हुआ दिखाई देता है। यदि मैं फूलों की माला बनाकर ठाकुर की पूजा करना चाहता हूँ तो मन में संशय उठता है कि इन फूलों की सुगन्धि भँवरे ले चुके हैं, इसलिये ये फूल मलीन हो चुके हैं। फिर मन में विचार उठता है कि वह ठाकुर फूलों में भी व्यापक है। फिर इन फूलों को ठाकुर के आगे अर्पण करने का क्या लाभ है! अगर मैं दूध की खीर बनाकर ठाकुर को भोग लगाने के बारे में सोचता हूँ तो मन में संशय उठता है कि वह दूध तो बछड़े का जूठा है। आप कहते हैं कि हे प्रभु! तुझे प्रसन्न करने के लिये किसी भी बाहरी वस्तु का सहारा लेना व्यर्थ है क्योंकि तू हर जगह और हर वस्तु में समाया हुआ है।

कहा करूं जग देषत अंधा

कहा करूं जग देषत अंधा। तजि आनंद बिचारै धंधा ॥
पाहन आगै देव कटीला। बाको प्रांण नहीं बाकी पूज रचीला ॥

निरजीव आगै सरजीव मारैं। देषत जनम आपनौ हारैं ॥[130]
आंगणि देव पिछौकडि पूजा। पाहन पूजि भए नर दूजा ॥[131]
नांमदेव कहै सुनौ रे धगड़ा। आतमदेव न पूजौ दगड़ा ॥[132]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 47

नामदेव जी खेद प्रकट करते हैं कि दुनिया के लोग आँखें होने के बावजूद अन्धे अज्ञानियों जैसा व्यवहार करते हैं। उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि सच्चा आनन्द तो सच्ची प्रभु-भक्ति तथा प्रभु-दर्शन में है। वे सच्चे आनन्द के स्रोत को छोड़कर दुनिया के व्यर्थ के धन्धों में खोए हुए हैं। वे भ्रम के शिकार हैं कि शायद इनसे ही उन्हें सच्चा सुख मिल जाएगा। लोग इतने मूर्ख हैं कि निर्जीव पत्थर के आगे सजीव पशुओं की बलि देकर उसकी पूजा करते हैं। वे यह नहीं समझते कि उन जीवों के अन्दर भी वह प्रभु विराजमान है। ऐसे लोग इस भ्रम के शिकार हैं कि जानवरों की बलि चढ़ाना पुण्य-कर्म है। वास्तव में यह घोर पाप है। इसी तरह अज्ञानतावश लोग बाहर ही बाहर प्रभु की तलाश में भटकते रहते हैं जब कि वह शरीर के अन्दर बैठा है। नामदेव जी सावधान करते हैं कि हे साधको, ध्यान से सुनो! वह प्रभु कहीं बाहर नहीं बल्कि तुम्हारे अपने अन्दर है। यों ही पत्थर आदि की पूजा में लगकर अपने जीवन को व्यर्थ मत गँवाओ।

कपट मैं न मिलै गोविंद

कपट मैं न मिलै गोविंद गुन सागर गोपाल।
गोपी चंदन तिलक बनावै कंठहु लावै माल ॥[133]
मन प्रतीति नहीं रे प्रांनी औरन कूं समझाइ।
लोकन कू वैकुंठ पठावै, आपण जमपुरि जाइ ॥[134]
जानि बूझि विष षाइये रे, अंधे अंधा हाथि।
देखत ही कूंवै पड़ै, अंधो अंधा साथि ॥
जोग जग जप तप तीरथ व्रत मन राषै इन पास।
दान पुनि धरम दया दीनता, हरि की भगति उदास ॥

भजि भगवंत भजन भजि प्रांनी छांडे अणेरी आस।[135]
बरना बरन सुभासुभ भजि करि, कौन भयो निज दास॥
कोमल विमल संत जन सूरा करैं तुम्हारी आस।
तिन पर कृपा करौ तुम केसव प्रणवत नामदेव दास॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2248

नामदेव जी कहते हैं कि पाखण्डी और कपटी लोग माथे पर चन्दन का तिलक लगाकर और गले में माला डालकर भक्ति और पवित्रता का ढोंग करते हैं। वे यह नहीं जानते कि इस तरह वे अनन्त गुणों के सागर प्रभु को नहीं पा सकते। ऐसे लोग भले ही गुरु बनने का स्वाँग रचाएँ, पर वे आन्तरिक आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभव से शून्य होते हैं। उनका अपना हृदय तो प्रभु की प्रीति और प्रतीति से ख़ाली होता है, पर दूसरों को वे प्रभु-भक्ति का उपदेश देते नहीं थकते। भले ही वे दूसरे लोगों को बैकुण्ठ पहुँचाने का दावा करें, परन्तु वे स्वयं नरकों के अधिकारी बन जाते हैं। नामदेव जी कहते हैं कि जो लोग ऐसे झूठे गुरुओं पर विश्वास करते हैं, वे जान-बूझकर विष खा रहे हैं। आप कहते हैं कि यह इसी प्रकार है जैसे अन्धा, अन्धे का मार्गदर्शन कर रहा हो और दोनों कुएँ में जा पड़ते हैं। ऐसे लोगों का मन योग, यज्ञ, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दान-पुण्य में फँसा रहता है। वे दया, धर्म, दीनता, सच्ची हरि-भक्ति तथा आन्तरिक साधना से ख़ाली होते हैं। आप उपदेश करते हैं कि हे भले लोगो! बाक़ी सब इष्टों की आस छोड़कर एक प्रभु की भक्ति करो तथा जाति-पाँति और शुभ-अशुभ के भेद-भाव को त्यागकर केवल परमेश्वर की सच्ची भक्ति में लगो। आप कहते हैं कि हे प्रभु! निर्मल-हृदय, कोमल-चित्त और धैर्यवान सन्तजन तो सदा आपकी भक्ति में ही लीन रहते हैं। मैं आपका दास आप से यही प्रार्थना करता हूँ कि अपने सच्चे भक्तों पर सदा अपनी दया बनाए रखना।

ऐकादसी जगत की करनी

बोलिधौं निर्वाणैं पद राम नांम। ठाली जिभ्या कौणै है काम॥[136]
जप तप संजम पूजा दान। ऐ सब फोकट बिन भगवान॥

तीरथ बरत जगत की आस। फोकट कीजै बिन बिसवास॥
ऐकादसी जगत की करनी। पाया महल तब तजी निसरनी॥[137]
भणत नांमदेव तुम्हारे सरनां। मुझा मनवा तुझा चरनां॥[138]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 56

इस पद में नामदेव जी समझाते हैं कि निर्वाण-पद की प्राप्ति कर्मकाण्ड आदि द्वारा नहीं, प्रभु के शब्द या नाम द्वारा ही सम्भव है। आप कहते हैं कि केवल जिह्वा द्वारा किया गया प्रभु के नाम का सिमरन, अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड, जप, तप, संयम, पूजा, दान आदि प्रभु-प्राप्ति में कोई सहायता नहीं करता। तीर्थ, व्रत आदि क्रियाओं द्वारा सांसारिक सुख प्राप्त हो सकते हैं परन्तु प्रभु से मिलाप नहीं हो सकता। आप समझाते हैं कि जिसे प्रभु-भक्ति का सच्चा भेद मिल जाता है वे एकादशी आदि रीति-रिवाज को इस प्रकार छोड़ देते हैं जैसे कोई छत पर चढ़कर सीढ़ी को छोड़ देता है। आप प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मैंने आपके चरणों की शरण ले ली है। अब आपके सिवाय मेरा और कोई सहारा नहीं है।

सो पंथ दूरै वंचिला

जीव बाह्य साधना में रहते लिप्त, मेरा जीवन प्रभु-भक्ति में अर्पित
जिस-जिस रंग में रँगा यह संसार, उस रंग से मैं हूँ अलिप्त (बचा हुआ)
जिस-जिस राह जाता यह संसार, उस राह को दिया मैंने छोड़
बिरला पहचाने निर्वाण-पद, मिथ्या भ्रम में बाक़ी हैं उलझे
नामा करता नमस्कार, सतगुरु है अंग-संग।

लोग एक अनंत बानी
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 16

मेरा मालिक, मेरे जीवन का आधार है। संसारी लोग अनेक प्रकार की बहिर्मुखी पूजा-भक्ति में लगे हुए हैं, परन्तु मैं तो अपना ध्यान सदैव अन्तर में प्रभु से जोड़कर रखता हूँ। जिस राह को दुनियादारों ने अपना रखा है,

प्रभु-भक्त ऐसे रास्ते से दूर ही रहता है। निर्वाण-पद तक पहुँचानेवाली सच्ची भक्ति का ज्ञान किसी विरले भाग्यशाली को प्राप्त है, बाक़ी भ्रमों में उलझे हुए हैं। नामदेव जी कहते हैं कि मेरे सतगुरु ने मुझे अन्तर्मुख साधना के ज़रिये प्रभु से साक्षात्कार करा दिया है।

निर्मल न होवै जनम बिगोवै

जौ लग राम नामै हित न भयौ। तौ लग मेरी मेरी करता जनम गयौ॥
लागी पंक पंक लै धोवै। निर्मल न होवै जनम बिगोवै॥[139]
भीतरि मैला बाहरि चोषा। पाणीं पिंड पषालै धोषा॥[140]
नामदेव कहै सुरही परहरिये। भेड पूंछ कैसे भवजल तरिये॥[141]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 22

नामदेव जी कहते हैं कि जब तक हृदय में प्रभु का सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं होता, जीव माया के चंगुल में फँसा रहता है और मैं-मेरी करता-करता अपना जीवन व्यर्थ बिता देता है। कीचड़, कीचड़ से नहीं धुल सकता। मलीन हृदय तीर्थों के स्नान से निर्मल नहीं हो सकता। विषय-विकारों में लिप्त व्यक्ति अन्दर से मैला है। वह बाहर से साफ़ दिखने की कोशिश करता है, तो बाहर के तीर्थों में स्नान करने से उसके अन्तर की मैल दूर नहीं होती और यों ही उसका जन्म बरबाद हो जाता है। मृत्यु के बाद पापी जीवात्माओं को अन्तर में ख़ून, अस्थि, बाल आदि मैल और तपते जल से भरी हुई वैतरणी नदी को पार करना होता है। लोगों का विश्वास है कि यदि कोई गाय की पूँछ को पकड़ ले तो वह वैतरणी से पार हो जाता है। इस भाव से लोग गाय की पूजा करते हैं और गो-दान करते हैं। वैसे तो गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी को पार नहीं किया जा सकता, लेकिन अगर मान भी लिया जाए कि गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी को पार कर लें, परन्तु बहिर्मुखी कर्मकाण्ड द्वारा प्रभु से मिलाप कर पाना सर्वथा असम्भव है। आप कहते हैं कि मेरे भाई! भवसागर को पार करना चाहते हो तो भेड़रूपी बाहरी कर्मकाण्ड की पूँछ को छोड़कर नाम की कमाई की गाय की पूँछ पकड़ो।

सन्त तुकाराम जी कहते हैं:

कर काशी यात्रा कि गंगा-स्नान, क्या लाभ, अगर न हो मन निर्मल,
बेहद कड़ा हो दाल का दाना, नहीं पकेगा, लाख उबाल,
माथे पर तिलक, हो हाथ में माला, क्या लाभ जो प्रेम-भाव से हो
ख़ाली मन,
कहे तुका प्रभु-प्रेम बिन, व्यर्थ बातें जैसे निरा भौंकना।

काय काशी करिती गंगा
श्रीतुकाराम गाथा, अभंग 137

यदि मन निर्मल नहीं तो काशी की यात्रा करने या गंगा में स्नान करने से क्या होगा। दाल का दाना यदि बहुत कड़ा है तो तुम उसे पानी में डालकर चाहे कितना ही उबाल लो, वह पकेगा नहीं। बाहर निकालोगे तो पहले जैसा ही पाओगे। इसी तरह यदि हृदय प्रभु-प्रेम में डूबा हुआ नहीं है तो माथे पर तिलक लगा लेने या गले में माला डाल लेने से कोई लाभ नहीं होगा। तुकाराम कहते हैं कि यदि मन में प्रेम नहीं तो तुम प्रभु के बारे में चाहे कितनी बातें करो, व्यर्थ होंगी; वे निरा भौंकना ही होंगी, इससे अधिक कुछ नहीं। आप फिर कहते हैं:

जाकर तीर्थ क्या किया, ऊपर से बस चमड़ा (शरीर) धो लिया,[142]
अन्दर तो शुद्ध न हुआ, उसी को भूषण बना लिया।[143]
कड़ुवी तुम्बी पर चढ़ा चीनी की परत, कम न होती कड़ुवाहट,[144]
कहे तुका, न पाई शान्ति, क्षमा, दया तो क्यों हो इतने प्रसन्न।

जाऊनियां तीर्था काय तुवां केलें
श्रीतुकाराम गाथा, अभंग 1732

तीर्थों में जाकर तुमने क्या किया? केवल ऊपर से अपने चमड़े को धो लिया। इससे तुम्हारा अन्तर तो शुद्ध नहीं हुआ? तुमने यों ही इसे अपना धार्मिक भूषण बना लिया, अर्थात् समाज में इसे अपनी प्रतिष्ठा का साधन बना लिया। कड़वी तुम्बी पर चीनी का लेप कर दिया जाए तो उसके अन्दर

की कड़वाहट दूर नहीं होती। आप कहते हैं कि तुम्हारे अन्दर शान्ति, क्षमा और दया तो आई नहीं, तुम फूले-फूले क्यों फिरते हो?

स्यंभू देव न चीन्है कोई

का नाचीला का गाईला। का घसि घसि चंदन लाईला॥
आपा पर नहिं चीन्हीला। तौ चित्त चितारै डहकीला॥[145]
कृत्म आगै नाचै लोई। स्यंभू देव न चीन्है कोई॥[146]
स्यंभूदेव की सेवा जानै। तौ दिव दिष्टी ह्वै सकल पिछानै॥[147]
नामदेव भणै मेरे यही पूजा। आतमराम अवर नहीं दूजा॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 20

नामदेव जी अफ़सोस करते हैं कि अज्ञानी लोग भ्रमवश पूजा के ग़लत साधनों में पच रहे हैं। वे कृत्रिम देवों यानी पत्थर की मूर्तियों के आगे नाचते हैं, गाते हैं, चन्दन को घिस-घिसकर माथे पर लगाते हैं, पर अपने अन्तर में बैठे प्रभु को देखने का प्रयास नहीं करते। प्रभु-भक्ति के बहिर्मुखी साधनों के आडम्बरों में लगे लोग अन्तर्मुख साधना का सच्चा साधन अपना लें तो उनकी दिव्य-दृष्टि खुल जाएगी और उनका प्रभु से मिलाप हो जाएगा। आप कहते हैं कि मैं तो केवल सतगुरु द्वारा बताई अन्तर्मुख साधना में लीन रहता हूँ। मुझे प्रभु-प्राप्ति के आन्तरिक साधना के अलावा किसी अन्य पूजा या भक्ति से कोई सरोकार नहीं।

सतगुरु

ढिग ढिग ढूंढै अंध ज्यूं, चीन्है नाहीं संत।
नांम कहै क्यूं पाईये, बिन भगता भगवंत॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2337

सन्त नामदेव जी का आशय है कि प्रभु-भक्त की सहायता के बिना न भक्ति हो सकती है और न ही भगवान् मिल सकता है। जो लोग प्रभु-

प्राप्ति के लिये किसी प्रभु-भक्त की शरण में जाने के बजाय स्थान-स्थान पर अनेक साधनों द्वारा प्रभु-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हैं, नामदेव जी उन्हें अन्धे या बेसमझ कहते हैं। आपने यहाँ परमार्थ के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को अत्यन्त सरल ढंग से समझा दिया है।

जिस प्रकार संसार का हर प्रकार का ज्ञान, ज्ञानी से ही अज्ञानी को मिलता है, गणित में निपुण अध्यापक गणित से अनजान शिष्य को गणित सिखाता है, संगीत में निपुण आचार्य संगीत से अनजान शिष्य को संगीत में निपुण करता है, इसी तरह प्रभु-भक्ति द्वारा स्वयं प्रभु में लीन हो चुका प्रभु-भक्त, दूसरे साधकों को प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप करने की युक्ति सिखाता है। उसे सतगुरु कहते हैं।

पहले भी कहा जा चुका है कि परमात्मा से छोटी कोई शक्ति जीवात्मा को परमात्मा से नहीं मिला सकती। नाम परमात्मा का रूप है। निर्बल अज्ञानी जीव अपनी शक्ति तथा ज्ञान से उस शक्ति से नहीं जुड़ सकता। उसे अन्तर में नामरूपी शक्ति से केवल वही महात्मा जोड़ सकता है जो परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो चुका हो। परमात्मा बाहर से सतगुरु के रूप में नाम से जुड़ने में और अन्तर में नाम द्वारा अपने शब्द-स्वरूप के साथ जुड़ने में जीवात्मा की सहायता करता है। दूसरे शब्दों में वह सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञाता प्रभु, जब चाहे, जिसे चाहे, अपने साथ मिला लेता है। जिसे भी अपने साथ मिलाता है, ख़ुद मिलाता है। प्रभु ने स्वयं यह नियम बना रखा है कि वह जब भी मिलता है अपने सच्चे भक्तों, सन्तों-महात्माओं तथा गुरुजनों के द्वारा ही मिलता है। सतगुरु की आवश्यकता को सिर्फ़ वे लोग नहीं मानते हैं जिन्हें परमात्मा से मिलने की ज़रूरत महसूस नहीं होती है।

चूँकि सन्तमत आन्तरिक साधना का मार्ग है, इस साधना में नाम का सिमरन, ध्यान तथा अनहद शब्द के अभ्यास का विशेष महत्त्व है। साधना के ये तीनों अंग देहधारी सन्त-सतगुरु पर आधारित हैं। बिना सतगुरु के न सिमरन सम्भव है, न ध्यान सम्भव है और न ही शब्द से सुरत जोड़ी जा सकती है।

सतगुरु की आवश्यकता

परमात्मा हमारे अन्तर में है। परमात्मा की प्राप्ति का साधन नाम भी हमारे अन्तर में है। अन्तर में नाम से लिव जोड़ने के लिये सतगुरु की सिखाई युक्ति द्वारा ध्यान को अन्तर में एकाग्र तथा स्थिर करना आवश्यक है। यदि हम अपने आप अन्तर में नाम की ध्वनि और नाम के प्रकाश से ध्यान जोड़ सकते तो हमें सतगुरु की आवश्यकता ही नहीं होती। सतगुरु की संगति, सतगुरु के उपदेश, सतगुरु के मार्ग-दर्शन तथा सहायता की जो भी आवश्यकता है, अन्तर में नाम से जुड़ने के लिये है, क्योंकि आत्मा को परमात्मा से, परमात्मा का नाम मिलाता है।

सन्त नामदेव जी सतगुरु के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता का बयान इस प्रकार करते हैं:

आज कोई मिलसी मुनै राम सनेही। तब सुष पावै हमारी देही॥[148]
भाव भगति मन मैं उपजावै। प्रेम प्रीति हरि अंतरि आवै॥
आपा पर दुविधा सबनासै। सहजै आतम ग्यान प्रकासै॥
जन नांमा मन षरा उदास। तब सुष पावै मिलै हरिदास॥[149]

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2208

नामदेव जी विनती करते हैं कि हे प्रभु! मेरा अपने किसी सच्चे भक्त से मिलाप करवा दें ताकि मेरा आपसे जुदाई का दुःख दूर हो जाए और मुझे आपके मिलाप का सच्चा सुख प्राप्त हो जाए। मुझे ऐसे भक्त से मिला दें जिससे मिलकर मेरे मन में भी भक्ति-भाव उत्पन्न हो और उस भक्ति-भाव के फलस्वरूप मुझे आपका दर्शन हो जाए। मुझे ऐसे भक्त से मिला दें, जिससे मेरे अहं का नाश हो जाए तथा मेरे सब भ्रम मिट जाएँ। मुझे ऐसे भक्त से मिला दें जिससे मेरे अन्दर सहज रूप से सत्य का प्रकाश हो जाए। आप कहते हैं कि मेरी चिन्ता तथा दुविधा तभी मिट सकती है जब मेरा सच्चे प्रभु-भक्त से मिलाप हो जाए। आप समझाना चाहते हैं कि प्रभु के भक्त से मिलाप प्रभु-प्राप्ति का पूर्व संकेत है।

पूर्ण गुरु की पहचान

गुरु का होना ही काफ़ी नहीं, गुरु पूर्ण होना चाहिये। प्राइमरी क्लास का अध्यापक किसी को एम.ए. पास नहीं करवा सकता है। जो स्वयं परमात्मा से मिला हुआ हो, वही किसी दूसरे को परमात्मा से मिला सकता है। एक पूर्ण गुरु में किन-किन गुणों का समावेश होना चाहिये, इस पर प्रकाश डालते हुए सन्त नामदेव जी कहते हैं:

सच्चे साधु-संत की यह पहचान,
जिसने त्यागा पूर्ण अहंकार,
सब जीवों में जाने प्रभु को समान,
बाक़ी फँसे सब, माया-जाल।
जो धन को समझे मृत्ति समान,[150]
रत्नों को समझे काकर-पाथर,[151]
काम-क्रोध को दिया निकाल,
क्षमा-शान्ति को किया स्वीकार।
जो न बिसारे पल भर प्रभु नाम को,
कहे नामदेव, मानो सच्चा सन्त उसी को।

सर्वांभूतीं पाहे एक वासुदेव
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 841

जो द्वैत से अद्वैत में पहुँच चुका है, जिसे सब जीवों में एक परमात्मा का रूप दिखाई देता है तथा जो अहं पर विजय प्राप्त करके नम्रता का रूप हो गया है, ऐसा प्रभु-भक्त ही सच्चा सन्त है। जिसमें ये गुण नहीं हैं वह माया का दास है। सच्चा सन्त धन को मिट्टी और रत्नों के भण्डार को पत्थरों के समान समझता है। वह माया के मोह से मुक्त है। वह काम, क्रोध आदि को त्यागकर शान्ति तथा क्षमा जैसे गुणों का भण्डार बन गया है। वह स्वास-स्वास प्रभु के नाम का सिमरन करता है और पल भर के लिये भी परमात्मा को नहीं भूलता।

भगवंत भगता नहीं अंतरा

भगवंत भगता नहीं अंतरा। द्वै करि जानैं पसुवा नरा॥[152]
छाडि भगवंत वेद विधि करै। दाझै भूजै जामैं मरै॥[153]
कथनी वदनी सब कोइ कहै। करनी जन कोई विरला रहै॥
कहत नामदेव ममता जाइ। तौ साध संगति मैं रह्या समाइ॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2223

प्रभु और उनके भक्तजन यानी सन्त सतगुरु में कोई अन्तर नहीं होता, सन्तजन प्रभु का ही साकार रूप होते हैं। नामदेव जी कहते हैं कि जो इन्हें अलग-अलग समझते हैं वे पशु यानी बुद्धिहीन हैं। आप कहते हैं कि जो लोग सतगुरु द्वारा समझाई गई प्रभु-भक्ति को छोड़कर धर्म-शास्त्रों में बताए कर्मकाण्ड करके व्यर्थ कष्ट सहते हैं, वे जन्म-मरण यानी चौरासी के चक्र में पड़े रहते हैं। आप कहते हैं कि परमार्थ पर चलने का यत्न तो सभी करते हैं, परन्तु सतगुरु के उपदेशानुसार परमार्थ की प्राप्ति के लिये आवश्यक करनी या रहनी की ओर कोई विरला ही ध्यान देता है। वास्तविक लाभ उसी को प्राप्त होता है जो कथनी को तजकर करनी में लगता है। आप कहते हैं कि जो लोग सगे-सम्बन्धियों और धन-सम्पत्ति का मोह त्यागकर तन-मन से सन्तों के उपदेश पर अमल करते हैं, केवल उन्हें ही सन्तों की संगति का पूरा लाभ प्राप्त होता है।

संतह कै परसादि नामा हरि भेटुला

पारब्रहमु जि चीन्हसी आसा ते न भावसी॥[154]
रामा भगतह चेतीअले अचिंत मनु राखसी॥[155]
कैसे मन तरहिगा रे संसारु सागरु बिखै को बना॥[156]
झूठी माइआ देखि कै भूला रे मना॥
छीपे के घरि जनमु दैला गुर उपदेसु भैला॥[157]
संतह कै परसादि नामा हरि भेटुला॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 486

सन्त नामदेव जी समझाते हैं कि जो व्यक्ति परमेश्वर को जान लेता है, वह इच्छा-मुक्त हो जाता है। प्रभु की भक्ति द्वारा उसका चंचल मन अडोल और निश्चिन्त हो जाता है, उसे मृत्यु का भय भी नहीं रहता। आप अपने मन को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हे मेरे मन! तू माया के झूठे भ्रमजाल में क्यों फँसा हुआ है? यह संसाररूपी भवसागर तो विषैले विकारों के जल से भरा है। तुम इसे कैसे पार करोगे? प्रभु-भक्ति में दुनिया की जाति-पाँति कोई अर्थ नहीं रखती। इसलिये आप कहते हैं कि बेशक प्रभु ने मुझे छीपे के घर में जन्म दिया, पर सौभाग्य से मुझे पूर्ण गुरु से उपदेश प्राप्त हुआ है और उनकी दया-मेहर से मेरा प्रभु से मिलाप हो गया है।

हे सतगुरु खेचर, तू है सुख का सागर,
मालिक का दर्शन, पाया तेरे कारण।
दर्शन पाकर, तल्लीन हुआ मेरा मन,
लीन हुई आँखें, उसके ध्यान में भरकर।
ज्यों बूंद हुई सागर से मिलकर,
त्यों मिल उसमें मिटा मेरा हंकार।[158]
है अब आनंद ही आनंद,
नाम से जाना नामा ने, प्रभु है परमानंद॥

सुखाचा सद्गुरु सुखरूप खेचरू
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1378

नामदेव जी अपने सतगुरु विसोबा खेचर की स्तुति करते हुए कहते हैं: "मेरे सतगुरु! आप परम सुख के साक्षात् रूप हैं, आप अनुपम सुख के दाता हैं, आपने मुझे आनन्द-स्वरूप प्रभु के साक्षात् दर्शन करवा दिये हैं। प्रभु के दर्शन से मेरा मन आनन्द-विभोर हो गया है और मैं उसके ध्यान में खो गया हूँ। जिस तरह सागर में मिलकर जल, सागर का रूप हो जाता है, उसी तरह प्रभु में समाकर मैं भी उसी की तरह आनन्द-रूप और ज्ञान-रूप हो गया हूँ।"

आप बहुत सुन्दर ढंग से अपनी वाणी के एक छोटे-से प्रसंग के ज़रिये सतगुरु के मिलाप से होनेवाले अनेक महत्त्वपूर्ण लाभ बयान कर रहे हैं।

सफल जनमु मो कउ गुर कीना

सफल जनमु मो कउ गुर कीना॥ दुख बिसारि सुख अंतरि लीना॥
गिआन अंजनु मो कउ गुरि दीना॥ राम नाम बिनु जीवनु मन हीना॥
नामदेइ सिमरनु करि जानां॥ जगजीवन सिउ जीउ समानां॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 857-58

'सफल जनमु मो कउ गुर कीना' – आप कहते हैं कि गुरु से मिलाप होने से पहले मुझे जीवन का वास्तविक उद्देश्य ही मालूम नहीं था। गुरु ने मुझे उस उद्देश्य के प्रति जागरूक ही नहीं किया, बल्कि उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सहायता भी की।

'दुख बिसारि सुख अंतरि लीना' – जब गुरु की सहायता तथा कृपा से प्रभु से मिलाप हो गया तो प्रभु से वियोग तथा आवागमन के अनन्त दु:खों का सदा के लिये अन्त हो गया तथा अन्तर में प्रभु से मिलाप का आनन्द भर गया।

'गिआन अंजनु मो कउ गुरि दीना' – जब गुरु ने ज्ञान का 'अंजनु' दिया तो अज्ञानता का अन्धकार दूर हो गया। यहाँ ज्ञान का अर्थ आन्तरिक अनुभव से है। सच्चा ज्ञान स्वयं, अन्तर में सत्य के साक्षात् अनुभव द्वारा प्राप्त होता है।

'राम नाम बिनु जीवनु मन हीना' – जब गुरु के उपदेश के अनुसार जीवन को ढाला तो यह ज्ञान हुआ कि राम-नाम के बिना जीवन व्यर्थ है। 'नामदेइ सिमरनु करि जानां' – इसलिये मन को पूरी तरह सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार प्रभु-नाम के सिमरन में लगा दिया। 'जगजीवन सिउ जीउ समानां॥' इसके फलस्वरूप आत्मा उस परमात्मा में समाकर उसका रूप हो गई।

सन्त नामदेव जी समझाना चाहते हैं कि निर्मल परमार्थ का आदि, मध्य और अन्त सतगुरु है। सतगुरु के मार्ग-दर्शन से शिष्य की वृत्ति बदलती है। वे उसे स्वार्थी से परमार्थी बनाते हैं, उसे प्रभु-प्राप्ति के सच्चे साधन और मार्ग का भेद देते हैं, नाम-सिमरन की युक्ति समझाते हैं जिससे शिष्य का प्रभु से मिलाप हो जाता है और वह सदा के लिये आवागमन के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। वास्तव में सतगुरु का उपकार अकथनीय है।

सतगुरु माउली

हे माँ खेचर,
पाई प्रभु की अखण्ड छाया, तुमसे मिलकर,
टूटे सब जन्म-मरण के बन्धन,
दूर हुए अब सारे डर,
मिटी चिन्ता मोक्ष की, औ संसार की फ़िक्र।[159]
लगी समाधि पाया अखण्ड ज्ञान,
मिला अनुभव और सब साधन,
नामा कहे, न छोड़ूँ कभी, गुरु खेचर के चरण॥

कृपेची साउली अखंड लाधली
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1370

अपने सतगुरु श्री विसोबा खेचर जी को माँ कहकर सम्बोधित करते हुए नामदेव जी कहते हैं, "खेचर माँ (माउली) के रूप में मुझे प्रभु की कृपा की अखण्ड छाया मिल गई है। मुझे अब किसी का भय नहीं। सतगुरु की शरण द्वारा मेरा भवसागर और जन्म-मरण के दु:खों के भय का नाश हो गया है। सतगुरु की संगति द्वारा मैं न केवल माया के बन्धनों से, बल्कि मोक्ष की चिन्ता से भी मुक्त हो गया हूँ। यह अवस्था मुझे सतगुरु की कृपा से अखण्ड-समाधि द्वारा प्राप्त हुई है। सतगुरु के चरण-कमल ही मेरी साधना के आधार हैं। मैं इन चरणों को कभी नहीं छोड़ूँगा।"

जउ गुरदेउ त मिलै मुरारि

जउ गुरदेउ त मिलै मुरारि॥ जउ गुरदेउ त उतरै पारि॥
जउ गुरदेउ त बैकुंठ तरै॥ जउ गुरदेउ त जीवत मरै॥[160]
सति सति सति सति सति गुरदेव॥ झूठु झूठु झूठु झूठु आन सभ सेव॥[161]
जउ गुरदेउ त नामु द्रिड़ावै॥ जउ गुरदेउ न दह दिस धावै॥[162]
जउ गुरदेउ पंच ते दूरि॥ जउ गुरदेउ न मरिबो झूरि॥[163]

जउ गुरदेउ त अंम्रित बानी॥ जउ गुरदेउ त अकथ कहानी॥[164]
जउ गुरदेउ त अंम्रित देह॥ जउ गुरदेउ नामु जपि लेहि॥
जउ गुरदेउ भवन त्रै सूझै॥ जउ गुरदेउ ऊच पद बूझै॥[165]
जउ गुरदेउ त सीसु अकासि॥ जउ गुरदेउ सदा साबासि॥[166]
जउ गुरदेउ सदा बैरागी॥ जउ गुरदेउ पर निंदा तिआगी॥
जउ गुरदेउ बुरा भला एक॥ जउ गुरदेउ लिलाटहि लेख॥
जउ गुरदेउ कंधु नही हिरै॥ जउ गुरदेउ देहुरा फिरै॥[167]
जउ गुरदेउ त छापरि छाई॥ जउ गुरदेउ सिहज निकसाई॥[168]
जउ गुरदेउ त अठसठि नाइआ॥ जउ गुरदेउ तनि चक्र लगाइआ॥[169]
जउ गुरदेउ त दुआदस सेवा॥ जउ गुरदेउ सभै बिखु मेवा॥[170]
जउ गुरदेउ त संसा टूटै॥ जउ गुरदेउ त जम ते छूटै॥
जउ गुरदेउ त भउजल तरै॥ जउ गुरदेउ त जनमि न मरै॥[171]
जउ गुरदेउ अठदस बिउहार॥ जउ गुरदेउ अठारह भार॥[172]
बिनु गुरदेउ अवर नही जाई॥ नामदेउ गुर की सरणाई॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1166-67

सन्त नामदेव जी अपने गुरुदेव की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं, ''मेरे गुरुदेव प्रभु का रूप हैं। गुरुदेव के मिलने से ही प्रभु से मिलाप होता है। गुरुदेव से जीते-जी मरने की युक्ति सीखकर शिष्य भवसागर से पार हो जाता है तथा प्रभु के निज-धाम पहुँच जाता है। गुरुदेव की सेवा ही सच्ची सेवा है। गुरुदेव के सिवाय अन्य कोई भी सेवा-भक्ति, पूजा-आराधना को आप झूठ इसलिये कह रहे हैं कि इनका एक निश्चित दायरा है। यह हमें परम लक्ष्य तक नहीं पहुँचाती।''

गुरुदेव शिष्य की आत्मा को प्रभु के नाम से जोड़ देते हैं जिससे मन का दसों दिशाओं में भ्रमण समाप्त हो जाता है और वह निश्चल होकर अन्तर में टिक जाता है। गुरुदेव द्वारा बताए गए नाम के सिमरन द्वारा पाँचों विकार वश में आ जाते हैं, शिष्य की प्रभु से मिलाप की मनोकामना पूरी हो जाती है तथा वह जन्म-मरण की दुःखदायी पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

गुरुदेव की कृपा से अन्तर में अनहद शब्दरूपी अमृत प्राप्त हो जाता है और प्रभुरूपी अकथ कथा का बोध हो जाता है। गुरुदेव की कृपा से देह, नामरूपी अमृत से भर जाती है यानी शिष्य को अपने अन्तर में ही नाम का सच्चा स्रोत प्राप्त हो जाता है। गुरुदेव की शरण द्वारा शिष्य को दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है। वह त्रिकालदर्शी बन जाता है। समस्त सृष्टि पुस्तक के समान उसके सामने खुल जाती है और उसे भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

गुरुदेव की शरण द्वारा उसकी आत्मा सदैव ऊँचे रूहानी आकाशों में भ्रमण करती है और उसे लोक तथा परलोक दोनों में सच्चा यश प्राप्त होता है। गुरुदेव की कृपा द्वारा हृदय में सच्चा वैराग्य, सच्चा प्रेम तथा त्याग उत्पन्न हो जाता है। गुरुदेव की कृपा से शिष्य संसार तथा शरीर के मोह से और पर-निन्दा के घोर पाप से मुक्त हो जाता है।

जिस जीव पर परमात्मा की दया-मेहर होती है, उसे ही गुरुदेव की प्राप्ति होती है। गुरुदेव की कृपा द्वारा शिष्य भले-बुरे, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, मान-अपमान के द्वैत से मुक्त होकर पूर्ण अद्वैत को प्राप्त करता है।

नामदेव जी अपने निजी जीवन के कुछ वृत्तान्तों के ज़रिये सतगुरु की महिमा करते हैं। आप कहते हैं कि जब लोगों ने उनकी जाति देखकर मन्दिर से बाहर निकाल दिया और आप बाहर, मन्दिर की ओर पीठ करके बैठ गए तो सतगुरु की कृपा से मन्दिर का मुँह आपकी ओर हो गया। जब आपके छप्पर को आग लग गई तो सतगुरु की कृपा से आपके लिये एक सुन्दर छप्पर बन गया।

जब आपने बादशाह द्वारा दिये गए पलंग को दरिया में फेंक दिया तो बादशाह के क्रुद्ध होने पर उस पलंग को बाहर निकाला गया और पलंग बिल्कुल सूखा था। आप समझाना चाहते हैं कि सतगुरु की कृपा द्वारा असम्भव भी सम्भव हो जाता है। सतगुरु प्रभु का रूप हैं। प्रभु से कुछ भी असम्भव नहीं और सतगुरु से भी कुछ भी असम्भव नहीं है। सतगुरु के कार्यों को तर्क द्वारा नहीं, बल्कि आन्तरिक अनुभूति द्वारा ही समझा जा सकता है।

नामदेव जी कहते हैं कि सतगुरु की शरण, समस्त तीर्थों में स्नान करने से बढ़कर है, क्योंकि अहं की मैल बाहरी तीर्थों में स्नान करने से नहीं,

बल्कि सतगुरु द्वारा बख़्शे गए नाम के तीर्थ में स्नान करने से उतरता है। साधु लोग यह दिखाने के लिये कि हमने अनेक तीर्थों में स्नान किया है, अपने शरीर पर चक्र बना लेते हैं और कई प्रकार के भेष धारण करते हैं। आप कहते हैं कि सबसे उत्तम भेष सतगुरु की शरण और सतगुरु की संगति हैं। लोग बारह प्रकार की सेवा का वर्णन करते हैं। गुरु-भक्ति में हर प्रकार की सेवा सम्मिलित है। सतगुरु-भक्ति द्वारा विष, अमृत में बदल जाता है, अर्थात् मायावी पदार्थों का विषैला प्रभाव समाप्त हो जाता है और नाम का अमृत प्राप्त हो जाता है। सतगुरु की कृपा से जीव के समस्त संशय और भ्रम समाप्त हो जाते हैं। उसके आवागमन के बन्धन टूट जाते हैं जिससे वह यम के भय से मुक्त हो जाता है। वह विष से भरे विकराल भवसागर से पार हो जाता है और जन्म-मरण के बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। सतगुरु की शरण में पहुँचकर उसे अठारह स्मृतियों में बताए गए कर्मकाण्ड की ज़रूरत नहीं रहती। समस्त वनस्पति के फूलों-फलों आदि को भेंट करना तथा हवन-यज्ञ में अठारह भार का ईन्धन डालने का फल भी सतगुरु-भक्ति में शामिल हो जाता है। आपका भाव है कि समस्त धर्म-ग्रन्थों का ज्ञान गुरु-भक्ति में शामिल है और हर प्रकार की पूजा, भक्ति और आराधना का लाभ भी सतगुरु-भक्ति में समाया हुआ है। आप कहते हैं कि मैं कभी किसी हालत में सतगुरु की शरण छोड़कर किसी दूसरे की शरण में नहीं जाऊँगा। मेरे प्रेम, मेरी पूजा और मेरी भक्ति का आदि, मध्य और अन्त मेरे सतगुरु हैं।

ध्यान देने की आवश्यकता है कि नामदेव जी ने उपरोक्त पद में गुरुदेव शब्द का प्रयोग किया है। गुरुदेव से अभिप्राय अपने निजी गुरु से है। बहुत से लोग पूर्वकाल में हुए गुरुओं-पीरों, अवतारों आदि में विश्वास रखकर भवसागर से पार होने की आशा रखते हैं। नामदेव जी आदि सन्त-महात्मा समझाना चाहते हैं कि शिष्य को जो भी लाभ होता है, अपने गुरुदेव की संगति, कृपा तथा मार्ग-दर्शन द्वारा होता है। पूर्वकाल में हुए सन्त-महात्मा प्रभु का रूप अवश्य थे, किन्तु आज वे प्रभु में समा चुके हैं। यदि हम उनसे मार्ग-दर्शन या सहायता प्राप्त कर सकते हैं तो स्वयं प्रभु से क्यों नहीं कर

सकते, क्योंकि वे महात्मा भी तो अब प्रभु में ही समाए हुए हैं? यदि हम आज प्रभु से सहायता प्राप्त कर सकते हैं तो पूर्वकाल में लोग क्यों नहीं प्राप्त कर सकते थे; उन महात्माओं को, अवतारों को संसार में क्यों आना पड़ा था? यदि पूर्व में किसी सन्त-महात्मा के आने की आवश्यकता थी तो आज भी वह आवश्यकता बराबर कायम है। या तो संसार में कभी किसी समय, किसी सन्त-महात्मा या अवतार के आने की आवश्यकता नहीं थी या फिर हर समय के लोगों को अपने समय के सन्त-महात्मा की सहायता और उसके मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। स्त्री अपने समय के पुरुष से ही शादी कर सकती है। विद्यार्थी अपने वक़्त के अध्यापक से ही विद्या प्राप्त कर सकता है। रोगी अपने समय के वैद्य या डॉक्टर से ही चिकित्सा प्राप्त कर सकता है। सन्त नामदेव जी ने गुरुदेव की महिमा द्वारा परमार्थ का यह गूढ़ भेद समझाने का यत्न किया है कि शिष्य केवल अपने समय के सतगुरु की संगति, कृपा तथा मार्ग-दर्शन से लाभ उठाकर ही प्रभु के साथ मिलाप की आशा रख सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता[173] में अर्जुन को समझाते हैं कि जो योग मैं तुम्हें सिखा रहा हूँ, मैंने यह अविनाशी योग पहले विवस्वान को सिखाया था। विवस्वान ने इसे मनु को सिखाया, फिर मनु ने इसे इक्ष्वाकु को सिखाया और फिर यह योग इक्ष्वाकु से गुरु-परम्परा द्वारा आगे चलता रहा। फिर यह योग नष्ट हो गया। अब मैं वही योग तुम्हें सिखा रहा हूँ।

विवस्वान यानी सूर्य है। आपका भाव है कि आपने पृथ्वी के आरम्भ में योग की दीक्षा दी। सरल-सी बात है कि जब आप ने विवस्वान को योग सिखाया तो आपका नाम कृष्ण नहीं था और आपका जन्म उस समय की अपनी माता की कोख से हुआ होगा। भाव यह है कि कृष्ण किसी विशेष समय या स्थान से बँधा कोई व्यक्ति नहीं है। वह आध्यात्मिक चेतना के विकास की एक अवस्था है। कृष्ण गुरु है और अर्जुन शिष्य है। जो आध्यात्मिक अवस्था कृष्ण को प्राप्त है, उसे अर्जुन केवल कृष्ण से ही प्राप्त कर सकता है। आप समझाना चाहते हैं कि हर युग के अर्जुन (शिष्य) को अपने युग के कृष्ण (गुरु) की आवश्यकता है।

गुर परसादी पाइआ

माइ न होती बापु न होता करमु न होती काइआ॥
हम नही होते तुम नही होते कवनु कहां ते आइआ॥
राम कोइ न किस ही केरा॥ जैसे तरवरि पंखि बसेरा॥[174]
चंदु न होता सूरु न होता पानी पवनु मिलाइआ॥
सासतु न होता बेदु न होता करमु कहां ते आइआ॥
खेचर भूचर तुलसी माला गुर परसादी पाइआ॥[175]
नामा प्रणवै परम ततु है सतिगुर होइ लखाइआ॥[176]

आदि ग्रन्थ, पृ. 973

इस पद में नामदेव जी सृष्टि से पूर्व के पूर्ण अद्वैत की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं। आप कहते हैं कि उस अवस्था में न किसी को जन्म देनेवाले माता-पिता थे, न काया थी और न ही कर्म तथा फल के विधान का आरम्भ हुआ था। न हम थे न तुम, न एक था न दूसरा, ऐसे में किसी के कहीं से आने या कहीं जाने का प्रश्न ही नहीं था। संसार में कोई किसी का नहीं है। यह संसार पक्षियों के रैन-बसेरा जैसे बने वृक्ष के समान है। यहाँ लोग आपस में मिलते अवश्य हैं किन्तु केवल बिछुड़ जाने के लिये। वास्तव में कोई किसी का नहीं है। आप पुनः सृष्टि से पहले की पूर्ण-अद्वैत की ओर लौटते हुए कहते हैं कि उस समय न सूर्य था, न चन्द्र और न ही पाँच तत्त्व थे। न वेद शास्त्र थे, न कर्म-धर्म था। आप पद के अन्त में कहते हैं कि मुझे सतगुरु की कृपा द्वारा इस अनुपम अवस्था का रहस्य प्राप्त हो गया है। मुझे प्राणायाम, तुलसी की पूजा और माला के सिमरन से प्राप्त होनेवाले लाभ गुरु-कृपा से मिल गए हैं। मुझे पुण्य-कर्मों, ग्रन्थों-शास्त्रों, हठ-कर्मों अथवा किसी दूसरे कर्मकाण्ड में उलझने की आवश्यकता नहीं है। सतगुरु की कृपा द्वारा मुझे सहज रूप में परम तत्त्व का ज्ञान हो गया है।

गुरु साहिबान ने भी अपनी वाणी में '१ ओ सतिगुर प्रसादि' द्वारा यही भाव दृढ़ किया है कि प्रभु की प्राप्ति सतगुरु की कृपा द्वारा होती है।

गुरु अमर दास जी का कथन है:

घरै अंदरि सभु वथु है बाहरि किछु नाही॥
गुर परसादी पाईऐ अंतरि कपट खुलाही॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 425

आप कहते हैं कि परमात्मा हमारे अन्तर में ही है परन्तु सतगुरु की कृपा द्वारा अन्तर का किवाड़ खोलकर ही उससे मिलाप कर सकते हैं। आपकी वाणी है:

सचै सबदि सची पति होई॥ बिनु नावै मुकति न पावै कोई॥
बिनु सतिगुर को नाउ न पाए प्रभि ऐसी बणत बणाई हे॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1046

आप कहते हैं कि उस प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ से ही स्वयं यह विधान बना रखा है कि सच्चे गुरु के बिना सच्चा नाम नहीं मिलता और सच्चे नाम के बिना परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता।

सतगुरु की संगति

सत्संग को पारमार्थिक उन्नति का सबसे सुगम, सुन्दर तथा लाभदायक साधन माना गया है। सत्संगति की महिमा अपार और अकथनीय है।

साधुची मिळणी भाग्ययोगें

माता-पिता भाई-बहिन मिलते जन्म से,
मगर सच्चा साधु मिलता तक़दीर से।
तप, व्रत, दान से प्रभु भी मिलना सम्भव,
बिना भाग्य सन्त मिलना ना सम्भव।
कहे नामा साध-संगत है उत्तम
बिना सन्त के न छूटे भव-बन्धन।

रविरश्मि धरोनि स्वर्गीं जाऊं येईल
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 832

अच्छे माता-पिता, अच्छे मित्र-सम्बन्धी, अच्छी पत्नी आदि का मिलना आसान है परन्तु पूर्ण साधु की संगति प्राप्त होने के लिये श्रेष्ठ भाग्य आवश्यक है। यदि कोई कहे कि जप-तप, व्रत, दान आदि की सहायता से प्रभु से मिलाप किया जा सकता है तो इस असम्भव बात को माना जा सकता है परन्तु बिना श्रेष्ठ भाग्य के साधु की संगति प्राप्त होना सर्वथा असम्भव है। नामदेव जी कहते हैं:

ज्यों नदी सागर से मिल, बनती सागर,
त्यों सन्त मिलन से जीव हो जाता नारायण।
कह नामा, हे प्रभु! दे सन्तों का साथ मुझे,
सिवा इसके कुछ और न माँगूँ तुमसे॥

परिसाचेनि संगें लोह होय सुवर्ण
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 863

जिस प्रकार नदी सागर में मिलकर सागर ही बन जाती है, उसी तरह सन्त की संगति द्वारा आत्मा परमात्मा में समाकर उसी का रूप बन जाती है। नामदेव जी प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! मुझे सन्तों की संगति दे, मैं इसके सिवा तुमसे और कुछ नहीं माँगता।

नामदेव जी कहते हैं:

ज्यों पारस परस से लोह बन जाता स्वर्ण,[177]
त्यों संत-संगत से जीव बनता नारायण।
ज्यों भृंगी के ध्यान से कीट हो जाता भृंग,[178]
त्यों सन्त-ध्यान से जीव हो जाता नारायण।

परिसाचेनि संगें लोह होय सुवर्ण
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 863

जिस तरह पारस के संग से लोहा भी सोना बन जाता है, उसी तरह सन्तरूपी पारस के स्पर्श से जीवरूपी लोहा, सोना, यानी सन्त, बन जाता है। जिस तरह भृंगी कीड़े को अपना रूप बना लेती है, उसी तरह अपनी

आत्मा को परमात्मा में विलीन कर चुके पूर्ण सन्त जीवात्मा को परमात्मा का रूप बना देते हैं।

कलियुग में तो जीव को बिना विलम्ब किये सत्संग में जाना चाहिये। उसे जो पारमार्थिक लाभ सत्संग से होगा, दूसरे किसी साधन द्वारा नहीं होगा। परमार्थी साहित्य में सन्तों-महात्माओं की संगति अथवा सत्संग पर बहुत बल दिया गया है। सब जानते हैं कि मनुष्य पर संगति का बहुत जल्दी और गहरा प्रभाव पड़ता है। सन्तों के सत्संग में पहुँचकर प्रभु-भक्ति के सच्चे साधन और मार्ग का ज्ञान होता है तथा सन्तों की संगति में प्रभु-भक्ति के लिये वह सुन्दर तथा उपयोगी वातावरण प्राप्त होता है जिसमें मनुष्य आसानी से प्रभु-भक्ति में लग सकता है। सत्संग, मनुष्य को परमार्थ में बाधा बननेवाली वृत्तियों से बचाता है तथा परमार्थ में सहायक वृत्तियों को अपनाने में सहायता करता है।

नर से नारायण होने का सुगम साधन भी सन्तों की संगति है। आप कहते हैं:

ज्यों चन्दन-गन्ध (सुवास) से सुवासित होते अन्य वृक्ष,
त्यों सन्त-सामीप्य से मिलता नारायण।
ज्यों अग्नि से मिलकर आता न कोई वापस,
त्यों सन्त-मिलाप से जीव पा लेता नारायण।

परिसाचेनि संगें लोह होय सुवर्ण
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 863

जिस तरह चन्दन के समीप उगे हर प्रकार के वृक्षों से चन्दन की सुगन्धि आने लगती है तथा जिस तरह अग्नि का संग प्राप्त होने पर हर वस्तु अग्नि का रूप धारण कर लेती है, उसी तरह नारायण का रूप हो चुके सन्तों की संगति में पहुँचकर साधारण मनुष्य भी नारायण बन जाता है।

सन्तों की संगति की महिमा अपरम्पार है। इसका ज़िक्र करते हुए सन्त नामदेव जी कहते हैं:

पकड़ सूर्यकिरण छू ले गगन, ये है सम्भव,
मगर पाना पार साधु-संगति का ना सम्भव।

कर वैतरणी पार स्वर्ग पहुँचना सम्भव,
मगर पाना पार साधु-संगति का ना सम्भव।
सपनों का सच हो जाना सम्भव,
मगर पाना पार साधु-संगति का ना सम्भव।

रविरष्मि धरोनि स्वर्गीं जाऊं येईल
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 832

यदि कोई यह कहे कि सूर्य की किरणों को पकड़कर आकाश में पहुँच सकते हैं तो इस असम्भव बात को सम्भव माना जा सकता है। यदि कोई कहे कि कोई व्यक्ति अपने बल से वैतरणी को पार करके स्वर्ग-लोक में पहुँच गया है तो इस असम्भव बात को भी सम्भव माना जा सकता है, परन्तु यदि कोई कहे कि उसे सन्तों के सत्संग की महिमा का बोध हो गया है तो इसे सम्भव नहीं माना जा सकता, यह सर्वथा असम्भव है।

सन्त नामदेव जी अपना निजी अनुभव बयान करते हुए कहते हैं:

संत संगति के सुख का करूँ मैं कैसे वर्णन,
कर सकूँ परख उसकी, मैं हूँ अक्षम।[179]
सन्त ही श्रेष्ठ, हैं इस कलिकाल में,
वही सर्वभूत इहलोक में।[180]
पालो मत भ्रम, देख उसे देहरूप में,
कहे नामा, ज्यों धेनु गो-रस देती सबको समान,[181]
त्यों जीवों पर अविरत कृपा करता भगवान॥

संतसंगतीचें काय सांगूं सुख
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 861

मुझमें सन्तों की संगति से प्राप्त होनेवाले अपार सुख का वर्णन कर सकने का सामर्थ्य नहीं है। देह में होने के कारण उन्हें केवल मनुष्य नहीं समझना चाहिये। वास्तव में वे परमात्मा का ही रूप हैं। नामदेव जी कहते हैं कि जिस प्रकार गाय बिना किसी भेदभाव के अपना दूध सभी को एक समान देती है,

उसी प्रकार सन्तजन सब पर समान रूप से कृपा करते हैं। वे अपनी संगति में आए प्रत्येक जीव पर समान दृष्टि से प्रेम तथा दया की वर्षा करते हैं।

जागा कोई शुभ कर्म

जागा कोई शुभ कर्म, आया भक्तों की शरण॥
हुआ मैं पूर्ण मुक्त, मिटे सब भेद-भरम॥[182]
पाकर साक्षात दर्शन, जीवन यह हुआ सफल॥
मिली साध-संगत, भागे पाँच शत्रु प्रबल॥[183]
भक्तिमय नामा करता गान, हो आनन्द मगन॥

जा दिन भगतां आईला
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2137

नामदेव जी कहते हैं कि किन्हीं पिछले शुभ कर्मों की वजह से जब मैं सतगुरु की शरण में आया, तब मानो चारों प्रकार की मुक्ति हासिल कर ली। उनके दर्शन मात्र से मेरे मन के भ्रम दूर हो गए। जब शरण के ज़रिये मुझे आन्तरिक दर्शन नसीब हुए, तब इस जन्म की सार्थकता सिद्ध हुई। साधु-संगति में आने से पाँचों प्रबल शत्रुओं को मैं मारने में सफल हुआ। मेरा हृदय प्रभु-भक्ति से इतना ओत-प्रोत हो गया कि मैं सदैव प्रभु-प्रेम में आनन्दित रहता हूँ।

सतगुरु की अनिवार्यता को केन्द्र में रखते हुए नामदेव जी ने सतगुरु की संगति पर बहुत बल दिया है। आप कहते हैं:

संत सूं लेना संत सूं देना। संत संगति मिलि दुस्तर तिरना॥
संत की छाया संत की माया। संत संगति मिलि गोविंद पाया॥
असंत संगति नामा कबहूं न जाई। संत संगति मैं रह्यौ समाई॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 32

अब मेरा सतगुरु से नाता जुड़ गया है, मेरा लेना-देना भी केवल उन्हीं के साथ है। मेरे ऊपर सन्त-सतगुरु की दया है। मैं सन्त-सतगुरु की शरण

या छाया में सुरक्षित हूँ। सन्त-सतगुरु की दया से मैं भवसागर से पार हो गया हूँ और मेरा गोबिन्द से मिलाप हो गया है। इसलिये मैं सदैव सतगुरु की संगति में रहूँगा, असन्त की संगति में भूलकर भी नहीं जाऊँगा।

नामा भणै सुष सुरगै नाहीं। सो सुष संतनि माहीं रे मना॥
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2331

जन नांमा मन षरा उदास। तब सुष पावै मिलै हरिदास॥
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2208

आप कहते हैं कि जो सुख सतगुरु की संगति में है, वह सुख तो बैकुण्ठ में भी प्राप्त नहीं है। इसलिये मैं केवल प्रभु भक्तों अथवा सन्तों की संगति में ही रहना चाहता हूँ।

गुरु-ज्ञान से हुआ प्रभात

मिटी अहंकार की काली रात, गुरु-ज्ञान से हुआ प्रभात,
मिला प्रभु की प्रेम-भक्ति का सच्चा मार्ग।
बाबा अहंकार निशीं घनदाट
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2052

आप कहते हैं कि हे बाबा, गुरु के वचनों से अहंकार की अँधेरी रात नष्ट हो गई और (ज्ञान का) प्रभात हो गया। उससे मुझे परमेश्वर की सुहावनी भक्ति प्राप्त हो गई और इस तरह मुझे सच्चा मार्ग मिल गया।

प्रभु-प्राप्ति का साधन – प्रभु का नाम

नामदेव जी समझा चुके हैं कि प्रभु हरएक के अन्दर है और उसके साथ अन्तर में ही मिलाप किया जा सकता है। अन्तर में उससे मिलाप करने का साधन उसका अमर-अविनाशी नाम है। यह नाम एक है। यह नाम अनादि तथा अविनाशी है। यह नाम प्रभु में से बह रही उसकी शक्ति की धारा है

जिसके द्वारा प्रभु ने समस्त सृष्टि का सृजन किया है। यह सर्वशक्तिमान् तथा सर्वव्यापी नाम ही, आत्मा को परमात्मा से मिलानेवाला सच्चा साधन है। इसलिये इस नाम को सच्चा नाम, अविनाशी नाम, अनादि नाम, सर्वव्यापक नाम, मुक्ति-दाता नाम आदि भी कहा जाता है। इस शब्द या नाम का भेद सतगुरु द्वारा प्राप्त होता है, इसलिये इसे गुरु का नाम, गुरु का शब्द या गुरु की वाणी कहकर भी पुकारा जाता है।

आप कहते हैं:

राम नाम नरहरि श्री बनवारी। सेविये निरंतर चरन मुरारी॥
गुरु को सबद बैकुंठ निसरनी। हृदै प्राग प्रेंम रस वानी॥[184]
जा कारन त्रिभुवन फिरि आये। सो निधान घटि भीतरि पाये॥[185]
नामदेव कहै कहूं आइये न जाइये। अपने राम घर बैठे गाइये॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 29

हमें भक्ति केवल उस एक प्रभु की करनी चाहिये जिसे वनमाली, मुरारी, नरहरि आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। उस प्रभु की भक्ति केवल सच्चे शब्द या नाम द्वारा ही की जा सकती है जिसका भेद सतगुरु से प्राप्त होता है। राम का अर्थ है रमा हुआ या व्यापक। नाम सर्वव्यापक है, इसलिये आपने और दूसरे सन्तों-महात्माओं ने इसे राम-नाम कहा है। प्रभु से मिलानेवाला यह सच्चा नाम प्रभु के निज-धाम को लगी सीढ़ी के समान है। इस सीढ़ी पर चढ़कर ही प्रभु के धाम तक पहुँचा जा सकता है। यह मधुर शब्द या वाणी प्रेम-रूप तथा आनन्द-रूप है। आप कहते हैं कि जिस नाम या शब्द की खोज में लोग बाहर सारे संसार में भटक रहे हैं, वह सतगुरु की कृपा से अन्तर में ही प्राप्त हो जाता है।

पूर्ण सन्तों ने नाम के दो भेद किये हैं – वर्णात्मक तथा धुनात्मक। प्रभु के अनन्त गुणों के आधार पर रखे गए नाम वर्णात्मक या गुणवाचक नाम कहलाते हैं। वह प्रभु सृष्टि का रचयिता तथा रक्षक है, इसलिये उसे कर्ता, करतार, क़ादिर, स्वामी आदि कहा जाता है। वह दया का पुँज है, इसलिये उसे दयालु या कृपालु कहकर पुकारा जाता है। उसके दूसरे सब वर्णात्मक या गुणवाचक

नाम भी, उसके अलग-अलग गुणों का बखान करते हैं। ये सब नाम लिखे, पढ़े और बोले जा सकते हैं। इनका संसार की अलग-अलग भाषाओं, देशों तथा जातियों से सम्बन्ध है। इनका अलग-अलग समय से सम्बन्ध है। कोई नाम दो-चार सौ साल पुराना है तो कोई दो-चार हज़ार साल।

इन वर्णात्मक या गुणवाचक नामों के बजाय ध्यान को अन्तर में एकाग्र करने पर जो सूक्ष्म प्रकाश दिखाई देता है और उसमें से निकल रही जो ध्वनि सुनाई देती है, उसे धुनात्मक नाम या शब्द कहा जाता है। इसे अनहद शब्द, अनहद वाणी, दिव्य-धुनि, नाद, वाक् आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। सन्त नामदेव जी यह बात समझाना चाहते हैं कि प्रभु के वर्णात्मक या गुणवाचक नाम के सिमरन द्वारा ध्यान को अन्तर्मुख करके प्रभु के नाम के प्रकाश और ध्वनि में लीन करना चाहिये। जो साधक सतगुरु की समझाई युक्ति के अनुसार अपना ध्यान अन्तर में नाम की ध्वनि और नाम के प्रकाश के साथ जोड़ लेता है, उसकी आत्मा अन्तर में विभिन्न रूहानी मण्डलों को पार करती हुई प्रभु के धाम में पहुँच जाती है। हर देश, धर्म अथवा जाति का हर व्यक्ति, अमीर-ग़रीब, अनपढ़-विद्वान, स्त्री-पुरुष, अच्छे-बुरे आदि के भेद-भाव के बिना, अन्तर में नाम की डोरी को पकड़कर धुर-धाम पहुँच सकता है। अनादि काल से परमात्मा से मिलाप का यही सर्वव्यापी तथा परिवर्तनरहित साधन चला आ रहा है। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है, 'मारगु प्रभ का हरि कीआ संतन संगि जाता॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1122)। आप समझाते हैं कि प्रभु-प्राप्ति के साधन और मार्ग का सृजन किसी सन्त-महात्मा ने नहीं, स्वयं प्रभु ने किया है। सन्त-महात्मा केवल उस साधन और मार्ग का ज्ञान देते हैं।

नामदेव जी कहते हैं:

हरि नांव राजै हरि नांव गाजै। हरि कौ नांव लेतां कांइ नर लाजै॥
हरि मेरा मातु पिता गुरुदेवा। अपणें राम की करिहूं सेवा॥
हरि नांव मैं निज कंवला दासी। हरि नांवैं संकर अविनासी॥
हरि नांव मैं ध्रू निहचल करीया। हरि नांव मैं प्रहलाद उधरीया॥

हरि मेरे जीवन मरण के साथी। हरि जल मगन उधारयौ हाथी॥
हरि मेरे संगि सदा सुष दाता। हरि नामैं नांमदेव रंगि राता॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 54

आप समझाते हैं कि हरि का नाम समस्त सृष्टि का राजा या स्वामी है। वह नाम समस्त सृष्टि में व्यापक है। वह नाम अविनाशी प्रभु का रूप है। हरि के नाम द्वारा भक्त ध्रुव को निश्चल स्थान प्राप्त हुआ, हरि के नाम द्वारा प्रह्लाद का उद्धार हुआ तथा हरि के नाम द्वारा ही गजराज को मुक्ति प्राप्त हुई। आप कहते हैं कि हरि का नाम लोक-परलोक दोनों में मेरा सच्चा सहारा है। हरि तथा उसका सुखदायी नाम सदा मेरे संग है और मैं सदैव नाम के रंग में रँगा रहता हूँ।

नाम तेंचि रूप रूप तेंचि नाम

तेरा नाम ही तेरा रूप,
तेरा रूप ही तेरा नाम।
नाम से भिन्न न तेरा रूप,
एक हैं दोनों रूप और नाम॥
नाम रूप धरा प्रभु ने,
मैंने थापा अंदर उसको।[186]
नाम से बढ़कर मंत्र न कोई,
जो ना समझे, जानो जड़ उसको।[187]
नामा कहे, प्रेमी भक्त जानते।
नाम है जो, मानो हरि उसको॥

नाम तेंचि रूप रूप तेंचि नाम
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 680

यह बात समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये। कि प्रभु से छोटी कोई शक्ति किसी को प्रभु से नहीं मिला सकती। सन्त नामदेव जी समझाते हैं

कि नाम और प्रभु दो नहीं हैं। प्रभु नाम-रूप है और नाम प्रभु का रूप है। नाम उस निराकार का रूप है। वह निराकार अदृश्य-अगोचर प्रभु नाम-रूप होकर समस्त सृष्टि तथा हर घट में व्यापक है। उस प्रभु से मिलाप करने का एकमात्र साधन नाम है। जिसने यह सत्य नहीं समझा कि कोई तन्त्र-मन्त्र नाम का मुक़ाबला नहीं कर सकता, वह अज्ञानी और नादान है। प्रभु के सच्चे भक्त यह बात भली-भाँति जानते हैं कि नाम प्रभु का रूप है और नाम ही प्रभु से मिलाप का सच्चा साधन है।

तें हें निरंतर नाम गाय नामा

सुनो सब यह ध्यान देकर,
करके मन को पूर्ण स्थिर।
भली-भाँति करो विचार,
नाम हरि का सबसे सुन्दर॥
नाम सब क्रिया, नाम सब कर्म,
नाम में निहित है सत् धर्म।
नाम सगुण है, नाम है निर्गुण,
यही नाम है सबसे निर्मल।
नाम आचार है, नाम है विचार,
नाम है सृष्टि का संबल।[188]
नामा करे नित नाम का गान,
नाम मिटा देता सब भ्रम॥

अवघे हो ऐका अवघे श्रवणीं
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1988

नामदेव जी कहते हैं, "ऐ भले लोगो! मेरी बात कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनो। यदि तुम गम्भीरतापूर्वक विचार करोगे तो अवश्य इस निष्कर्ष पर पहुँच जाओगे कि प्रभु का नाम ही सबसे श्रेष्ठ और सुन्दर है। प्रभु का अनुपम नाम ही सच्चा कर्म है और नाम की भक्ति ही एकमात्र सच्चा धर्म है। तुम यह

सत्य दृढ़ कर लो कि नाम ही निर्गुण तथा सगुण प्रभु का रूप है। नाम प्रभु की भाँति परम पावन है। नाम की भक्ति ही सच्चा आचार तथा ज्ञान है। नाम समस्त सृष्टि का आधार है। नाम प्रकाश पुँज है जो अज्ञानता के अन्धकार को नाश कर देता है। समस्त भ्रम इसके प्रभाव से दूर हो जाते हैं। इस सत्य को समझकर मैं सदैव प्रभु के नाम का गान करता हूँ, नाम में लीन रहता हूँ।"

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सगल मतांत केवल हरि नाम॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 296

सरब धरम महि स्रेसट धरमु॥ हरि को नामु जपि निरमल करमु॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 266

आप कहते हैं कि सब धर्मों का आधार प्रभु का नाम है। नाम की आराधना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म तथा सबसे निर्मल कर्म है।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ॥
रामचरितमानस, 7:115(ख):1

बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल नाम सनेहू॥
रामचरितमानस, 1:26:1

आप कहते हैं कि सन्तमत का आधार नाम की साधना है तथा वेदों-पुराणों सहित सब धर्म-ग्रन्थों में नाम की साधना का ही उपदेश दिया गया है।

पलटू साहिब कहते हैं:

जप तप तीरथ बर्त है, जोगी जोग अचार।
पलटू नाम भजे बिना, कोउ न उतरै पार॥
पलटू साहिब की बानी, भाग 3, पृ. 68

नामदेव जी कहते हैं:

कौन कै कलंक रह्यो राम नाम लेत ही।
पतित पावन भयौ राम कहत ही॥
राम संगि नामदेव जिनहु प्रतीति पाई।
एकादशी व्रत करै काहे कौ तीरथ जाई॥
भणत नांमदेव सुमिरत सुकृत पाई।
राम कहत जन को न मुक्ति जाई॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 28

नामदेव जी पूछते हैं कि मुझे उस अधम से अधम, पापी से पापी, दुष्ट से दुष्ट, नीच से नीच व्यक्ति का नाम बताओ जो नाम से लिव लगाने से पूरी तरह निर्मल और पावन न हो गया हो? जो प्रभु और उसके नाम से प्रेम करते हैं, उन्हें न तो तीर्थों पर जाने की आवश्यकता है और न ही जप-तप, व्रत आदि की आवश्यकता है। जो व्यक्ति सच्चे मन से प्रभु के नाम में लीन हो जाता है, मुक्ति तो उसकी दासी बन जाती है।

नाम की कमाई किये बिना कोई भी भवसागर से पार नहीं हो सकता। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥

रामचरितमानस, 1:25:4; 1:26:1

नाम की महिमा इतनी अपार है कि स्वयं प्रभु राम भी इसकी पूरी महिमा नहीं कर सकते। चारों युगों और तीनों कालों में लोग नाम की साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करते रहे हैं।

तत कहन कूं रांम है

तत कहन कूं रांम है भजि लीजै सोई।
लीला तिन अगाध की गति लषै न कोई॥
कंचन मेर समान है, दीजै दुजि दाना।

कोटि गऊ नित दान दें, नहीं नांव समाना॥
जोग जिग सूं कहा सरै, तीरथ असनांना।[189]
वौ सांप्या सन भाजहीं, भजीये भगवाना॥
पूजण कूं साधू जणां, हरि के अधिकारी।
इन संगि गोविंद गाइये, वै पर उपगारी॥[190]
एकै मनिये कै दसा, हरि कौ व्रत धरीये।
नांमदेव नांव जिहाज है, भौ सागर तिरीये॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2249

नामदेव जी कहते हैं कि सार-वस्तु या तत्त्व-पदार्थ केवल प्रभु का अविनाशी नाम है, इसलिये नाम की भक्ति में लग जाना चाहिये। प्रभु के समान प्रभु का नाम अथाह सागर है। यह नाम ही प्रभु से मिलाप का सच्चा साधन है। दूसरा कोई साधन नाम-भक्ति का मुक़ाबला नहीं कर सकता। चाहे कोई सोने का पर्वत अथवा लाखों गायों का दान क्यों न कर दे, ये दान नाम के तुल्य नहीं हैं। आप कहते हैं कि हे दुनिया के लोगो! योग, यज्ञ, तीर्थ-स्नान आदि बहिर्मुखी साधनों से ध्यान हटाकर परमपिता परमेश्वर के नाम की आराधना में लग जाओ। सन्त-महात्मा प्रभु के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं, उनकी संगति में प्रभु-प्राप्ति के लिये नामरूपी सच्चे साधन का ज्ञान होता है। वे सच्चे परोपकारी होते हैं। वे हमें नाम-भक्ति में लगाते हैं, क्योंकि नाम-भक्ति ही सच्ची प्रभु-भक्ति है। प्रभु के सच्चे भक्त राम-नाम के सहज साधन द्वारा भवसागर से पार चले जाते हैं तथा सदा के लिये आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

जम आय कहा करिहै बौरे

जन नांमदेव पायो नांव हरी।
जम आय कहा करिहै बौरे। अब मोरी छूटि परी॥
भाव भगति नाना बिधि कीन्ही। फल का कौन करी।
केवल ब्रह्म निकटि ल्यौ लागी। मुक्ति कहा बपुरी॥

नांव लेत सनकादिक तारे। पार न पायो तास हरी।[191]
नांमदेव कहै सुनौ रे संतौ। अब मोहिं समझि परी॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2115

सन्त नामदेव जी बहुत सुन्दर ढंग से अपनी मनोदशा का वर्णन करते हुए **कहते हैं** कि मेरी लिव अन्तर में प्रभु के नाम से लग गई है। मैं आवागमन के बन्धन से मुक्त हो गया हूँ, इसलिये अब यम और यमदूत मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। आप कहते हैं कि मैंने श्रद्धा, प्रेम और निष्ठा के साथ नाम-भक्ति की है। प्रभु की प्रीति तथा प्राप्ति के सिवाय मेरे हृदय में किसी दूसरे फल की इच्छा नहीं है। मेरे लिये मुक्ति की चाह भी निरर्थक है। सनक, सनन्दन आदि अनेक भक्त नाम-भक्ति द्वारा मुक्त हो गए। हे प्रभु भक्तो! नाम से लिव जोड़कर मुझे इस रहस्य का ज्ञान हुआ है कि नाम प्रभु की तरह ही अकथनीय है।

निरबाण पदु इकु हरि को नामु

रे जिहबा करउ सत खंड॥ जामि न उचरसि स्री गोबिंद॥[192]
रंगी ले जिहबा हरि कै नाइ॥ सुरंग रंगीले हरि हरि धिआइ॥[193]
मिथिआ जिहबा अवरें काम॥ निरबाण पदु इकु हरि को नामु॥[194]
असंख कोटि अन पूजा करी॥ एक न पूजसि नामै हरी॥[195]
प्रणवै नामदेउ इहु करणा॥ अनंत रूप तेरे नाराइणा॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1163

नामदेव जी समझा रहे हैं कि अन्य हर प्रकार की पूजा और साधना छोड़कर परमेश्वर के नाम का सिमरन करना चाहिये। आप कहते हैं कि यदि यह जिह्वा प्रभु के नाम का सिमरन नहीं करती तो इसे टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहिये। इस जिह्वा को उस रंग-रंगीले प्रभु के नाम से रँग लेना चाहिये। क्योंकि हरि के नाम के सिमरन को छोड़कर जिह्वा और जो कुछ भी करती है, व्यर्थ है। निर्वाण-पद की प्राप्ति केवल नाम के सिमरन से ही हो सकती

है। कोई भी दूसरी पूजा हरि-नाम के सिमरन की बराबरी नहीं कर सकती। आप कहते है कि हे प्रभु! तू अनन्त है, तेरे रूप भी अनन्त हैं। मेरी एक ही अभिलाषा है कि मैं सदैव तेरे नाम के सिमरन में मग्न रहूँ।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

पुंन दान जप तप जेते सभ ऊपरि नामु॥
हरि हरि रसना जो जपै तिसु पूरन कामु॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 401

नहीं नहीं रे हरिनाम समान

सुमर सुमर हरि स्यूं चित लाई। सुमर सुमर गोबिंद गुण गाई।
सब बसुधा दहना दे आवै। कोट कोट यज्ञ करैरू करावै।
सकल तीरथ करै स्नान। नहीं नहीं रे हरिनाम समान॥
अनेक धरम मन तैं उपजावै। अगली पिछली बात बतावै।
कंठ पाठ मुख बेद पुरान। नहीं नहीं रे हरिनाम समान॥
काया पलट बहुत दिन जीवै। यूं ही रहे कुछ खाइ न पीवै।[196]
गगन मंडलम में जोगे ध्यान। नहीं नहीं रे हरिनाम समान॥
पंचागिन तप जो करे। सिध समाधी टारी नहीं टरै।[197]
दसवे द्वारे काढै प्रान। नहीं नहीं रे हरिनाम समान॥
काशी लेगें करवत मरै। बहूरयूं हिंवालै गरै।[198]
तुला तोली जै दीजै दान। नहीं नहीं रे हरिनाम समान॥
जापर सतगुरु क्रिपा करि। प्रेम भगति ले हृदय धरि।
ई कलि में सोई परमान। नामदेव भजै श्रीभगवान॥

हम परमात्मा की भक्ति क्यों करते हैं? परमात्मा से मिलाप करने के लिये। भक्ति के जिन साधनों द्वारा परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता, उनका क्या लाभ है? हम जप-तप, पूजा-पाठ, तीर्थ-व्रत, पुण्य-दान आदि जो भी साधन अपनाते हैं, इनके फलस्वरूप इस लोक के सुख प्राप्त हो सकते हैं

और स्वर्ग-लोक की प्राप्ति भी हो सकती है, परन्तु परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता। सन्त नामदेव जी परमात्मा के नाम की भक्ति को दूसरे सब साधनों से श्रेष्ठ बताते हुए कहते हैं कि यदि कोई करोड़ों यज्ञ कर ले और सारी धरती की आहुति डाल दे तो भी यह नाम-भक्ति के तुल्य नहीं है। यदि कोई समस्त तीर्थों पर स्नान कर ले तो भी इससे मन की मलिनता दूर नहीं होती। मन को निर्मल करने के लिये एकमात्र साधन नाम-भक्ति है।

चाहे कोई अगणित धर्म-ग्रन्थों का ज्ञाता हो जाए, चाहे उसे भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान हो जाए, चाहे उसे वेद, पुराण आदि ज़बानी याद हो जाएँ, तो भी ये सब हरिनाम के सिमरन का मुक़ाबला नहीं कर सकते।

योगी कायाकल्प द्वारा अपनी आयु बढ़ा लेते हैं, बिना कुछ खाए-पिये महीनों रह लेते हैं और अपने ध्यान को गगन-मण्डल में स्थिर कर लेते हैं। नामदेव जी कहते हैं कि फिर भी ये सब हरिनाम के सिमरन का मुक़ाबला नहीं कर सकते। अपने चारों ओर धूनी रमाकर कड़कती दोपहरी में तप करना, सिद्धि-प्राप्ति के लिये लगाई गई गहरी समाधि और प्राणों को आँखों से ऊपर खींचकर आज्ञा-चक्र या चिदाकाश तक ले जाना आदि हठकर्म भी हरिनाम के सिमरन का मुक़ाबला नहीं कर सकते।

अगर कोई काशी में जाकर करवत करवा ले अर्थात् अपने आपको आरे से चिरवा ले, हिमालय की बर्फ़ीली चोटियों में शरीर को गला ले और अपने शरीर के भार के बराबर सोना भी दान कर दे, तो भी ये सब कर्म हरिनाम के सिमरन का मुक़ाबला नहीं कर सकते। नामदेव जी कहते हैं कि जिस पर सतगुरु की कृपा हो जाए और हृदय में प्रेम-भक्ति पैदा हो जाए, वही हरिनाम का सिमरन कर सकता है। आप कहते हैं कि कलियुग में मुक्ति हासिल करने और प्रभु से मिलाप प्राप्त करने का यही एकमात्र साधन है।

गुरु नानक साहिब अपने शब्द 'राम नामि मनु बेधिआ' (आदि ग्रन्थ, पृ. 62) में विस्तार पूर्वक समझाते हैं कि जप, तप, पुण्य, दान, हठ कर्म आदि कोई भी नाम की कमाई का मुक़ाबला नहीं कर सकता है – 'हरि नामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ॥' आप कहते हैं कि मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ कि नाम-भक्ति के सिवाय किसी भी अन्य साधन

के द्वारा मन को वश में नहीं किया जा सकता। आप शब्द के अन्त में कहते हैं, 'नानक नामु न वीसरै छूटै सबदु कमाइ॥' आप उपदेश देते हैं कि शब्द या नाम को कभी नहीं बिसारना चाहिये, क्योंकि जब भी देह के बन्धनों से छुटकारा होगा तो नाम की कमाई से ही होगा।

रांमनाम समि तुलै न कोइ

सुणि भई महिमा नाम तणीं। मारहा सतगुर पासै जौ मैं सुणीं॥
कोटि कोटि बार जो पढिये बेद। सकल सास्त्र कौ लीजै भेद।
पुरांण अठारह कौ त जोइ। रांमनाम समि तुलै न कोइ॥
कोटि कोटि कूप षणावै बाइ। कोटि कोटि कन्यां दे प्रणाइ।[199]
कोटि कोटि बार जौ कीजै जागि। तुलै न राम सहस्र मैं भागि॥
बिस्व सगली जौ दीजै दानं। कोटि कोटि तीरथ कीजै अस्नांन।
कोटि कोटि जप तप संधियान। तऊ न आवै नांम समान॥[200]
गज गनिका गोतम बधु नारी। नृमल नांम एहौ छौ हरी।[201]
पतित अजामेल सरणै गयौ। भाव कुभाव जिनि हरि नाम लयौ॥
मुष नारद प्रहिलाद अभ्यास। सुमरयौ ध्रू सतिकरि विस्वास।[202]
तिनके हरि काटे भवफंद। ते इम चलै चलै रब चंद॥
हिरदै सति करि सुमरयौ राम। आन धरम भब तजि बेकाम।
भणत नामदेव हरि सरणां। आवा गवण भेटि मरणां॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2302

नामदेव जी नाम की महिमा करते हुए कहते हैं कि हे भाई! नाम की जैसी महिमा मैंने अपने सतगुरु से सुनी है, वही मैं आपको सुनाता हूँ। नाम की महिमा इतनी अपार है कि सभी वेदों, पुराणों, शास्त्रों को करोड़ों बार पढ़कर उनका ज्ञान अथवा भेद प्राप्त कर लिया जाए तो भी यह सब ज्ञान नाम की बड़ाई की बराबरी नहीं कर सकता। कोई करोड़ों कुएँ खुदवा दे, या करोड़ों कन्याओं का कन्यादान कर दे, करोड़ों यज्ञ करवा दे, तो भी ये सब नाम के एक कण की भी बराबरी नहीं कर सकते। कोई सारे विश्व

का सबसे बड़ा दानी होने का गौरव प्राप्त कर ले, अनेक तीर्थों में जाकर करोड़ों बार स्नान कर ले, करोड़ों जप-तप कर ले, तो भी नाम की कमाई की बराबरी नहीं कर सकता।

नामदेव जी पौराणिक कथाओं द्वारा समझाते हैं की प्रभु के नाम के सिमरन मात्र से जल में फँसे हाथी को मगरमच्छ से, गणिका (वेश्या) को वेश्या-वृत्ति के घोर पाप से और ऋषि गौतम की शिला बन चुकी पत्नी अहिल्या को शाप से मुक्ति मिल गई। इसी प्रकार सदा पाप में लिप्त रहनेवाले अजामिल का अनजाने में ही प्रभु का नाम लेने से उद्धार हो गया। हरिनाम का पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से सिमरन करने से शुकदेव, नारद मुनि, भक्त प्रह्लाद और ध्रुव को भवसागर के बन्धनों से मुक्ति मिल गई और वे सूर्य तथा चन्द्रमा से भी अधिक प्रकाशवान हो गए।

नामदेव जी उपदेश देते हैं कि अन्य सब प्रकार की साधनाओं को व्यर्थ जानकर सच्चे हृदय से प्रभु के नाम का सिमरन करना चाहिये। हरि के नाम द्वारा हरि की शरण लेने से जीव का आवागमन मिट जाता है और उसे सच्ची मुक्ति मिल जाती है।

गुरु रामदास जी अपने शब्द 'जपिओ नामु सुक जनक गुर बचनी हरि हरि सरणि परे॥' (आदि ग्रन्थ, पृ.995) में समझाते हैं कि सतयुग, त्रेता और द्वापर तीनों युगों में वेदव्यास का पुत्र शुकदेव, निर्धन सुदामा, भक्त ध्रुव, भक्त प्रह्लाद आदि सब नाम से लिव जोड़कर परमात्मा से मिलाप करने में सफल हुए। कलियुग में नामदेव, जयदेव, कबीर, त्रिलोचन, रविदास आदि अनेक सच्चे प्रभु-भक्त राम-नाम की कमाई द्वारा भवसागर से पार हो गए। वेश्या की संगति में रहनेवाले अजामिल और कंस के पिता उग्रसेन आदि भी राम-नाम से जुड़कर आवागमन के जाल से मुक्त हो गए। आपका भाव है कि परमात्मा का नाम ही परमात्मा की प्राप्ति का अनादि, सर्वव्यापक तथा परिवर्तनरहित साधन है। जिस जाति, जिस धर्म का जो भी व्यक्ति, जहाँ भी, जब भी परमात्मा के नाम से जुड़ जाता है, उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है। संसार में प्रभु-प्राप्ति का न कभी कोई दूसरा साधन हुआ है, न हो ही सकता है।

नामा म्हणे नामीं दृढ भाव धरा

राम-नाम जपता और जन्म-मरण से डरता,
मर्म ये ज्ञानी जानता, पिया नामामृत फिर कैसा मरना।[203]
नहीं होता जन्म दोबारा, प्रेम में वृत्ति हो अगर एकचित्त,[204]
कहे नामा, रख नाम में दृढ़ श्रद्धा, सिद्ध होगा तेरा आत्महित॥

रामनाम म्हणतां संसाराचें भय
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1882

सन्त नामदेव जी कहते हैं कि राम-नाम का सिमरन करना और पापों का नाश न होना, परस्पर विरोधी बातें हैं। आप कहते हैं कि जो व्यक्ति यह कहता है कि मैं राम-नाम का सिमरन भी करता हूँ और मेरे मन में भवसागर का भय भी है तो ऐसे व्यक्ति की जिह्वा को कोढ़ हो जाना चाहिये। राम-नाम का अमृत सेवन करनेवाले के लिये मृत्यु का भय कोई अर्थ नहीं रखता। उसका आवागमन का चक्र सदा के लिये समाप्त हो जाता है। आप उपदेश देते हैं कि यदि तुम्हारे मन में अपनी आत्मा के कल्याण की इच्छा है तो श्रद्धापूर्वक नाम का अभ्यास करो।

हरि नांव काटै जम की पासी

हरि नांव हीरा हरि नांव हीरा। हरि नांव लेत मिटै सब पीरा॥
हरि नांव जाती हरि नांव पांती। हरि नांव सकल जीवन मैं क्रांती॥[205]
हरि नांव सकल सुषन की रासी। हरि नांव काटै जम की पासी॥[206]
हरि नांव सकल भुवन ततसारा। हरि नांव नामदेव उतरे पारा॥[207]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 1

संसार के लोगों के लिये सबसे क़ीमती चीज़ हीरा है। हीरा चाहे कितना ही क़ीमती हो, फिर भी नश्वर पदार्थ है। नामदेव जी कहते हैं कि प्रभु का नाम वह अमोलक हीरा है जिससे मुक्ति का अविनाशी धन प्राप्त हो जाता है और आवागमन के सब दु:खों का नाश हो जाता है। जीवात्मा की वास्तविक

जाति प्रभु का नाम है और जीवन में पूर्ण क्रांति लानेवाली शक्ति भी नाम है। जब तक जीव नाम से नहीं जुड़ता, इसके मन में संसार की आशा-तृष्णा समाई रहती है। जब जीव नाम से जुड़ जाता है तो इसकी प्रवृत्ति पूरी तरह बदल जाती है। आप कहते हैं कि प्रभु का नाम सब सुखों का भण्डार है। इससे यम का फन्दा हमेशा के लिये कट जाता है और जीवात्मा जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाती है। समस्त सृष्टि का आधार प्रभु का नाम है। केवल नाम ही एकमात्र सार-तत्त्व है। संसार की हर वस्तु नश्वर है। केवल नाम ही अमर है, अविनाशी है। नामदेव जी कहते हैं कि मैं प्रभु के नाम से जुड़कर भवसागर से पार हो गया हूँ। गुरु नानक देव जी की वाणी है:

करम धरम सचु साचा नाउ॥ ता कै सद बलिहारै जाउ॥
. . . . . .
हमरी जाति पति सचु नाउ॥ करम धरम संजमु सत भाउ॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 353

आप कहते हैं कि सच्चा नाम ही सच्चा कर्म-धर्म है। आत्मा की असल जाति भी सच्चा नाम है। नाम ही सच्चा तीर्थ है तथा नाम ही सच्चे प्रेम का एकमात्र स्रोत है।

अरधै नांव उधारै हरी

जप राम नाम का मंत्र, कलियुग में उम्र बहुत है कम,
दिवस गँवाया गृह व्यवहार में, रात निद्रा के अन्धकार में।
है मंज़िल दूर, राह विकट, कैसे उतरेगा पार, कोई संग न साथ,
कहे नामदेव, करना है भवसागर पार, आराध नाम, प्रभु करेंगे उद्धार।
जपिरांम नाम मंत्रावला
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2226

सन्त नामदेव जी समझाते हैं कि कलियुग में आयु बहुत कम होती है। इस छोटी-सी आयु में भी दिन घर-गृहस्थी के कार्य-व्यवहार में गुज़र जाता है और रात निद्रारूपी अन्धकार में बीत जाती है। आप अज्ञानी जीव को

सावधान करते हैं कि मंज़िल दूर है तथा मार्ग बहुत विकट है। इस मार्ग पर जीव को अकेले चलना पड़ता है। कोई निकट सम्बन्धी भी रास्ते में साथ देनेवाला नहीं होता। आप सचेत करते हैं कि समय रहते हुए नाम-भक्ति में लग जाना चाहिये ताकि भवसागर को पार करके प्रभु से मिलाप कर लें।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

अब कलू आइओ रे॥ इकु नामु बोवहु बोवहु॥
अन रूति नाही नाही॥ मतु भरमि भूलहु भूलहु॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 1185

आप समझाते हैं कि केवल ऋतु के अनुसार बोए गए बीज से ही फ़सल प्राप्त हो सकती है। जो बे-मौसम का बीज बोता है, वह चाहे जितनी मर्ज़ी मेहनत कर ले, उसे कभी भी फ़सल प्राप्त नहीं हो सकती। इसी तरह कलियुग में केवल नाम की भक्ति ही फलीभूत होती है। इसलिये हर प्रकार के अन्य कर्मों को त्यागकर केवल नाम-भक्ति में लगना चाहिये।

गुरु रविदास जी का कथन है:

सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार॥
तीनौ जुग तीनौ दिड़े कलि केवल नाम अधार॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 346

आप कहते हैं कि सतयुग में सत्य का आचरण प्रधान था। त्रेता में यज्ञ करने पर और द्वापर में पूजा आदि पर बल दिया जाता था, परन्तु कलियुग में केवल प्रभु के नाम का ही आधार है। गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी है:

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥
रामचरितमानस, 1:21:4

आप कहते हैं कि चारों वेदों तथा चारों युगों में नाम का महत्त्व स्वीकार किया गया है, परन्तु कलियुग में तो नाम के बिना कोई दूसरा साधन प्रभु-प्राप्ति के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होता। स्वामी जी महाराज की वाणी है:

कलजुग कर्म धर्म नहिं कोई। नाम बिना उद्धार न होई॥

सारबचन संग्रह, 38:3:11

रामनांम मेरे पूंजी धनां

रामनांम मेरे पूंजी धनां। ता पूंजी मेरौ लागौ मना॥
यहु पूंजी है अगम अपार। ऐसा कोई न साहूकार॥
साह की पूंजी आवै जाइ। कबहूं आवै मूल गंवाइ॥
जारी जरै न काई षाइ। राजा डंडै न चोर लै जाइ॥[208]
अलष निरंजन दीन दयाला। नामदेव कौ धन श्रीगोपाला॥[209]

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2234

सन्त नामदेव जी कहते हैं कि मेरे लिये प्रभु का नाम ही सच्चा धन है। प्रभु का नाम ही सच्ची पूँजी है और मैं इसी को बटोरने में लगा हुआ हूँ। जिस व्यक्ति के पास नाम की अपार दौलत है, वह दुनिया का सबसे बड़ा धनी है, दूसरा कोई साहूकार उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। दुनिया की धन-दौलत वृक्ष की छाया के समान है। अज्ञानी जीव साँसों की अनमोल पूँजी को गँवाकर संसार की झूठी दौलत एकत्रित करने में लगा रहता है। यह पूँजी अन्त समय साथ नहीं जाती। नाम की सच्ची पूँजी को न अग्नि जला सकती है, न इसे घुन या ज़ंग लग सकता है, न इसे चोर चुरा सकता है, न राजा दण्ड या कर लगाकर यह पूँजी छीन सकता है। यह अलौकिक पूँजी मन-माया तथा इन्द्रियों की पहुँच से परे स्थित, उस दीनदयाल प्रभु की कृपा से प्राप्त होती है।

नाम की साधना

माझा आहे बोध वेगळाचि

न मैं चाहता मुक्ति, न चाहता जगत के भोग,
कुछ और ही है साध्य मेरा।[210]

जान लिया मैंने प्रभु-प्रेम सुख, पा लिया मैंने ख़ुद को,
ना मैं ध्यान चाहता, ना चाहता ब्रह्मज्ञान,
कुछ अलग ही है मेरी साधना।
न करूँगा तेरी स्तुति, न बखानूँगा तेरी कीर्ति,
मैंने तो कुछ और ही राह है पकड़ी।
न दूँगा काया को कष्ट, न करूँगा इन्द्रिय दमन,
मैंने तो पाया है कुछ और ही ज्ञान।
निर्विकल्प होकर करूँगा मैं हरि-भजन,[211]
कहे नामा! तब तू ढूँढ़ेगा मुझे भगवान्।

न लगे तुझी भुक्ति न लगे तुझी मुक्ति
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1472

प्रभु के नाम के रंग में रँगे हुए सन्त नामदेव जी कहते हैं कि मेरे मन में न इस लोक के सुखों की तृष्णा है और न ही मुक्ति की अभिलाषा। मुझे मेरी असल वस्तु मिल गई है। मैंने अपने आपको पहचान लिया है और मुझे प्रभु-प्रेम का परम-सुख प्राप्त हो गया है।

सन्तों-महात्माओं के अनुसार प्रभु की पहचान करने के लिये अपनी पहचान करना आवश्यक है। अपनी पहचान का अर्थ है कि जीवात्मा शरीर या मन नहीं है, यह वास्तव में निर्मल आत्मा है, जो परमात्मा की अंश है। नामदेव जी समझा रहे हैं कि मैं शरीर तथा मन की हद को पार करके अपने आत्मिक स्वरूप में हूँ तथा मेरी आत्मा प्रभु में समाकर आनन्द-रूप हो गई है। आप कहते हैं कि मैं इस तरह प्रभु के गुणगान में मग्न हो गया हूँ कि न मुझे ब्रह्म-ज्ञान की आवश्यकता रही है, न ब्रह्म-ध्यान की। अब मुझे शरीर को और कष्ट देने की भी ज़रूरत नहीं है। प्रभु के नाम के रंग में रँगकर मुझे निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त हो गई है। इस तरह मैं संसार की इच्छाओं से मुक्त हो गया हूँ। अब मुझे प्रभु को ढूँढ़ने की भी आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं मुझे ढूँढ़ता हुआ मेरे पास चला आएगा।

कबीर साहिब ने भी ऐसा ही भाव प्रकट किया है:

कबीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर।
पाछै लागो हरि फिरहि कहत कबीर कबीर॥
कबीर समग्र, भाग 1, पृ. 518

दोनों सन्त यह बात समझाने का यत्न कर रहे हैं कि आत्मा की प्रभु से तब तक दूरी है, जब तक यह मन-इन्द्रियों के पंजे से आज़ाद नहीं होती।

सन्त नामदेव जी उपरोक्त शब्द में बहुत सुन्दर ढंग से समझा रहे हैं कि परमात्मा के साक्षात्कार के लिये आत्म-साक्षात्कार आवश्यक है। आत्म-साक्षात्कार लिव को अन्तर में प्रभु के नाम की ध्वनि से जोड़कर निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त करने से होता है। यह अवस्था प्राप्त करने के लिये ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग, हठ-मार्ग या त्याग-मार्ग की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये केवल भक्ति-मार्ग की अवश्यकता है। जो साधक शब्द की अन्तर्मुख साधना द्वारा निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है, सहज रूप से परमात्मा से मिलाप करने में सफल हो जाता है।

परमात्मा की प्राप्ति का साधन उसका नाम है। नाम अन्तर में है। नाम से लिव जोड़ने के लिये ध्यान को अन्तर्मुख करना आवश्यक है। हमारी चेतना का केन्द्र आँखों के ऊपर और मध्य है। हमारा ध्यान उस केन्द्र से उतरकर नौ द्वारों – दो आँखें, दो कान, दो नासिका-छिद्र, मुँह तथा मल-मूत्र के दो स्थान – द्वारा सारे शरीर और संसार में फैला हुआ है। यही कारण है कि हमें अन्तर में नाम का प्रकाश दिखाई नहीं देता और नाम की ध्वनि सुनाई नहीं देती। जब तक ध्यान अन्तर में नाम के प्रकाश तथा नाम की ध्वनि से नहीं जुड़ता, आन्तरिक रूहानी सफ़र शुरू नहीं हो सकता।

आन्तरिक रूहानी सफ़र का सबसे कठिन भाग ध्यान को बाहर से अन्दर तथा आँखों से ऊपर एकाग्र तथा स्थिर करना है। जब ध्यान अन्दर पूरी तरह एकाग्र और स्थिर हो जाता है तो यह सहज रूप से शब्द की ध्वनि और उसके प्रकाश से जुड़ जाता है तथा आत्मा की अन्तर्मुख चढ़ाई शुरू हो जाती है।

पूर्ण गुरु ध्यान को अन्तर में एकाग्र करने का अभ्यास सिखाते हैं। इस अभ्यास के तीन अंग हैं – सिमरन, ध्यान और शब्द-धुन। सिमरन का अर्थ है

स्मरण करना, याद करना या सोचना। हमारा मन पल-पल संसार की किसी न किसी वस्तु, व्यक्ति या कार्य के बारे में सोचता रहता है। जिस चीज़ के बारे में यह सोचता है, उसका स्वरूप भी मन के सामने आ जाता है। सोचना सिमरन करना है और स्वरूप का मन के सामने आना, ध्यान करना है।

सिमरन और ध्यान करना मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मन सिमरन और ध्यान किये बिना नहीं रह सकता। यह संसार के नश्वर शक्लों-पदार्थों का सिमरन तथा ध्यान करता हुआ, इनके मोह में फँस गया है। इस अटल सत्य को हुज़ूर महाराज जी[212] अक्सर अपने सत्संगों में फ़रमाया करते थे। सन्त-महात्मा समझाते हैं कि मन की सिमरन तथा ध्यान करने की क़ुदरती आदत से लाभ उठाकर इसे संसार के नश्वर शक्लों-पदार्थों के सिमरन के बजाय परमात्मा के नाम के सिमरन तथा सतगुरु के स्वरूप के ध्यान में लगाना चाहिये। सतगुरु अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर चुके होते हैं। जब हम उनकी समझाई हुई युक्ति के अनुसार ध्यान को आँखों के ऊपर और मध्य रखकर, अविनाशी प्रभु के नाम का सिमरन और सतगुरु के स्वरूप का ध्यान करते हैं तो आहिस्ता-आहिस्ता मन संसार तथा शरीर के आँखों के निचले भाग से सिमटकर आँखों के ऊपर और मध्य[213] एकाग्र होना शुरू हो जाता है। जब नाम के सिमरन तथा सतगुरु के स्वरूप के ध्यान द्वारा मन तथा आत्मा, पूरी तरह आँखों के ऊपर और मध्य एकाग्र तथा स्थिर हो जाते हैं तो शरीर का आँखों से नीचे का भाग पूरी तरह सुन्न हो जाता है तथा मन और आत्मा अन्तर में शब्द की ध्वनि तथा शब्द के प्रकाश से जुड़ जाते हैं और आन्तरिक मण्डलों की सुगम तथा आनन्दमय यात्रा आरम्भ हो जाती है।

इस अभ्यास में सबसे अधिक महत्त्व प्रभु के नाम के सिमरन का है। गुरु-मन्त्र की दीक्षा देते समय सतगुरु सिमरन की विधि सिखाते हैं। यह सिमरन रूहानी अभ्यास की नींव है। मन को अनन्तकाल से संसार के शक्लों-पदार्थों के सिमरन की आदत पड़ चुकी है। इसकी इस आदत को छुड़ाकर इसे प्रभु के नाम के सिमरन की आदत डालना बहुत कठिन कार्य है। इसलिये आवश्यक है कि केवल अभ्यास के लिये निश्चित किये गए समय ही नहीं, अधिक ध्यान की माँग न करनेवाले सब कार्य करते समय

भी, मन को प्रभु के नाम के सिमरन में लगाए रखें। शुरू में ऐसा करना बहुत कठिन प्रतीत होता है, परन्तु 'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।' निरन्तर अभ्यास द्वारा सिमरन की आदत पक जाती है, सिमरन से रस आने लगता है और मन अपने आप सिमरन की ओर जाना चाहता है। सिमरन द्वारा ध्यान भी स्थिर हो जाता है, अन्तर में शब्द की ध्वनि भी सुनाई देने लग जाती है और आन्तरिक मण्डलों की सुगम तथा आनन्दमय यात्रा भी आरम्भ हो जाती है।

मनु राम नामा बेधीअले

आनीले कागदु काटीले गूडी आकास मधे भरमीअले ॥[214]
पंच जना सिउ बात बतऊआ चीतु सु डोरी राखीअले ॥
मनु राम नामा बेधीअले ॥ जैसे कनिक कला चितु मांडीअले ॥[215]
आनीले कुंभु भराईले ऊदक राज कुआरि पुरंदरीए ॥[216]
हसत बिनोद बीचार करती है चीतु सु गागरि राखीअले ॥
मंदरु एकु दुआर दस जा के गऊ चरावन छाडीअले ॥[217]
पांच कोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ॥
कहत नामदेउ सुनहु तिलोचन बालकु पालन पउढीअले ॥[218]
अंतरि बाहरि काज बिरूधी चीतु सु बारिक राखीअले ॥[219]

आदि ग्रन्थ, पृ. 972

यह पद भक्त त्रिलोचन के एक प्रश्न के उत्तर में रचा गया है। भक्त त्रिलोचन ने नामदेव जी से पूछा कि आप प्रभु की भक्ति एवं दर्ज़ी और छीपे का काम, दोनों एक साथ कैसे चलाते हैं तथा स्वार्थ और परमार्थ में सन्तुलन कैसे रख पाते हैं? नामदेव ने बहुत-सी उपमाएँ देकर समझाया है कि बेशक मैं अपनी आजीविका के लिये दुनिया का काम-काज करता रहता हूँ, पर मेरा ध्यान हमेशा परमेश्वर की ही तरफ़ रहता है।

आप समझाते हैं कि जिस तरह पतंग उड़ा रहा व्यक्ति पास खड़े मित्रों से भी बातचीत करता रहता है, पर उसका ध्यान पतंग की डोरी पर होता

है, उसी तरह पाँच इन्द्रियों द्वारा सांसारिक कार्य करते हुए भी मेरा मन प्रभु के नाम से बिंधा रहता है। सुनार ग्राहकों से बातें भी करता रहता है, परन्तु उसका ध्यान गढ़े जा रहे आभूषण में होता है। गाँव की युवतियाँ पानी की गागर सिर पर उठाकर चलती हैं। वे आपस में बातचीत और हँसी-मज़ाक़ भी करती रहती हैं, पर उनका ध्यान निरन्तर सिर पर रखी गागर पर रहता है। गाय घर से मीलों दूर चारा चरने चली जाती है, पर उसका ध्यान घर पर रह गए बछड़े में रहता है। इसी तरह आत्मा दस इन्द्रियों वाले शरीररूपी भवन के किसी भी घाट पर कार्य क्यों न करे, ध्यान प्रभु के नाम में रहना चाहिये। जैसे माँ घर का सब काम-काज करती रहती है, पर उसका ध्यान पालने में लेटे हुए बच्चे में रहता है, इसी तरह हे त्रिलोचन! मैं दुनिया के सब कार्य करता हूँ पर मेरा ध्यान हमेशा परमेश्वर की ओर लगा रहता है।

गुरु रविदास जी का कथन है:

जिहवा भजै हरि नाम नित, हत्थ करंहि नित काम।
'रविदास' भए निहचिंत हम, मम चिंत करैंगे राम॥

रविदास दर्शन, पृ. 114

आप कहते हैं कि मेरे हाथ तो काम में लगे होते हैं, परन्तु मेरी जिह्वा सदैव परमात्मा के नाम के सिमरन में लगी रहती है। प्रभु के नाम के सिमरन द्वारा मैं पूर्णतया निश्चिन्त हो गया हूँ, प्रभु स्वयं मेरी चिन्ता करेंगे।

एक मन एक चित षेलीलै षेलारे

देवा नटणी कौ तनमन बांसा बरतां मांहि रे।[220]
अनेक राजिंद्र बैठे तिनही सूं चित नांहिरै॥
सुमति सरीर संवारै नटनी निहारै।
राम नांम नीसान बाजै इहि तत पावै धारै॥
एक मन एक चित षेलीलै षेलारे।[221]
मरकट मूठी छांडिदै ज्यूं मुक्ति भैलारे॥[222]

धरनीधर सूं ध्यान लागौ आप अंतरजामीरे।
नांमदेव नटवा ह्वै नाच्यो तौ रीझ्यौ स्वामी रे॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 71

नामदेव जी नटनी के खेल का सुन्दर उदाहरण देकर समझाते हैं कि रस्से पर चलते समय नटनी अपना ध्यान पूरी तरह रस्से पर रखती हुई कई प्रकार के करतब दिखाती है। नीचे चारों ओर लोग तमाशा देख रहे होते हैं, परन्तु नटनी अपना ध्यान किसी की ओर नहीं जाने देती। लोग नटनी का तमाशा बड़े चाव से देखते हैं पर नटनी ढोल की ताल पर पूरी तरह एकाग्रचित्त होकर अपना खेल खेलती रहती है।

नामदेव जी एक और सुन्दर उपमा देते हैं। बन्दर को पकड़ने के लिये पीतल के लोटे में लड्डू रख दिये जाते हैं। बन्दर लड्डू निकालने के लिये लोटे में हाथ डालकर लड्डू को मुट्ठी में पकड़ लेता है। लोटे का मुँह छोटा होने के कारण वह हाथ बाहर नहीं निकाल पाता। वह न लड्डू को छोड़ता है, न हाथ बाहर निकाल पाता है। आप समझाना चाहते हैं कि माया ने नहीं, जीव ने माया को पकड़ा हुआ है। यदि वह प्रभु-नाम में पूरी तरह मग्न हो जाए तो उसका ध्यान सहज रूप से मायावी जगत् तथा इसके पदार्थों के मोह से निकल आएगा।

अब न बिसारूं राम संभारुं

अब न बिसारूं राम संभारुं। जौ रे बिसारूं तौ सब हारूं॥[223]
तन मन हरि परि छिन छिन वारूं। घड़ी महूरति पल नहीं टारूं॥
सुमिरन स्वासा भरि भरि पीऊं। एक राम गुड़ खाइ रे जीऊं॥
आरौ मांडि राम रटि लैहूं। जौ रे बिसारौं तौ रोइ दैहूं॥[224]
नामदेव कहै और आस न करिहूं। राम नाम धन लाग्यौ मरि हूं॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 37

मैं प्रभु को कभी नहीं भुलाऊँगा। मैंने यह बात भली-भाँति समझ ली है कि प्रभु के नाम के सिमरन के बिना मनुष्य-जन्म व्यर्थ है। अब तो मैं

अपना तन, मन उस परमात्मा पर न्योछावर करके हर घड़ी, हर पल उसी के ध्यान में लगा रहूँगा। मैं स्वास-स्वास उसका सिमरन करूँगा। अगर नाम का सिमरन नहीं करूँ तो रोने के सिवाय क्या हाथ आएगा।

जीते-जी मरना

जब सिमरन तथा ध्यान के अभ्यास द्वारा मन और आत्मा आँखों के ऊपर और मध्य पूरी तरह एकाग्र तथा स्थिर हो जाते हैं तो शरीर में आँखों से नीचे का भाग पूरी तरह सुन्न हो जाता है। इसे पूर्ण एकाग्रता, समाधि या अखण्ड ध्यान की अवस्था कहा जाता है। इस अभ्यास में आँखों से नीचे का भाग मुर्दे के समान हो जाता है, किन्तु आँखों से ऊपर आत्मा पूरी तरह चैतन्य होती है। जब तक ध्यान आँखों से ऊपर एकाग्र रहता है, शरीर के नीचे का हिस्सा मुर्दे के समान रहता है। परन्तु जब ध्यान दोबारा आँखों से निचले भाग में उतर आता है तो आँखों से नीचे का भाग दोबारा चेतन हो जाता है।

यह क्रिया मृत्यु से मिलती-जुलती है। मृत्यु के समय आत्मा शरीर को हमेशा के लिये छोड़ देती है पर इस आध्यात्मिक अभ्यास में आत्मा शरीर के नौ द्वारों – दो आँखें, दो कान, दो नासिका-छिद्र, मुँह तथा दो मल-मूत्र के स्थान – में से निकलकर आँखों के ऊपर पहुँचकर आत्मिक मण्डलों में प्रवेश कर जाती है। इस क्रिया में जीवन और मृत्यु साथ-साथ चलते हैं, इसलिये सन्त-महात्मा इसे जीवित-मरना, जीते-जी मरना या ज़िन्दा मरना आदि कहते हैं। मृत्यु हमारे वश में नहीं होती परन्तु जीते-जी मरने का अभ्यास करनेवाला साधक अपनी इच्छानुसार ध्यान को आँखों से ऊपर भी ले जा सकता है और इसे वापस आँखों से नीचे भी ले आ सकता है।

ध्यान धरो हो एकचित्त

समाधिस्थ सदा रहता सन्तोषी,[225]
रहता सदा निःशब्द,
राम सम नहीं दूजा सन्तोषी,

ध्यान धरो हो एकचित्त।[226]
उन्मनी उपासना है प्रेम से भरपूर,[227]
उसी में नज़र आता मालिक का नूर।
चराचर में नज़र आए आत्म-स्वरूप,[228]
कहे नामा, आँख की पुतली में उसी का रूप,
हो चेतन बने विश्व-स्वरूप।

समाधिस्थ सदा राहे समाधान
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2030

इस पद में नामदेव जी चेतनता के आँखों से ऊपर तथा मध्य पूरी तरह एकाग्र तथा स्थिर हो जाने का अथवा समाधि की अवस्था का वर्णन करते हैं। आप कहते हैं कि आध्यात्मिक उन्नति का सारा भेद इस अवस्था में पहुँचकर प्राप्त होता है तथा प्रभु की प्राप्ति का साधन भी यही अवस्था है।

आप कहते हैं कि परमेश्वर के ध्यान में निरन्तर मग्न रहनेवाले साधक का मन, शान्त तथा स्थिर हो जाता है। इसे ही निर्विकल्प समाधि की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में प्राप्त होनेवाली अद्‌भुत शान्ति का वर्णन कर पाना असम्भव है। यह शान्ति किसी दूसरे साधन द्वारा नहीं मिल सकती। इसलिये सिमरन और ध्यान के द्वारा मन को आँखों से ऊपर एकाग्र तथा स्थिर करने का यत्न करना चाहिये। इससे उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है, जिससे मन प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाता है और आत्मा को अपने निज-स्वरूप तथा प्रभु की अंश होने का ज्ञान प्राप्त होता है। नामदेव जी कहते हैं कि आन्तरिक आँख[229] द्वारा ही ब्रह्माण्ड के दर्शन होते हैं और उसके द्वारा ही प्रभु का स्वरूप दिखाई देता है।

जिताची मरण आलेंसें हातां

पंच-तत्त्व से बनी देह विलीन हुई पंच-तत्त्व में,[230]
तो मरा कौन? मैं तो हूँ, अब मृत्यु से परे।
पहचाना आत्म-स्वरूप गुरु शब्द से,

आती न लज्जा मुझको अब मरने से॥
गुरु खेचर कहे नामदेव से,
जीते-जी मरना, जान लिया, गुरु-ज्ञान से।।[231]

आप तेज वायू पृथिवी गगन
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1365

नामदेव जी कहते हैं कि सतगुरु की कृपा से मैंने जीते-जी मरना सीख लिया है और मैं आवागमन के चक्र से छूट गया हूँ। मैंने नाम के अभ्यास द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है, अब मुझे मौत का डर नहीं रहा। देह छूट जाने पर पाँचों तत्त्व – वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश – अपने-अपने स्रोत में मिल जाते हैं, तो मरा कौन? आपका भाव है कि आत्मा अमर है तथा जिन पाँच तत्त्वों से मनुष्य-शरीर बना है, मृत्यु के बाद वे भी अपने-अपने स्रोत में समा जाते हैं, तो फिर मृत्यु किसकी होती है? विसोबा खेचर कहते हैं, "हे नामा, तूने जीते-जी मरने का अनुभव कर लिया है, अब तेरे लिये मृत्यु का कोई अर्थ नहीं है।"

समाधि या जीवित मरने की अवस्था में आत्मा की अन्तर में देखने की शक्ति, निरत और अन्तर में सुनने की शक्ति, सुरत कार्यशील हो जाती हैं। निरत शब्द के प्रकाश में और सुरत शब्द की ध्वनि में लीन हो जाती है जिससे आत्मा की आन्तरिक रूहानी जगत् में चढ़ाई शुरू हो जाती है।

सन्तों-महात्माओं ने आँखों के ऊपर सत्यलोक तक के रूहानी जगत् को पाँच प्रमुख मण्डलों में बाँटा है। हर मण्डल की प्रकृति के अनुसार उसमें शब्द की ध्वनि अलग प्रकार से सुनाई देती है और शब्द का प्रकाश अलग रूप में दिखाई देता है। झील में से निकलते समय पानी की आवाज़ अलग होती है, झरना बनकर नीचे गिरते समय इसकी आवाज़ अलग हो जाती है। मैदानों में पहुँचकर अलग, डेल्टा में पहुँचकर अलग और समुद्र में समाकर इसकी आवाज़ अलग हो जाती है। इसी तरह शब्द एक ही है, परन्तु विभिन्न मण्डलों में इसकी ध्वनि अलग तरह से सुनाई देती है। किसी मण्डल में शब्द की आवाज़ घड़ियाल या शंख जैसी प्रतीत होती है, किसी में बादलों

की गरज जैसी तो किसी में मुरली और वीणा जैसी। बिजली के बल्ब पर लाल रंग का वरक़ चढ़ा दिया जाए तो उसमें से निकल रहा प्रकाश लाल प्रतीत होता है। प्रकाश लाल नहीं होता केवल वरक़ के कारण लाल दिखाई देता है। इसी तरह विभिन्न मण्डलों में शब्द का प्रकाश अलग-अलग दिखाई देता है। सन्त नामदेव जी ने अपनी वाणी में समाधि अथवा जीते-जी मरने की अवस्था का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और विभिन्न मण्डलों में होनेवाले शब्द की ध्वनि और शब्द के प्रकाश का भी सविस्तार उल्लेख किया है।

जीवन्मुक्त केलें नामाचे गजरीं

पाई जीते-जी मुक्ति नाम से,
हक़ पाया हरि सेवा का नाम से।[232]
हे प्रभु! माँ-पिता तुम्हीं मेरे,
लगन बख़्शी प्रेम की तुम्हींने।
उऋण कैसे होऊँ इस आभार से,[233]
मुक्त किया जन्म-मरण के बन्धन से।
बना सहभागी मैं मुक्ति-पर्व का,
कहें नामदेव, भेद न जानते वेद-पुराण, नाम का।

जीवन्मुक्त केलें नामाचे गजरीं
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1502

ध्यान के आँखों से ऊपर और मध्य पूरी तरह एकाग्र तथा स्थिर हो जाने पर आत्मा के अन्तर में शब्द की कई प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। यहाँ नामदेव जी शब्द के बादलों जैसे गर्जन का उल्लेख करते हैं। आप कहते हैं कि नाम के गर्जन ने मुझे जीते-जी मुक्ति दिला दी और परमेश्वर की सेवा करने का अधिकारी बना दिया। हे उदार केशव! (परमात्मा) तू ही मेरी माँ है और तू ही मेरा बाप है। तूने मुझे इस भवसागर से निकाल लिया है। मैं तेरे इस ऋण को कभी नहीं उतार सकता। तूने मुझे अपने प्रेम की अमूल्य

दात बख़्शी है जिससे मैं मुक्ति पाने का अधिकारी बन गया हूँ। नामदेव जी कहते हैं कि यह भेद वेदों और पुराणों की पहुँच से भी बाहर है।

मृत्यु के समय जब आत्मा पाँवों के तलवों से ऊपर की ओर सिमटती है तो शरीर को अकथनीय पीड़ा सहन करनी पड़ती है। सहजोबाई फ़रमाती हैं:

सहजो मिरतू के समय, पीड़ा होय अपार।
बीछू एक हजार ज्यौं, डंक लगै इकसार॥

सहजोबाई की बानी, पृ. 29

जब साधक अपनी सुरत को सिमरन और ध्यान द्वारा आँखों के ऊपर और मध्य एकाग्र करता है तो जैसे-जैसे ध्यान पाँवों के तलवों से ऊपर की ओर सिमटता है, उसे शरीर में पीड़ा महसूस होती है। परन्तु जब अभ्यास पक्का हो जाता है तो ध्यान सहज रूप से आँखों के ऊपर और मध्य स्थिर हो जाता है। यह अवस्था प्राप्त हो जाने पर न केवल मृत्यु का भय सदा के लिये समाप्त हो जाता है, अपितु अन्तर में शब्द की ध्वनि और शब्द के प्रकाश में से अकथनीय आनन्द की प्राप्ति होती है।

नामदेव जी कहते हैं:

जउ गुरदेउ त बैकुंठ तरै॥ जउ गुरदेउ त जीवत मरै॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1166

जब गुरु के उपदेशानुसार जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त हो जाती है तो जीव भवसागर से पार हो जाता है और वह प्रभु के निज-धाम में पहुँच जाता है।

अपनी वाणी में कबीर साहिब ऐसा ही भाव प्रकट करते हुए कहते हैं:

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मनि आनंदु॥
मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानंदु॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1365

शुरू में जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त करने में समय लगता है परन्तु जब अभ्यास पक्का हो जाता है तो साधक जब चाहे ध्यान को शरीर के

निचले हिस्से से निकालकर शरीर की ओर से और संसार से मर सकता है और जब चाहे ध्यान को नौ द्वारों में उतारकर शरीर और संसार की ओर से ज़िन्दा हो सकता है।

गुरु नानक देव जी कहते हैं:

मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि॥
अनहद सबदि सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 21

जो साधक किसी पूरे गुरु के उपदेशानुसार जीते-जी मरने का अभ्यास करता है उसे अपने अन्तर में अनहद शब्द की मधुर ध्वनि सुनाई देती है और वह जीते-जी परमगति को प्राप्त कर लेता है।

दीपक पषै तेल बिन बाती

झिलिमिलि झिलिमिलि झिलिमिलि तारा।
सो झिलिमिलि तिहुं लोक पियारा॥
रहै अकास पडै नहीं दिष्टी। पकड्या जाइ न आवै मुष्टी॥[234]
दीपक पषै तेल बिन बाती। जोति सरूप बलै दिन राती॥[235]
भणत नांमदेव अमर पद परस्या। पिंडभया मुकति तया तत दरस्या॥[236]
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2213

आन्तरिक साधना से प्राप्त अनुभव का वर्णन करते हुए नामदेव जी कहते हैं कि अन्तर में तारे का जो झिलमिल-झिलमिल दिव्य प्रकाश हो रहा है, वह इतना मनमोहक और आकर्षक है कि तीनों लोकों की किसी वस्तु की इससे तुलना नहीं की जा सकती। यह मनोरम दृश्य केवल आन्तरिक आकाश में आत्मा द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। इसे बाहरी आँखें नहीं देख सकतीं। यह प्रकाश बिना किसी दीये, तेल और बाती के दिन-रात निरन्तर झर रहा है। आप कहते हैं कि इस शब्द-रूप दिव्य प्रकाश के द्वारा मुझे तत्त्व-ज्ञान तथा अमर-पद प्राप्त हो गया है।

जहं बाजै अनहद तूरा रे

झिलिमिलि झिलिमिलि नूरा रे। जहं बाजै अनहद तूरा रे॥
ढोल दमामां बाजै रे। तहां सबद अनाहद माजै रे॥
फिर रायां जोति प्रकासी रे। जहां आपै आप अविनासी रे॥
जहां सूरिज कोटि प्रकासा रे। तहां निहचल नामदेव दासा रे॥
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2276

आप कहते हैं कि जब मैंने ध्यान को अन्दर एकाग्र और स्थिर किया तब वहाँ शब्द का झिलमिल करता प्रकाश दिखाई देने लगा तथा अनहद शब्द का तूर बजता सुनाई देने लगा। अनहद शब्द की ढोल और मृदंग जैसी मधुर ध्वनि से अपार आनन्द प्राप्त हुआ। इस ध्वनि और प्रकाश में लीन होकर आत्मा उस परमेश्वर के दरबार में पहुँच गई जहाँ करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है। इस तरह शब्द के अभ्यास द्वारा आत्मा को प्रभु के निश्चल धाम में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

अनोपमि बाणी

जागौ न बैरागी जोगी। यही अनोपमि बाणी जी।
झिलिमिलि झिलिमिलि होइ निरंतर, सो गति बिरलौ जाणी जी॥
राग बैराग म्हारै मंडल चूवै, कारण क्या भीजै जी।[237]
निस अधियारा भौ सब भागा, सुनि मैं सूता जागूं जी॥
नारि न सारि तांत्य नहीं तूंबा, पत्र पवन न पाणी जी।
एकै आसन दोइ जन बैठा, रावल नैरौ हिताणी जी॥[238]
मनकरि हीरा तन करि कंथा, जम मनी परि जागूं जी।
भणत नामदेव अनहद जाचूं, बैकूंठा भिष्या मांगू जी॥
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2285

नामदेव जी कहते हैं कि हमारे अन्तर में शब्द अथवा नादरूपी अनुपम वाणी का दिव्य प्रकाश झिलमिल कर रहा है। जोगियों और बैरागियों को इस

अनुपम वाणी का ज्ञान नहीं है। आन्तरिक रूहानी मण्डलों में बरस रही दिव्य वाणी के इस अमृत से मन और आत्मा आनन्द-मग्न हो जाते हैं। अनहद वाणी की ध्वनि को सुनने से अनन्त काल से सोई हुई आत्मा जाग उठती है। इससे अज्ञानता का अन्धकार तथा जन्म-मरण का भय सदा के लिये दूर हो जाता है। अनहद वाणी की यह ध्वनि किसी तार या बाजे से नहीं उत्पन्न हो रही। यह न जोगियों द्वारा प्राणायाम से उत्पन्न होनेवाली पवन की हिलोर है, न ही यह पानी की धार से उत्पन्न होनेवाली आवाज़ है। आप कहते हैं कि अन्तर में मेरा मन और तन हीरे तथा सोने की कण्ठी के समान प्रकाशमय हो गया है। अपनी लिव अनहद वाणी से जोड़कर मैं प्रभु से बैकुण्ठ-धाम की भिक्षा माँग रहा हूँ।

ध्यान को आँखों से ऊपर और मध्य एकाग्र करने पर अन्तर में सुनाई देनेवाली जिस अनहद शब्द की ध्वनि को पूर्ण सन्तों ने कीर्तन, हरि-कीर्तन, अखण्ड-कीर्तन आदि नामों से भी पुकारा है, उसे ही नामदेव जी 'ऐकतां कीर्तन' कहते हैं।

ऐकतां कीर्तन होती जीवन्मुक्त

सुन नाद, हो जीवन-मुक्त,[239]
नाम में दिखता अनन्त।
मर्त्यलोक में इच्छित मनुष्य-जन्म,[240]
इससे बढ़कर न कोई पुण्य।
कलि में पाकर श्रेष्ठ भगवत्-भक्ति सार,[241]
ब्रहमादिक योगियों का हुआ उद्धार।
हृदय में मेरे अंकित हैं हरि-चरण,
नामा कहे, सताता न मुझको अब कोई चिन्ता, डर॥

ऐकतां कीर्तन होती जीवन्मुक्त
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 675

नामदेव जी कहते हैं कि उस प्रभु के शब्द के अद्भुत कीर्तन को सुनने से साधक को जीवन्मुक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है। इस मृत्यु-लोक यानी

संसार में धन्य है वह व्यक्ति जिसके हृदय में उस कीर्तन को सुनने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो जाती है। कलियुग में शब्दरूपी हरि-कीर्तन ही अमर-जीवन प्रदान करनेवाला सच्चा अमृत है। ब्रह्मा आदि योगियों का उद्धार भी इसी अमृत द्वारा हुआ। आप कहते हैं कि शब्द के कीर्तन द्वारा मैं प्रभु के चरणों में पहुँचकर हर तरह की चिन्ता तथा भय से पूरी तरह मुक्त हो गया हूँ।

बिनै बजाया बाजा बाजै

जाणौं नै जाणौं बेद पुरानां। छोडौं पाना पोथी।
बिन मेघा मुकताहल बरखै। स्रबै निरंतर मोती॥[242]
बिनै बजाया बाजा बाजै। नादै अंबर गाजै।
बिन भैरै होत झणकारा। न दीसै बजांवण हारा॥
बिन पावक जोति ही दीसै। सुनि मैं सूता जागै।[243]
अंधियारानौ भौ भगोरे भाई। जे जोइये ते आगै॥[244]
कर जोड़िनै नामौ बिनवै। मैं मूरिष मति थोड़ी।
ये पदनौं हेतारथ जांणै। तेन्है पगि लागूं करजोड़ी॥[245]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 112

नामदेव जी कहते हैं कि प्रभु-प्राप्ति के लिये वेदों, पुराणों या अन्य धर्म-ग्रन्थ के ज्ञान की नहीं, आन्तरिक रूहानी अभ्यास की आवश्यकता है। अन्तर में बिना बादलों के अमृत की वर्षा हो रही है और नाम के मोती बरस रहे हैं। आन्तरिक आकाश में बिना बजाए शब्द का बाजा बज रहा है और नाद गूँज रहा है। वहाँ बिना बजाए झनकार हो रही है और बजानेवाला कोई दिखाई नहीं देता। इस नाद को सुनकर सोई हुई आत्मा जाग्रत हो जाती है। वहाँ बिना जलाए ज्योति प्रज्वलित है। इस ज्योति के प्रकाश से अज्ञानता का अन्धकार दूर हो जाता है। जो सौभाग्यशाली जीवात्मा इस ज्योति के दर्शन करती है वह निज-घर की ओर निरन्तर आगे बढ़ती चली जाती है। आप नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मैं तो मूर्ख और मन्द-बुद्धि हूँ परन्तु जिसे यह अद्भुत अवस्था प्राप्त हो चुकी है, मैं उसके चरणों की शरण प्राप्त करना चाहता हूँ।

अणमड़िआ मंदलु बाजै

अणमड़िआ मंदलु बाजै॥ बिनु सावण घनहरु गाजै॥[246]
बादल बिनु बरखा होई॥ जउ ततु बिचारै कोई॥
मो कउ मिलिओ रामु सनेही॥ जिह मिलिए देह सुदेही॥[247]
मिलि पारस कंचनु होइआ॥ मुख मनसा रतनु परोइआ॥
निज भाउ भइआ भ्रमु भागा॥ गुर पूछे मनु पतीआगा॥
जल भीतरि कुंभ समानिआ॥ सभ रामु एकु करि जानिआ॥
गुर चेले है मनु मानिआ॥ जन नामै ततु पछानिआ॥[248]

आदि ग्रन्थ, पृ. 657

इस शब्द में नामदेव जी अन्तर में होनेवाले अलौकिक रूहानी अनुभव का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि आन्तरिक सूक्ष्म आकाश में बिना किसी मृदंग के, मृदंग की ध्वनि गूँज रही है। उस आकाश में बिना सावन के बादल गरजते सुनाई देते हैं और बिना बादलों के वर्षा हो रही दिखाई देती है। आपका भाव है कि अन्तर में अनहद शब्द की आनन्दमय ध्वनि गूँज रही है और शब्द का अमृत बरस रहा है। यह अनुपम अनुभव किसी विरले भाग्यशाली को होता है। आप कहते हैं कि मुझे ऐसे प्रभु-भक्त (सतगुरु) की संगति मिल गई है जिससे मेरा मनुष्य-जन्म सार्थक हो गया है। जिस तरह पारस से छूकर लोहा सोना बन जाता है, उसी प्रकार मेरा काया-कल्प हो गया है और नामरूपी रत्न मेरे हृदय में बस गया है। मेरे भ्रम का नाश हो गया है और अन्तर में प्रभु का प्रेम बस गया है। सतगुरु के ज्ञान द्वारा मेरा मन वश में आ गया है। अब आत्मारूपी कुम्भ (घड़ा) प्रभुरूपी सागर में समा गया है और मुझे सर्वत्र वह प्रभु दिखाई देता है। सतगुरु की शरण तथा कृपा द्वारा मुझे परम-तत्त्व का बोध हो गया है।

सबद अनाहद बोलै

देवा बेनु बाजै गगन गाजै। सबद अनाहद बोलै॥
अंतरिगति की जानै नाहीं। मूरिष भरमत डोलै॥[249]

चंद सूर दोउ समकरि राषूं। मन पवन दिठ डांडी।[250]
सहजै सुषमन तारा-मंडल। इह विधि त्रिंस्नां षांडी॥
बैठा रहूं न फिरूं न डोलूं। भूषा रहूं न षाऊं।[251]
मरूं न जीऊं अहनिस भुगतूं। नहीं आऊं नहीं जाऊं॥
गगन मंडल मैं रहनि हमारी। सहजि सुनि गृह मेला।
अंतरि धुनिमैं मन बिलमाऊं। कोई जोगी या गम लहैला॥
पाती तोडि न पूजूं देवा। देवलि देव न होई।
नामा कहै मैं हरि की सरना। पुनरपि जन्म न होई॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 65

इस पद में आप रूहानी अभ्यास की सम्पूर्ण विधि पर प्रकाश डाल रहे हैं। आत्मा का रूहानी सफ़र आँखों से ऊपर शुरू होता है। अन्दर बाईं ओर की सूक्ष्म नाड़ी को सन्तों ने चन्द्र, यमुना या इड़ा कहा है। दाईं ओर की नाड़ी को सूर्य, गंगा या पिंगला कहा है। मध्य की नाड़ी को सुषुम्ना कहा है। इन तीनों नाड़ियों के संगम को त्रिवेणी कहा जाता है।

नामदेव जी कहते हैं कि जब मैंने इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम कर लिया तो मुझे सहज-समाधि की अवस्था प्राप्त हो गई। उस अवस्था में मन वश में आ जाता है और जीना-मरना, आना-जाना समाप्त हो जाता है। यह अवस्था किसी पूर्ण योगी को प्राप्त होती है। इस अभ्यास द्वारा सबसे ऊपरी मण्डल में पहुँचकर आत्मा को शब्द की वीणा जैसी ध्वनि सुनाई देती है। सन्त नामदेव जी पद के अन्त में कहते हैं कि मुझे शब्द की साधना द्वारा यह अवस्था प्राप्त हुई है। मुझे देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा की और किसी अन्य प्रकार की भक्ति की आवश्यकता नहीं है। अब मुझे प्रभु की शरण प्राप्त हो गई है और मेरा आवागमन से सदा के लिये छुटकारा हो गया है।

अनहद बेनु बजावउगो

बेद पुरान सासत्र आनंता गीत कबित न गावउगो॥
अखंड मंडल निरंकार महि अनहद बेनु बजावउगो॥

बैरागी रामहि गावउगो॥
सबदि अतीत अनाहदि राता आकुल कै घरि जाउगो॥
इड़ा पिंगुला अउरु सुखमना पउनै बंधि रहाउगो॥[252]
चंदु सूरजु दुइ सम करि राखउ ब्रहम जोति मिलि जाउगो॥[253]
तीरथ देखि न जल महि पैसउ जीअ जंत न सतावउगो॥
अठसठि तीरथ गुरू दिखाए घट ही भीतरि न्हाउगो॥
पंच सहाई जन की सोभा भलो भलो न कहावउगो॥[254]
नामा कहै चितु हरि सिउ राता सुंन समाधि समाउगो॥[255]

आदि ग्रन्थ, पृ. 972-73

मुझे प्रभु की महिमा करने के लिये बाहरी वाद्यों तथा बाहरी शब्दों का सहारा लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। इसलिये मैं वेद, पुराण, शास्त्र के अनन्त गीत और कविताएँ नहीं गाऊँगा। मैं तो अन्तर में उस निराकार प्रभु के अविनाशी मण्डल में अनहद शब्द की वीणा से लिव लगाऊँगा। मैं मन से दुनिया के पदार्थों का मोह मिटाकर सच्चा वैरागी बन गया हूँ, अब मैं प्रभु का ही गुणगान करूँगा तथा उस निराकार प्रभु के प्रेम द्वारा उस मुक़ाम पर पहुँच जाऊँगा जहाँ अनहद शब्द निरन्तर हो रहा है।

नामदेव जी कहते हैं कि मैं शब्द के अभ्यास द्वारा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों के संगम पर पहुँचकर आत्मारूपी ज्योति को प्रभुरूपी परम-ज्योति में लीन कर दूँगा। सतगुरु ने मुझे अन्तर में दसम् द्वार के जिस तीर्थ पर शब्द का स्नान करवाया है, उसकी बराबरी बाहरी अड़सठ तीर्थ भी नहीं कर सकते। बाहरी तीर्थों से तो शरीर की मैल उतरती है, उस सच्चे तीर्थ पर स्नान करने से मेरे कर्मों तथा संस्कारों की मलिनता पूरी तरह धुल गई है और मेरी आत्मा निर्मल होकर प्रभु से मिलाप करने के योग्य बन गई है। अब मुझे किसी बाहरी तीर्थ में नहाने और उसमें बसनेवाले जीवों को तंग करने की आवश्यकता नहीं है। मेरे मन में सांसारिक मान-बड़ाई तथा लोगों की प्रशंसा की भी इच्छा नहीं रही। सुन्न-समाधि की अवस्था में पहुँचकर मेरा मन प्रभु में लीन हो गया है जिससे मैं हर प्रकार की इच्छा-तृष्णा से मुक्त हो गया हूँ।

प्रभु का प्रेम, प्रभु की भक्ति

नाम की साधना एवं प्रभु का प्रेम दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। बिना प्रेम के नाम की साधना नहीं हो सकती और बिना साधना किये प्रभु से सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि प्रेम प्रभु-भक्ति, नाम की साधना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रेम के कई रूप हैं। मोटे तौर पर इसे दो भागों में बाँट सकते हैं – दुनियावी प्रेम और दूसरा प्रभु का प्रेम। दुनियावी प्रेम में इस नश्वर संसार एवं इसके पदार्थ, सगे-सम्बन्धी आदि के प्रति आसक्ति या प्रेम शामिल है। इसके विपरीत, प्रभु-प्रेम में उस 'एक' की ओर मुड़ने और उससे जुड़ने का भाव है।

मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि संसार के मोह का त्याग कैसे किया जाए और प्रभु से मिलाप कैसे किया जाए?

नामे प्रीति नाराइण लागी

जैसी भूखे प्रीति अनाज॥ त्रिखावंत जल सेती काज॥[256]
जैसी मूड़ कुटंब पराइण॥ ऐसी नामे प्रीति नराइण॥[257]
नामे प्रीति नाराइण लागी॥ सहज सुभाइ भइओ बैरागी॥[258]
जैसी पर पुरखा रत नारी॥ लोभी नरु धन का हितकारी॥[259]
कामी पुरख कामनी पिआरी॥ ऐसी नामे प्रीति मुरारी॥
साई प्रीति जि आपे लाए॥ गुर परसादी दुबिधा जाए॥[260]
कबहु न तूटसि रहिआ समाइ॥ नामे चितु लाइआ सचि नाइ॥
जैसी प्रीति बारिक अरु माता॥ ऐसा हरि सेती मनु राता॥
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति॥ गोबिदु बसै हमारै चीति॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1164

जैसे भूखे को रोटी से, प्यासे को पानी से तथा अज्ञानी को परिवार से मोह होता है, उसी तरह मेरे मन में प्रभु का सबल प्रेम समाया हुआ है और मैं सहज स्वाभाविक रूप से ही बैरागी हो गया हूँ। जैसे पुरुष के मन में पर-नारी की, लोभी के मन में धन की तथा कामी-पुरुष के अन्दर स्त्री की

प्रबल लालसा होती है, ऐसे ही मेरे मन में प्रभु का प्रबल आकर्षण है। प्रेम वही है जो प्रभु स्वयं जाग्रत करता है और गुरु की कृपा से ही इनसान की दुविधा समाप्त होती है। जैसे बच्चे का माता से तथा माता का बच्चे से प्रेम होता है, इसी तरह मेरा मन हरि-प्रेम के रंग में रँगा हुआ है। आप कहते हैं कि मेरे अन्दर गोविन्द की सच्ची तथा पक्की प्रीति समा गई है। इस प्रबल प्रीति ने मेरे अन्दर सच्चा वैराग्य और त्याग पैदा कर दिया है। इस प्रीति ने मुझे संसार तथा इसकी शक्लों, पदार्थों के मोह से मुक्त कर दिया है।

आप बहुत सुन्दर ढंग से समझा रहे हैं कि प्रेम मन का सहज स्वभाव है। प्रेम किये बिना मनुष्य रह ही नहीं सकता।

प्रभु का प्रबल प्रेम स्वाभाविक रूप से जीवात्मा को संसार के मोह से मुक्त कर देता है। आपका भाव है कि मानव ज़बरदस्ती संसार के मोह का त्याग नहीं कर सकता। संसार के मोह के त्याग का सच्चा साधन प्रभु का प्रेम है। प्रेम को प्रेम काटता है। जब तक हृदय में प्रभु का प्रबल प्रेम उत्पन्न न हो, जीवात्मा कभी भी संसार के मोह के बन्धन को नहीं तोड़ सकती। इसके विपरीत, जब हृदय में प्रभु-प्रेम हिलोरें लेने लगता है तो मन सहज ही संसार के मोह से मुक्त हो जाता है।

सन्तों-महात्माओं द्वारा बताए गए प्रभु-भक्ति के साधन को प्रेम-मार्ग, भक्ति-मार्ग या प्रेम-भक्ति का मार्ग कहा जाता है, क्योंकि इसमें प्रभु के प्रेम द्वारा मन को संसार से विरक्त करने का यत्न किया जाता है। इस मार्ग में सतगुरु के प्रेम तथा नाम के प्रेम पर बल दिया जाता है। सतगुरु अपनी आत्मा को प्रभु में विलीन करके प्रभु का रूप हो चुके हैं और वे निराकार प्रभु का साकार रूप हैं। जैसे-जैसे जीवात्मा के मन में सतगुरु तथा नाम का प्रेम प्रबल होता है, संसार का मोह निर्बल होता जाता है। हुज़ूर महाराज जी अक्सर सत्संगों में फ़रमाया करते थे कि अगर किसी की मुट्ठी में कौड़ियाँ हैं और उसे उनको त्यागने की बात कहो तो वह उनसे जुदा होने की सोचता भी नहीं है लेकिन अगर उसके सामने हीरे-जवाहरात रख दो तो कौड़ियों से भरी बन्द मुट्ठी अपने आप खुल जाती है। दुनियावी पदार्थों का प्यार कौड़ियों की तरह है तथा प्रभु-प्रेम हीरे-जवाहरात की तरह है। ज्यों-ज्यों हम नाम

की साधना करते जाते हैं, प्रभु के प्रति प्रेम बढ़ता जाता है और दुनियावी प्रेम घटता जाता है।

गुरु नानक देव जी अपने शब्द 'रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि' (आदि ग्रन्थ, पृ. 60) में उपदेश देते हैं कि प्रभु के साथ इस तरह प्रेम करना चाहिये। जिस तरह कमल के फूल का पानी से, मछली का जल के साथ, पपीहे का स्वाति बूँद और चकवी का सूर्य के साथ होता है।

नामदेव जी ने 'नामे प्रीति नाराइण लागी॥ सहज सुभाइ भइओ बैरागी' का उपदेश दिया है। गुरु नानक साहिब 'मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर' (आदि ग्रन्थ, पृ. 60) का उपदेश दे रहे हैं। भाव यह है कि प्रभु के प्रबल प्रेम के बिना मन संसार के मोह से मुक्त नहीं हो सकता। नामदेव जी कहते हैं:

पारब्रहमु जि चीन्हसी आसा ते न भावसी॥
रामा भगतह चेतीअले अचिंत मनु राखसी॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 486

आप कहते हैं कि जो प्रभु से प्रेम करता है, उसे दूसरी कोई वस्तु प्रेम के योग्य प्रतीत नहीं होती। इसलिये प्रभु के भक्त अपना ध्यान निरन्तर प्रभु में रखते हैं।

नाचि रे मन राम के आगे

नाचि रे मन राम के आगे। ग्यांन बिचारि जोग बैरागे॥
नाचै ब्रम्हा नाचै इंद। सहस कला नाचै रवि चंद॥
रामकै आगै संकर नाचै। काल विकाल अकालहिं नांचै॥
नारद नाचै दोइ कर जोडि। सुर नांचै तैतीसूं कोडि॥
भणत नांमदेव मनहिं नचाऊं। मनके नचाये परम पद पाऊं॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 137

प्रभु-प्रेम की मस्ती में मग्न नामदेव जी फ़रमाते हैं, "ऐ मेरे मन, तू ज्ञान, विचार, योग, बैराग को छोड़कर सदैव प्रभु (राम) के प्रेम की मस्ती

में नाचता रह। उस राम के आगे ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, सहस्रकला सम्पूर्ण सूर्य एवं चन्द्रमा नाच रहे हैं, तेंतीस करोड़ देवता और हाथ जोड़े नारद नाच रहे हैं, काल भी अपनी समस्त शक्तियों के साथ उस अकाल के आगे नाच रहा है।'' अभिप्राय यह है कि सारी सृष्टि प्रभु के सौंपे हुए कार्य को आनन्दपूर्वक पूरा कर रही है। आप कहते हैं कि मैं अपने मन को उस राम में लीन करके उसकी ताल पर नचाता हूँ और इस तरह प्रभु के प्रेम में मग्न होकर परमपद को पा लिया है।

मनिषा जन्म आई नहिं चेता

राम भगति बिन गति न तिरन की। कोटि अुपाइ जु करही रे नर॥
जल सींचै करि जतन प्रवालै। आंब बबूल न फलही रे नर॥
आपा थापि और कूं नींदै। गर्व मान के मारे।[261]
फिर पीछे पछिताअुगे बौरे। रतन न मिलहिं अुधारे रे नर॥[262]
यहु ममिता अपनी जिनि जानौ। धन जोबन सुत दारा।
बालू के मंदिर बिनसि जांहिगे। झूठे करहु पसारा रे नर॥
जोग न भोग मोह नहीं माया। का भयौ बन मैं बासा।
चरन कंवल अनुराग न अुपजै। तब लगि झूठी आसा रे नर॥
मनिषा जनम आई नहिं चेता। अंधे पसू गंवारा।
तेरे सिर काल सदा सर साधै। नांमदेव करत पुकारा रे नर॥[263]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 92

नामदेव जी चेतावनी देते हैं, प्रभु-भक्ति के बिना भले ही करोड़ों उपाय कर लिये जाएँ, मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। बबूल के पेड़ को चाहे कितने भी उत्तम जल से क्यों न सींच लें, उस पर कभी आम का फल नहीं लग सकता। लोग अहं के वश होकर अपनी प्रशंसा और पराई निन्दा करते हैं। अन्त में पछताने के सिवाय हाथ कुछ नहीं आता, दुर्लभ जन्म का मौक़ा फिर नहीं मिलता। वे मोह-वश धन, यौवन, पुत्र, स्त्री आदि को अपना समझने की अज्ञानता करते हैं। वास्तव में ये सब रेत की दीवार के समान अस्थायी

हैं, झूठा पसारा हैं। जब तक मन में प्रभु अथवा सतगुरु के प्रति प्रेम पैदा नहीं होता, योग तथा भोग, संन्यास तथा गृहस्थ सभी निष्फल हैं। ऐ इनसान! तेरे सिर पर कालरूपी शिकारी अपना तीर साधे खड़ा है और तू मनुष्य-जन्म के दुर्लभ अवसर को अज्ञानी पशु की भाँति व्यर्थ गँवा रहा है!

प्रभु-प्राप्ति के लिये इनसान जो भी यत्न करता है, उसका मूल उद्देश्य मन को संसार से मोड़कर प्रभु से जोड़ना है। इसके लिये कुछ लोग कई प्रकार के कर्मकाण्ड का सहारा लेते हैं, कुछ लोग हठ-कर्मों द्वारा मन को संसार से उपराम करने का यत्न करते हैं। कुछ लोग घर-गृहस्थी के त्याग पर बल देते हैं तो कुछ ग्रन्थों-शास्त्रों के ज्ञान द्वारा मन को संसार से उपराम करने का यत्न करते हैं। नामदेव जी समझाते हैं कि इन सभी प्रयत्नों से मन थोड़ी देर के लिये दब सकता है, परन्तु यह संसार के मोह से सदा के लिये मुक्त नहीं हो सकता। सन्त-महात्मा समझाते हैं कि त्याग, प्रेम पैदा नहीं करता, प्रेम त्याग पैदा करता है। त्यागी कहने को तो घर-गृहस्थी का त्याग कर देते हैं, परन्तु उनका मन संसार में ही आसक्त रहता है। मन में भोगों की इच्छा दब जाती है, परन्तु उसकी जड़ क़ायम रहती है। जैसे ही भोगों की आँधी चलती है, राख के नीचे दबी तृष्णाओं तथा विकारों की चिनगारी फिर से भड़क उठती है। इसके विपरीत, जब प्रभु के नाम का आनन्द प्राप्त होता है तो हर प्रकार के इन्द्रिय भोग तथा सांसारिक ऐश्वर्य तुच्छ प्रतीत होते हैं।

ज्ञान-मार्गी ज्ञान द्वारा यह बात स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि मनुष्य का वास्तविक आधार शरीर, इन्द्रियाँ या मन न होकर, आत्मा है। बातों से यह तथ्य स्थापित कर देना आसान है, किन्तु जब तक रूहानी अभ्यास द्वारा मन को इन्द्रियों से और फिर आत्मा को मन से अलग नहीं किया जाता, न मनोवृत्ति बदलती है और न ही इच्छाएँ-तृष्णाएँ वश में आती हैं। सन्त-महात्मा प्रभु के अनन्त गुणों का वर्णन करते हैं। इससे उनका वास्तविक उद्देश्य हमारे मन में प्रभु के प्रति प्रेम और भरोसा उत्पन्न करना होता है। सन्तमत का संक्षिप्त सार ही यह है कि संसार का मोह जीवात्मा को संसार के साथ बाँधकर रखता है और प्रभु का प्रेम उसे संसार के मोह से मुक्त करके प्रभु से मिला देता है।

सन्त चरनदास जी का वचन है:

मिटते सूँ मत प्रीत करि, रहते सूँ करि नेह।
झूठे कूँ तजि दीजिये, साँचे में करि गेह॥
चरनदासजी की बानी, भाग 2, पृ. 70

आप उपदेश देते हैं कि संसार और इसके पदार्थ झूठे हैं, इसलिये इनसे प्रेम करना अज्ञानता है। वह प्रभु परिपूर्ण है, वह परम सत्य है। केवल उसके प्रेम तथा मिलाप से ही पूर्ण और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये केवल प्रभु से ही प्रेम करना चाहिये। गुरु रविदास जी कहते हैं:

जउ हम बांधे मोह फास हम प्रेम बधनि तुम बाधे॥
अपने छूटन को जतनु करहु हम छूटे तुम आराधे॥
माधवे जानत हहु जैसी तैसी॥ अब कहा करहुगे ऐसी॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 658

परमार्थी साहित्य में यह बहुत अनूठा प्रसंग है। इसमें एक प्रेमी प्रभु से कहता है: हे मेरे प्रियतम! तूने मुझे संसार के मोह में बाँधा हुआ था, अब मैंने तुझे अपने प्रेम के बन्धन में बाँध लिया है। मैंने तो तेरे प्रेम के द्वारा संसार के मोह के बन्धन तोड़ लिये हैं, अब तू मेरे प्रेम के बन्धन को तोड़कर दिखा। हे प्रभु! तुझे मालूम है कि मेरी तेरे साथ कितनी गूढ़ और पक्की प्रीति है, तू इस प्रीति के बन्धन को नहीं तोड़ सकता।

हरि भजि हरि भजि हरि भजि मूल

हरि भजि हरि भजि हरि भजि मूल। बिन हरि भजन परै मुषि धूल॥[264]
अनेक बार पसु ह्वै अवतरयौ। लष चौरासी भरमत फिरयौ॥
पायौ नहीं कहीं विश्राम। सतगुर सरनि कह्यौ नहीं राम॥
राज काज सुत बित सब जाइ। अविनासी सौं प्रीति लगाइ॥[265]
इहिं उनमान भगत व्रत धरै। जरा मरन भव संकट टरै॥[266]

गुणसागर गोविंद गुण गाइ। अपनौ विरद बिसरि जिनि जाइ॥[267]
प्रणवत नामदेव संत सधीर। चरन सरन राषै हरि नीर॥[268]
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 124

हे प्राणी! तू उस एक परमात्मा की भक्ति में लग जा, नहीं तो तेरी अनमोल देह ख़ाक में मिल जाएगी, धूल में मिल जाएगी। तू कई बार पशु की योनि में आया और चौरासी में अनन्त काल तक भटकता रहा। तुझे पल भर के लिये भी चैन नहीं मिला, विश्राम नहीं मिला और न ही तू उन योनियों में राम का नाम ले सका। राज-पाट, धन-दौलत, पुत्र आदि सब नाशवान् हैं। अब तुझे मनुष्य-जन्म का अनमोल अवसर मिला है, तू उस अविनाशी प्रभु से एकचित्त होकर प्रेम करने का संकल्प ले, तब आवागमन तथा भवसागर के दुःखों से मुक्त हो जाएगा। तू अपने मान-सम्मान को भुलाकर अनन्त गुणों के सागर गोबिन्द को भज ले। आप कहते हैं कि सन्त दयालु हैं, वे तुझे अपने चरण-कमल की ओट बख़्श देंगे।

बहुत-से लोग देवी-देवताओं, अवतारों आदि की पूजा-भक्ति में खोए हुए हैं। सन्त नामदेव जी कहते हैं कि हे प्रभु! मैं आपके सिवाय किसी देवी-देवता को अपना इष्ट स्वीकार नहीं करता। मुझे सिर्फ़ आपका प्रेम, आपकी भक्ति और सेवा ही सर्वोपरि हैं। आप सब सुखों का भण्डार हैं, आप सच्चे दाता हैं, आप मेरे जीवन का आधार हैं, आप ही मेरे माता-पिता और गुरु हैं, मेरा जो कुछ है आप हैं, मैं सपने में भी किसी दूसरे के बारे में नहीं सोच सकता।

सच्चा वैराग्य तथा त्याग भी प्रेम द्वारा ही सम्भव है और बड़ी से बड़ी क़ुरबानी की शक्ति भी प्रेम ही प्रदान करता है। विवश होकर किसी की ओर खिंच जाना प्रेम है। जिससे प्रेम करते हैं, उसे सबसे बड़ा समझते हैं और अन्य सभी चीज़ों को उससे छोटा समझते हैं। जिससे प्रेम करते हैं, उसे पाना चाहते हैं और जिसे पाना चाहते हैं, उसे पाने के लिये सब कुछ खो देने के लिये तैयार हो जाते हैं। जिससे प्रेम करते हैं, उसे प्रसन्न करना चाहते हैं। उसे प्रसन्न करने के लिये जो साधन अपनाते हैं, वह उसकी भक्ति तथा पूजा है।

पूर्ण सन्तों ने परमात्मा को प्रेम-रूप कहा है। आत्मा परमात्मा की अंश है इसलिये आत्मा भी अपनी विशुद्ध अवस्था में प्रेम-रूप है। प्रेम, परमात्मा और आत्मा के अस्तित्व का निज-स्वरूप है। जिसमें जो गुण प्रधान होता है, उसे वही गुण सबसे अधिक प्रसन्न करता है। परमात्मा प्रेम-रूप है, इसलिये उसे प्रेम सबसे प्रिय है। आत्मा प्रेम-रूप है, इसलिये इसके लिये प्रेम करना अति सरल और स्वाभाविक है।

सन्तजन समझाते हैं कि यदि परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हो तो उससे प्रेम करो। प्रेम करना तुम्हारे लिये सबसे सहज और सरल कार्य है। वर्तमान अवस्था में भी तुम्हारे जीवन का आधार प्रेम है। इस समय तुम धन-दौलत से, मित्रों-सम्बन्धियों से अथवा मान-सम्मान से प्रेम कर रहे हो। तुम्हारा प्रेम बिखरा हुआ है, कण-कण बन चुका है। तुम अनेक वस्तुओं और व्यक्तियों में बँटे हुए प्रेम को एकाग्र करके, प्रभु-प्रेम में बदल दो। तुम दुनिया को बड़ा समझने की बजाय प्रभु को बड़ा समझना शुरू कर दो और दुनिया को अपना बनाने की बजाय प्रभु को अपना बनाने का यत्न करो। दुनिया न कभी किसी की बनी है और न बन ही सकती है। प्रभु तुम्हारा है, तुम प्रभु के हो। तुम प्रभु के बन सकते हो और प्रभु को अपना बना सकते हो। दुनिया नाशवान् है और प्रभु अविनाशी है। दुनिया अपूर्ण है, प्रभु पूर्ण है। अपूर्ण और नाशवान् से प्राप्त होनेवाला सुख भी अपूर्ण और नाशवान् होगा। पूर्ण और अविनाशी प्रभु से प्राप्त होनेवाला आनन्द भी पूर्ण और अविनाशी ही होगा। इसलिये तुम अपने प्रेम का आधार बदल दो। दुनिया को अपने प्रेम का आधार बनाने की बजाय प्रभु को अपने प्रेम का आधार बना लो।

सन्त-महात्मा समझाते हैं कि यदि प्रभु धन से मिलता हो तो संसार में जो अधिकांश निर्धन हैं, वे उससे वंचित रह जाएँगे; यदि प्रभु विद्या से मिलता हो तो अशिक्षित लोग प्रभु से वंचित रह जाएँगे क्योंकि संसार के बहुत-से लोग अशिक्षित हैं। मान लो प्रभु वेद, क़ुरान, बाइबल आदि किसी धर्म-ग्रन्थ के पठन-पाठन से मिलेगा तो जो लोग ये ग्रन्थ-शास्त्र पढ़-समझ नहीं सकते, वे प्रभु से वंचित रह जाएँगे। यही नहीं, जो लोग बिल्कुल अनपढ़ हैं, उनका प्रभु से मिलाप कैसे होगा? मान लो, प्रभु हिन्दू धर्म को धारण करने

से मिलेगा तो मुसलमान, ईसाई आदि कहाँ जाएँगे? यदि प्रभु यहूदी बनकर मिलेगा तो हिन्दू, मुसलमान कहाँ जाएँगे? मान लो, प्रभु हिन्दुस्तानियों को मिलेगा तो अमेरिका, अफ्रीका में रहनेवाले उससे कैसे मिल पाएँगे? वह प्रभु समदर्शी और दयालु है। उसने अपने साथ मिलाप के लिये धन, विद्या, धर्म, जाति, राष्ट्र, स्त्री-पुरुष आदि का ही नहीं, अच्छे और बुरे का भी भेदभाव नहीं रखा। संसार के हर व्यक्ति में प्रेम करने का समान सामर्थ्य है। संसार का हर प्राणी बिना किसी भेदभाव के हर समय, हर स्थान पर और हर परिस्थिति में प्रभु से प्रेम कर सकता है। इसलिये प्रभु ने अपने साथ मिलाप का अति सरल और अति सुगम सार्वजनीन, सार्वकालीन और परिवर्तनरहित साधन निश्चित किया है और वह है प्रेम।

भक्ति का सम्बन्ध केवल प्रेम से है

सन्त-महात्मा अनेक ढंग से हमें यह बात समझाने का यत्न करते हैं कि प्रभु-भक्ति का सम्बन्ध प्रेम तथा मन की निर्मलता से है। प्रभु-प्रेम से ख़ाली ऊँची जाति का व्यक्ति कभी भी प्रभु से मिलाप नहीं कर सकता। इसके विपरीत, भले ही किसी व्यक्ति का जन्म साधारण जाति में क्यों न हुआ हो, यदि उसके मन में प्रभु का प्रेम हिलोरें ले रहा है, तो उसका प्रभु से अवश्य मिलाप होगा। प्रभु न जाति-पाँति देखता है और न ही अमीरी-ग़रीबी। उसे न विद्वान की विद्वत्ता रिझा सकती है और न ही अनपढ़ की अविद्या उसे प्रभु से दूर रखने का कारण बन सकती है। प्रभु-प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रभु का सच्चा प्रेम है।

हीन दीन जात मोरी

हीन दीन जात मोरी पंढरी के राया।
ऐसा तुमने नामा दरजी कायक बनाया॥[269]
टाल बिना लेकर नामा राऊल में गाया।[270]
पूजा करते बह्मन उनैन बाहेर ढकाया॥
देवल के पिछे नामा अल्लक पुकारे।[271]

जिदर जिदर नामा उदर देऊलहिं फिरे॥
नाना बर्ण गवा उनका एक बर्ण दूध।[272]
तुम कहां के ब्रह्मन हम कहां के सूद॥
मन मेरी सुई तनो मेरा धागा।
खेचरजी कें चरण पर नामा सिंपी लागा॥[273]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 184

नामदेव जी अत्यन्त दीन भाव से कहते हैं कि हे प्रभु, हे पंढरनाथ! मेरी जाति नीची है और मेरा काम भी दर्ज़ी का है; आपने मुझे ऐसा क्यों बनाया है? मुझ जैसे दर्ज़ी को आपने ही इस काया में भेजा है। मैं पूजा का सामान, घण्टी इत्यादि लेकर मन्दिर में गया, पर ब्राह्मणों ने मेरी नीची जाति के कारण मुझे पूजा करते समय मन्दिर से बाहर धकेल दिया। मैं मन्दिर के पीछे जाकर आपके ध्यान में खो गया। तब आपने मेरी लाज रखते हुए यह चमत्कार किया कि जिस तरफ़ मैं मुँह करता था, मन्दिर का द्वार उस तरफ़ ही घूम जाता था।

सन्त नामदेव जी तथाकथित ऊँची जाति वाले ब्राह्मणों को कहते हैं कि जिस प्रकार अलग-अलग रंगों वाली गायों के दूध का रंग एक होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शक्ल, सूरत, रंग, जाति-पाँति वाले सभी मनुष्य समान होते हैं। इसलिये ब्राह्मण और शूद्र का भेदभाव कहाँ तक उचित है? आप अपने सतगुरु खेचर जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इस नामदेव छीपा ने अपने मनरूपी सूई और तनरूपी धागे से अपने आप को, अपने सतगुरु के चरण-कमलों से पिरो लिया है। नामदेव जी ने इस पद में अपने गुरुदेव के प्रति आभार प्रकट किया है कि उन्होंने नामदेव की जाति की परवाह किये बिना उसे अपनी शरण में लेना स्वीकार कर लिया।

इसी घटना का ज़िक्र अपनी वाणी में इस प्रकार किया है:

मो कउ तूं न बिसारि तू न बिसारि॥ तू न बिसारे रामईआ॥
आलावंती इहु भ्रमु जो है मुझ ऊपरि सभ कोपिला॥[274]
सूदु सूदु करि मारि उठाइओ कहा करउ बाप बीठुला॥
मूए हूए जउ मुकति देहुगे मुकति न जानै कोइला॥

ए पंडीआ मो कउ ढेढ कहत तेरी पैज पिछंउडी होइला॥[275]
तू जु दइआलु क्रिपालु कहीअतु हैं अतिभुज भइओ अपारला॥[276]
फेरि दीआ देहुरा नामे कउ पंडीअन कउ पिछवारला॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1292-93

आप कहते हैं कि हे प्रभु! मैं आपका जन हूँ, कृपा करके आप मुझे अपने चरणों से लगाए रखें और मुझे कभी विसारें नहीं। अपने आपको उत्तम कुल के समझनेवाले पुजारियों को यह भ्रम है कि वे इस मन्दिर के मालिक हैं, इसलिये जब मैं मन्दिर जाता हूँ तो वे शूद्र-शूद्र कहकर मेरा तिरस्कार करते हैं और मुझे मार-पीटकर बाहर निकाल देते हैं। हे पिता परमेश्वर! मैं क्या करूँ? यदि मैं मर गया और अपना भक्त जानकर आपने मुझे मुक्ति भी दे दी तो इस मुक्ति का किसी को क्या पता चलेगा? ये पण्डे और पुजारी तो मुझे 'ढेढ' यानी नीच कहकर दुत्कारते हैं। हे प्रभु! इससे तेरे ही नाम को बट्टा लगता है।

हे प्रभु! आपको सब लोग दयालु और कृपालु कहते हैं। आपकी भुजाएँ बहुत लम्बी हैं। हे मेरे सर्वशक्तिमान् प्रभु! आपके जन का इस प्रकार निरादर होना तो आपका ही निरादर है। नामदेव की ऐसी करुणामय पुकार सुनकर, अपने भक्त की लाज रखते हुए प्रभु ने देहुरे (मन्दिर) को फेरकर देहुरे का मुँह नामदेव की ओर और उसकी पीठ पुजारियों की ओर कर दी।

आप समझाना चाहते हैं कि न तो प्रभु, भक्त की जाति-पाँति देखता है और न ही प्रभु से मिलकर प्रभु का रूप हो चुके सन्त-महात्मा जीव को अपनी शरण में लेते समय उसकी जाति-पाँति आदि की ओर ध्यान देते हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

चहु वरना कउ दे उपदेसु॥ नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 274

आप कहते हैं कि उस पूर्ण ज्ञानी को नमस्कार है, जो क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र का भेदभाव किये बिना सब वर्णों के लोगों को प्रभु-भक्ति में दीक्षित करता है।

गुरु रामदास जी की वाणी है:

खत्री ब्राहमणु सूदु वैसु को जापै हरि मंत्रु जपैनी॥
गुरु सतिगुरु पारब्रहमु करि पूजहु नित सेवहु दिनसु सभ रैनी॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 800

आप कहते हैं कि सब वर्णों तथा जातियों के लोग बिना किसी भेद-भाव के सतगुरु की दीक्षा के अनुसार प्रभु-भक्ति द्वारा, प्रभु से मिलाप कर सकते हैं।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

खत्री ब्राहमण सूद वैस उपदेसु चहु वरना कउ साझा॥
गुरमुखि नामु जपै उधरै सो कलि महि घटि घटि नानक माझा॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 747-48

आप कहते हैं कि सन्त-सतगुरु का उपदेश सभी जातियों के लिये समान होता है। वे सभी धर्मों और जातियों के लोगों को प्रभु के नाम से लिव जोड़ने की युक्ति सिखाते हैं। कलियुग में जो कोई भी सन्त-सतगुरु की सहायता से नाम से लिव जोड़ लेता है, वह देश, धर्म, जाति आदि के भेद-भाव के बिना भवसागर से पार हो जाता है।

हम देखते हैं कि दुनियावी प्रेम में प्रेमी देश, धर्म, जाति, आयु, पदवी, अमीर-ग़रीब आदि की परवाह किये बिना एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। लैला रात की तरह काली थी, इसी लिये कहा जाता है कि लैला को मजनूँ की आँख से देखो। माता को अपना काला, अन्धा या अपाहिज बालक भी प्रिय लगता है। आत्मा और परमात्मा के प्रेम की तो बात ही अलग है।

आत्मा और परमात्मा सजातीय हैं। आत्मा, परमात्मा की अंश है। अंश में अंशी के प्रति और अंशी में अंश के प्रति स्वाभाविक प्रेम होता है। बूँदें पर्वत पर बरसती हैं परन्तु नदी में मिलकर बेतहाशा सागर की ओर दौड़ती हैं। प्रेम आत्मा में पहले से मौजूद है, परन्तु यह प्रेम मन-माया तथा कर्मों और संस्कारों के पर्दों के नीचे ढका हुआ है। बिजली के बल्ब पर चार-

पाँच काले पर्दे लपेट दिये जाएँ तो उसका प्रकाश दिखाई नहीं देता। पर्दे हटते ही प्रकाश दिखाई देने लग जाता है। इसी तरह सतगुरु की संगति तथा नाम के अभ्यास द्वारा कर्मों और संस्कारों के आवरण दूर होते ही, आत्मा के अन्दर ढका हुआ प्रेम जगमगाने लगता है। जो लोग आत्मा और परमात्मा के प्रेम को देश, धर्म, जाति, कर्मकाण्ड, विशेष प्रकार के भेष आदि किसी भी बहिर्मुखी चीज़ पर आधारित करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें इस प्रेम के क, ख, ग का भी ज्ञान नहीं है।

सन्त रविदास जी कहते हैं:

'रविदास' उपजइ सभ इक नूर तें, बाह्मन मुल्ला सेख।[277]
सभ को करता एक है, सभ कूं एक ही पेख॥[278]
रविदास दर्शन, 154

रविदास जी कहते हैं कि ब्राह्मण, मुल्ला या शेख़ – सभी परमात्मा के एक ही तेज से उत्पन्न हुए हैं। सबका सृजनकर्ता एक है। अतः सबको एक ही समान देखना चाहिये। आप समझाते हैं:

'रविदास' जाति मत पूछइ, का जात का पात।
बाह्मन खत्री बैस सूद, सभन की इक जात॥
रविदास दर्शन, 127

रविदास जी कहते हैं कि किसी की जाति मत पूछिये। जाति-पाँति में क्या रखा है? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – सबकी एक ही जाति (मानव-जाति) है।

नामदेव जी की वाणी है:

मारवाड़ि जैसे नीरु बालहा बेलि बालहा करहला॥[279]
जिउ कुरंक निसि नादु बालहा तिउ मेरै मनि रामईआ॥[280]
तेरा नामु रूड़ो रूपु रूड़ो अति रंग रूड़ो मेरो रामईआ॥[281]
जिउ धरणी कउ इंद्रु बालहा कुसम बासु जैसे भवरला॥[282]
जिउ कोकिल कउ अंबु बालहा तिउ मेरै मनि रामईआ॥[283]

चकवी कउ जैसे सूरु बालहा मान सरोवर हंसुला ॥[284]
जिउ तरुणी कउ कंतु बालहा तिउ मेरै मनि रामईआ ॥[285]
बारिक कउ जैसे खीरु बालहा चात्रिक मुख जैसे जलधरा ॥
मछुली कउ जैसे नीरु बालहा तिउ मेरै मनि रामईआ ॥
साधिक सिध सगल मुनि चाहहि बिरले काहू डीठुला ॥[286]
सगल भवण तेरो नामु बालहा तिउ नामे मनि बीठुला ॥[287]

आदि ग्रन्थ, पृ. 693

अलग-अलग उपमाओं के द्वारा प्रभु के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करते हुए नामदेव जी कहते हैं कि जैसे मारवाड़ यानी रेतीले ख़ुश्क इलाक़े के जीवों को जल प्यारा लगता है, ऊँट को खाने के लिये बेल प्यारी होती है और रात्रि के समय हिरण को नाद प्यारा लगता है, हे प्रभु! उसी प्रकार मुझे आपका नाम और रंग-रूप प्यारा लगता है। जिस प्रकार धरती को वर्षा, भँवरे को फूलों की सुगन्धि और कोयल को आम का वृक्ष प्यारा लगता है, वैसे ही हे प्रभु! आप मुझे प्यारे लगते हैं। जिस प्रकार चकवी को सूरज, हंस को मानसरोवर और युवती को अपना पति प्यारा लगता है, इसी प्रकार हे प्रभु! मुझे आप प्यारे लगते हैं। जैसे बच्चे को दूध, चात्रिक को स्वाति बूँद और मछली को जल से प्रेम होता है, ठीक उसी प्रकार हे प्रभु! मुझे आपसे प्रेम है। जिस प्रकार सब खण्डों-ब्रह्माण्डों में आपका नाम प्यारा है, इसी तरह हे स्वामी! मुझे आप प्यारे हैं। हे प्रभु! सिद्ध, साधक, ऋषि-मुनि आदि सब आपके दर्शनों के अभिलाषी हैं, परन्तु यह सौभाग्य किसी विरले को ही प्राप्त होता है।

नामदेव जी की वाणी है:

नाद भ्रमे जैसे मिरगाए॥ प्रान तजे वा को धिआनु न जाए ॥[288]
ऐसे रामा ऐसे हेरउ॥ रामु छोडि चितु अनत न फेरउ ॥[289]
जिउ मीना हेरै पसूआरा॥ सोना गढते हिरै सुनारा ॥[290]
जिउ बिखई हेरै पर नारी॥ कउडा डारत हिरै जुआरी ॥[291]
जह जह देखउ तह तह रामा॥ हरि के चरन नित धिआवै नामा॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 873

आप कहते हैं कि जिस प्रकार हिरण नाद की मधुर आवाज़ पर मुग्ध होकर अपनी जान दे देता है, इसी प्रकार मैं भी प्रभु पर मुग्ध हो गया हूँ और प्रभु के सिवाय मेरा मन किसी और वस्तु की ओर नहीं जाता। जिस प्रकार मछली पकड़ते समय मछलीमार पक्षी, अपना पूरा ध्यान मछली पर रखता है, सुनार सोने के ज़ेवर बनाते समय अपना पूरा ध्यान उस पर लगाता है, जैसे कामी पुरुष पर-नारी को एकटक निहारता रहता है और जैसे जुआरी अपना पूरा ध्यान कौड़ियों में रखता है, उसी प्रकार मेरा ध्यान पूरी तरह प्रभु में लीन है तथा मेरी लिव सदा हरि-चरणों से जुड़ी रहती है।

नामदेव जी समझाना चाहते हैं कि जिसको जिससे प्रेम होता है वह सदैव उसके ध्यान में खोया रहता है। वास्तव में ध्यान और प्रेम का अटूट सम्बन्ध है। जिससे प्रेम होता है, ध्यान बार-बार उसकी ओर जाता है और जिसकी ओर सदैव ध्यान रहता है, उससे प्रेम हो जाता है। आप कहते हैं कि मेरा ध्यान इस तरह प्रभु के चरणों में मग्न हो गया है कि मुझे हर तरफ़ केवल प्रभु दिखाई देता है।

ऐसे नामे प्रीति मुरारी

मोहि लागती तालाबेली॥ बछरे बिनु गाइ अकेली ॥[292]
पानीआ बिनु मीनु तलफै॥ ऐसे राम नामा बिनु बापुरो नामा ॥[293]
जैसे गाइ का बाछा छूटला॥ थन चोखता माखनु घूटला॥
नामदेउ नाराइनु पाइआ॥ गुरु भेटत अलखु लखाइआ ॥[294]
जैसे बिखै हेत पर नारी॥ ऐसे नामे प्रीति मुरारी ॥[295]
जैसे तापते निरमल घामा॥ तैसे राम नामा बिनु बापुरो नामा ॥[296]

आदि ग्रन्थ, पृ. 874

सन्त नामदेव जी प्रभु-प्रेम की प्रबलता और अपनी बेचारगी को प्रकट करते हुए कहते हैं कि मेरे अन्दर प्रभु का प्रेम इतना प्रबल हो गया है और प्रभु के बिना मैं ऐसे तड़पता हूँ जैसे बछड़े से बिछड़ी गाय बछड़े के लिये, पानी से बिछड़ी मछली पानी के लिये तड़पती है। प्रभु के मिलाप से मुझे

वही आनन्द प्राप्त होता है जो बछड़े को गाय का मक्खन जैसा दूध पीकर होता है। गुरु की कृपा से मेरा अलख-अगम प्रभु से मिलाप हो गया है। आप कहते हैं कि जैसे पराई स्त्री से प्रेम हो जाने पर कामी पुरुष का ध्यान पल भर के लिये भी उससे दूर नहीं होता, इसी तरह मैं भी पल भर के लिये भी प्रभु का ध्यान नहीं छोड़ सकता। जैसे बिना बादल के आकाश के नीचे कड़कती धूप की गर्मी से मनुष्य व्यथित हो जाता है, वैसे ही नामदेव भी प्रभु के वियोग में उससे मिलाप के लिये तड़प रहा है।

अस मन लाव राम रसना

अस मन लाव राम रसना। तेरो बहुरी न होय जरा मरना॥[297]
जैसे मृगा नाद लव लावै। बान लगे वहि ध्यान लगावै॥
जैसे कीट भृङ्ग मन दीन्ह। आपु सरीखे वा को कीन्ह॥[298]
नामदेव भनै दासन दास। अब न तजौं हरि चरन निवास॥[299]

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2335

नामदेव जी प्रेम-भक्ति पर बल देते हुए कहते हैं, "ऐ मेरी जिह्वा! तू प्रभु प्रेम का रूप बन जा। तू इस तरह से प्रभु के नाम का सिमरन कर कि तू सदा के लिये जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाए। आप दो सुन्दर उपमाओं द्वारा सच्चे प्रेम का भाव दृढ़ करवाते हुए कहते हैं कि राम-नाम से ऐसी प्रीति होनी चाहिये। जैसी हिरण की नाद से होती है। शिकारी हिरण को पकड़ने के लिये एक विशेष नाद या ढोल बजाते हैं। हिरण उसकी ध्वनि पर मस्त होकर शिकारी की तरफ़ दौड़ता है। शिकारी अपने बाण से उसे घायल कर देता है परन्तु फिर भी नाद में मस्त हिरण उसकी तरफ़ दौड़ता जाता है। आप कहते हैं कि भृंगी की कीट के साथ प्रीति होती है। वह अपने ध्यान द्वारा कीट को अपना ही रूप बना लेती है। प्रभु से मेरी भी ऐसी प्रीति है कि मैं उसके दासों का दास बन गया हूँ। आपका भाव है कि मुझे केवल प्रभु ही नहीं, उससे प्रेम करनेवाले उसके भक्त भी प्रिय हैं। मेरा मन प्रभु चरणों में इस तरह लीन हो गया है कि मैं इनके बिना अपने जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता।"

आवत जात परयौ मैं हारी

कहि मन गोविंद गोविंदा।
चरन कवल चितवनि जिनि बिसरै गोविंद गोविंद गोविंदा॥[300]
अंतरि गर्भ सह्यौ दुष भारी। आवत जात परयौ मैं हारी॥
भणत नांमदेव हरिगुण गाऊं। बहुरि न भवजल नीरौ आऊं॥[301]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 84

सन्त नामदेव जी उपदेश देते हैं कि हे मेरे मन! तू प्रभु की भक्ति में लग जा और कभी भी प्रभु के चरण-कमलों को न बिसार! तू हमेशा प्रभु के नाम का सिमरन कर और एक पल के लिये भी उसे मत भुला। याद रख कि तू बार-बार गर्भ की असह्य पीड़ा में से गुज़रा है। आप कहते हैं कि मैं बार-बार जन्म लेकर थक गया हूँ। अब मेरी यही प्रार्थना है कि मैं सदैव प्रभु-भक्ति में लगा रहूँ ताकि मैं आवागमन के चक्र से सदा के लिये मुक्त हो जाऊँ।

नामदेव जी कहते हैं:

तुझ बिन क्यूं जीऊं रे तुझ बिन क्यूं जीऊं।
तू मंझा प्रांन अधार तुझ बिन क्यूं जीऊं॥
सार तुम्हारा नांव है झूठा सब संसार।
मनसा बाचा कर्मना कलि केवल नांव अधार॥
दुनियां मैं दोजग घनां दारन दुष अधिक अपार।
चरन कंवल की मौज मैं मोहि राषौ सिरजन हार॥
मो तो बिचि पडदा किसा लोभ बडाई काम।
कोई एक हरिजन ऊबरे जिनि सुमिरयो निहचल रांम॥
लोग वेद कै संगि बह्यौ सलिल मोह की धार।
जन नांमा स्वामी बीठला, मोहि षेइ उतारौ पार॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 51

हे प्रभु, तू ही बता कि मैं तेरे बिना कैसे जीऊँ? तू ही मेरे प्राणों का आधार है। तू ही बता मैं कैसे जीऊँ? इस संसार में तेरे नाम के सिवाय सब

झूठ ही झूठ है। इस कलियुग में मन, वचन, कर्म से जिसने नाम को आधार बना लिया, उसके लिये दिखाई देनेवाला यह संसार और उसके पदार्थ नश्वर हैं, तेरा नाम ही सार-तत्त्व है।

संसार में इतने भयानक दु:ख हैं कि तेरे बिना यहाँ एक पल भी जीना नरक में रहने के समान लगता है। नामदेव जी प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! तू दया करके मुझे अपने चरणों की शरण दे दे। हे प्रभु! अपने मन और इसके विकारों की वजह से मेरे और तेरे बीच पर्दा पड़ गया है। तेरा कोई विरला सेवक ही तेरे नाम के सिमरन द्वारा इस पर्दे को बेध सकता है। हे प्रभु! लोग कर्मकाण्डों की प्रबल धारा में बहे जा रहे हैं, जब कि प्रभु-प्राप्ति का सच्चा साधन केवल नाम का सिमरन है। तू ही मेरा स्वामी है, मेरी नाव भवसागर में गोते खा रही है, उसे केवल तू ही भवसागर से पार उतार सकता है।

नामदेव जी कहते हैं:

हाथ उठाकर वेद ये कहते, है यही नियम,
बिन भक्ति न मिलती मुक्ति॥

भक्तीविण मोक्ष नव्हे हा सिद्धांत
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1925

वेद भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि भक्ति के बिना मोक्ष का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

दरिया साहिब कहते हैं:

भक्ति बिना कहीं ठौर ना पावै। कतनो दान पुन्य कथि लावै॥

दरिया योग दर्शन, पृ. 123

रामचरितमानस में लक्ष्मण के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री रामचन्द्र जी उपदेश करते हैं:

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

रामचरितमानस, 3:15:1-2

जिस साधन से मैं शीघ्र और अधिक प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है। भक्ति स्वतन्त्र और सच्चा सुख देनेवाला साधन है। यह आत्म-निर्भर है क्योंकि इसे ज्ञान, विज्ञान या किसी अन्य साधन या सहारे की आवश्यकता नहीं रहती, बल्कि अन्य सभी साधन इसके अधीन हैं। यह अनुपम आनन्द का स्रोत है, परन्तु इसकी प्राप्ति किसी सन्त-महात्मा की शरण द्वारा होती है।

नामदेव जी कहते हैं:

भगति आपि मोरे बाबुला। तेरी मुक्ति न मांगू हरि बीठुला॥[302]
भगति न आपै तौ तन आड़ौ। कोटि करै तौ भगति न छांड़ौ॥[303]
अनेक जनम भरमतौ फिरयो। तेरो नांव ले ले उधरयौ॥
नांमदेव कहै तू जीवन मोरा। तू साइर मैं मंछा तोरा॥[304]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 49

हे बाबुल! मुझे मुक्ति नहीं, प्रेमा-भक्ति चाहिये। अगर आपका प्रेम न मिला तो इस शरीर का क्या फ़ायदा? हे प्रभु! कोई मुझे करोड़ों प्रलोभन दे, तो भी मैं आपकी भक्ति नहीं छोड़ूँगा। मैं अनेक जन्मों से चौरासी के चक्र में भटकता फिर रहा हूँ। आपकी भक्ति से ही मेरा उद्धार हुआ है। हे प्रभु! आप ही मेरा जीवन हैं। अगर आप सागर हैं तो मैं मछली हूँ। आपके बिना मैं एक पल भी नहीं जी सकता।

रज़ा, शरण और प्रार्थना

प्रभु की प्राप्ति का साधन प्रभु का प्रेम, उसकी भक्ति यानी नाम की साधना है। नाम की साधना में सफलता के लिये सन्त नामदेव जी ने जीव को तन-मन से प्रभु की शरण लेने, उसकी रज़ा में राज़ी रहने तथा नम्रतापूर्वक उसकी दया के लिये प्रार्थना करते रहने का उपदेश दिया है।

प्रभु की रज़ा

सन्त-महात्मा समझाते हैं कि प्रभु का प्रेम, उसकी रज़ा का प्रेम पैदा करता है। वह प्रभु सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञाता, प्रेम-रूप तथा दया-रूप है। नामदेव

जी ने दुनियावी मिसालों के ज़रिये रज़ा के सिद्धान्त को समझाया है। पहली मिसाल पिता-पुत्र की है। आत्मा पुत्र है, वह इसका पिता है। वह प्रेम-रूप, दया-रूप, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् पिता कुछ भी ऐसा नहीं करता, जिसमें पुत्र का हित निहित न हो। वास्तव में पिता पुत्र का हित ही चाहता है। इसलिये जीवात्मारूपी पुत्र का, प्रभुरूपी पिता की रज़ा को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेना ही उसका सच्चा धर्म है।

दूसरी मिसाल पति-पत्नी की देते हुए नामदेव जी कहते हैं:

मै बउरी मेरा रामु भतारु॥ रचि रचि ता कउ करउ सिंगारु॥[305]
भले निंदउ भले निंदउ भले निंदउ लोगु॥ तनु मनु राम पिआरे जोगु॥[306]
बादु बिबादु काहू सिउ न कीजै॥ रसना राम रसाइनु पीजै॥
अब जीअ जानि ऐसी बनि आई॥ मिलउ गुपाल नीसानु बजाई॥[307]
उसतति निंदा करै नरु कोई॥ नामे स्रीरंगु भेटल सोई॥[308]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1164

मैंने प्रभुरूपी पति के प्रेम में बावरी होकर, उसको रिझाने के लिये भक्ति का शृंगार किया है। लोग मुझ पर चाहे ताने कसें या मेरी निन्दा करें, न मेरे कान यह निन्दा सुनने की परवाह करते हैं, न मेरा मन निन्दा सुनकर दुःखी होता है क्योंकि मैंने अपना तन-मन अपने प्यारे प्रभु पर क़ुरबान कर दिया है। मैं किसी से वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहती। मेरी सिर्फ़ एक ही चाहत है कि मेरी रसना सदैव प्रभु-प्रेम के अमृत में भीगी रहे। अब ऐसी हालत बन गई है कि मैं बेपरवाह होकर अपने प्रभु से मिल रही हूँ। चाहे कोई मुझे भला कहे या बुरा, मुझ नामे को परमात्मा मिल गया है।

नामदेव जी समझाना चाहते हैं कि सच्चा प्रभु-भक्त सुख-दुःख, अमीरी-ग़रीबी, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति को प्रभु की मौज समझकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेता है। जिस हाल में भी प्रभु उसे रखता है, वह उसी में राज़ी रहता है। तीसरी मिसाल स्वामी और दास की देते हुए आप कहते हैं:

साहिबु संकटवै सेवकु भजै॥ चिरंकाल न जीवै दोऊ कुल लजै॥[309]
तेरी भगति न छोडउ भावै लोगु हसै॥ चरन कमल मेरे हीअरे बसैं॥[310]

जैसे अपने धनहि प्रानी मरनु मांडै॥ तैसे संत जनां राम नामु न छाडैं॥[311]
गंगा गइआ गोदावरी संसार के कामा॥ नाराइणु सुप्रसंन होइ त
सेवकु नामा॥[312]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1195

प्रभु स्वामी है तथा भक्त दास है। दास का धर्म है कि वह स्वामी द्वारा दिये गए कष्ट से घबराकर, स्वामी का घर छोड़कर भाग न जाए। अगर वह स्वामी से विमुख हो जाता है तो इससे उसके कुल लज्जित होते हैं और उसका जीवन मृत्यु से भी बदतर हो जाता है। आपका भाव है कि भले ही जीवन अनेक प्रकार के दुःखों और कष्टों से भर जाए तो भी मन को प्रभु-भक्ति में विलीन रखने का प्रयत्न करना चाहिये।

आप कहते हैं, "हे प्रभु! चाहे लोग मुझ पर कितना ही हँस लें, मैं तेरी भक्ति कभी नहीं छोड़ूँगा। मेरे हृदय में तेरे चरण-कमलों का प्रेम सदा बसा रहेगा। जिस प्रकार लोग अपने धन के लिये मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं, उसी प्रकार सन्तजन नाम (धन) नहीं छोड़ते, उनके लिये प्रभु का 'नाम' ही 'धन' है। गंगा, गोदावरी, गया आदि धर्म-स्थानों में जाना दुनियावी रीत है, लेकिन नामे के लिये प्रभु का प्रसन्न होकर उनका सेवक गिना जाना ही सब कुछ है।"

नामदेव जी समझाना चाहते हैं कि दुःख और सुख दोनों में समान रूप से प्रभु-भक्ति में लगे रहना चाहिये। यदि हम दुःखों से घबराकर या सुखों के वेग में बहकर प्रभु को भूल जाएँगे तो फिर उसे याद कब करेंगे? दुःख-सुख जीवन का अनिवार्य अंग हैं। मानव-शरीर पूर्व-जन्मों के पुण्य तथा पाप कर्मों का फल है। पुण्य-कर्मों के कारण सुख मिलेंगे तो पाप-कर्मों के कारण दुःख भी भोगने पड़ेंगे। इसलिये इन दोनों को प्रभु का प्रसाद समझकर सदैव उसके प्रेम में मग्न रहना चाहिये।

जिउ रामु राखै तिउ रहीऐ रे भाई

कबहू खीरि खाड घीउ न भावै॥ कबहू घर घर टूक मगावै॥[313]
कबहू कूरनु चने बिनावै॥ जिउ रामु राखै तिउ रहीऐ रे भाई॥[314]

हरि की महिमा किछु कथनु न जाई॥
कबहू तुरे तुरंग नचावै॥ कबहू पाइ पनहीओ न पावै॥[315]
कबहू खाट सुपेदी सुवावै॥ कबहू भूमि पैआरु न पावै॥[316]
भनति नामदेउ इकु नामु निसतारै॥ जिह गुरु मिलै तिह पारि उतारै॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1164

नामदेव जी कहते हैं कि प्रभु की मौज को समझ सकना असम्भव है। कभी तो जीवन में ऐसे नाना प्रकार के पदार्थ खाने को मिलते हैं कि मन दूध, घी आदि मीठे पदार्थों से उकता जाता है। कभी ऐसा वक़्त आ जाता है कि घर-घर जाकर भीख माँगनी पड़ती है और कूड़े करकट के ढेर से अन्न के दाने चुगने पड़ते हैं। प्रभु जिस हाल में रखे, उसी में राज़ी रहना चाहिये। प्रभु की महिमा का वर्णन कर पाना असम्भव है।

कभी व्यक्ति इतना समृद्ध हो जाता है कि वह ज़ोर-शोर से घुड़सवारी करता है, घोड़ों को नचाता फिरता है और कभी ऐसी अवस्था हो जाती है कि उसे पाँव में पहनने के लिये जूता भी नसीब नहीं होता। कभी उसे आराम करने के लिये बढ़िया पलंग मिल जाता है और कभी सोने के लिये ज़मीन पर बिछाने को घास भी नहीं मिलती। नामदेव जी कहते हैं कि इन सब परिस्थितियों में प्रभु की रज़ा में राज़ी रहने का सामर्थ्य गुरु की बताई युक्ति द्वारा नाम का अभ्यास करने से प्राप्त होता है।

प्रभु का सच्चा भक्त सदैव अपने आपको प्रभु की इच्छा के अधीन रखता है। उसे प्रभु, शक्ति तथा ज्ञान का ही नहीं, प्रेम तथा दया का सागर प्रतीत होता है। उसे पूर्ण विश्वास होता है कि प्रभु कभी भी कुछ ऐसा नहीं कर सकता जिसमें उसके भक्त का सच्चा हित निहित न हो। उसे पूर्ण भरोसा होता है कि यदि प्रभु सुख में उसका भला सोचता है तो उसे सुख देगा, यदि दुःख में उसका भला सोचता है तो दुःख देगा। दुःख-सुख अपने ही पूर्व-जन्मों के कर्मों के कारण मिलते हैं और सच्चा प्रभु-भक्त उन्हें अपने प्रियतम का प्रसाद समझकर खिले मन से प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेता है।

नामदेव जी कहते हैं:

जौ राजु देहि त कवन बडाई॥ जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई॥[317]
तूं हरि भजु मन मेरे पदु निरबानु॥ बहुरि न होइ तेरा आवन जानु॥
सभ तै उपाई भरम भुलाई॥ जिस तूं देवहि तिसहि बुझाई॥
सतिगुरु मिलै त सहसा जाई॥ किसु हउ पूजउ दूजा नदरि न आई॥[318]
एकै पाथर कीजै भाउ॥ दूजै पाथर धरीऐ पाउ॥[319]
जे ओहु देउ त ओहु भी देवा॥ कहि नामदेउ हम हरि की सेवा॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 525

परमात्मा का सच्चा भक्त सदैव उसकी रज़ा में राज़ी रहता है। वह स्तुति-निन्दा, मान-अपमान आदि के द्वैत से ऊपर उठ जाता है। वह जीवन के हर प्रकार के उतार-चढ़ाव में अडोल और शान्तचित्त रहता है। नामदेव जी कहते हैं कि मैंने अपने आपको पूरी तरह से प्रभु-चरणों में समर्पित कर दिया है। यदि मुझे राज-पाट भी हासिल हो जाए तो इसमें मेरी क्या बड़ाई है और यदि प्रभु मुझे भिखारी बना दे तो मेरा क्या घट जाएगा? अगर मुझे दुनिया के सब सुख-आराम मिलते हैं तो भी मैं प्रभु-भक्ति नहीं छोड़ूँगा और अगर परमात्मा मुझे दर-बदर का भिखारी बना दे तो भी मैं उसका दर नहीं छोड़ूँगा। हे मेरे मन! तू हर हाल में प्रभु-भक्ति में लगा रह ताकि तुझे पुनः इस आवागमन के चक्र में न आना पड़े। हे मालिक! दुनिया के सब जीव तेरे ही पैदा किये हुए हैं और तूने ही उन्हें भ्रमों में डाला हुआ है। जिस पर तेरी कृपा हो जाती है, वही तेरी रज़ा को समझ पाता है। तेरी दया से जिसका पूरे गुरु से मिलाप हो जाता है, उसके सब भ्रम और संशय मिट जाते हैं। हे प्रभु! तेरे सिवाय मुझे कोई दूसरा पूजा के योग्य नज़र नहीं आता। लोग एक पत्थर की तो पूजा करते हैं और दूसरे पर पाँव रखते हैं, अगर एक पत्थर में प्रभु है तो दूसरे पत्थर में भी है। मैं तो उस सर्वव्यापी परमपिता परमेश्वर का सेवक हूँ।

परमेश्वर सर्वशक्तिमान है। वह अपनी मौज का मालिक है। उसने अपनी मौज में कुछ लोगों को सत्य-मार्ग के ज्ञान का वरदान बख़्श दिया है और कुछ लोगों को भ्रमों में भुला दिया है। जब पूरा सतगुरु मिल जाता है तो

सच्चा ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। नामदेव जी कहते हैं कि एक तरफ़ तो पत्थर को तराशकर उसकी देव मूर्ति को पूजा जाता है, उसी पत्थर को पैरों से ठेला जाता है। सोचो! क्या ऐसी भक्ति से परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है?

सच्चा प्रेमी अपने आपको प्रियतम की इच्छा के अनुसार ढालने का यत्न करता है, प्रियतम को अपनी इच्छा के अधीन करने का यत्न नहीं करता। परमात्मा के सच्चे भक्त परमात्मा की तरह पूर्ण सामर्थ्य रखते हुए भी, ऋद्धियों-सिद्धियों में नहीं पड़ते। वे सदैव प्रभु के दास बने रहते हैं और विनम्रभाव से उसकी भक्ति करते हैं।

प्रभु की इच्छा और ऋद्धि-सिद्धि

नामदेव जी इस बात पर भी प्रकाश डालते हैं कि प्रभु का सच्चा प्रेमी कभी भूलकर भी ऋद्धि-सिद्धि और करामात के प्रलोभन में नहीं पड़ता। वह अपनी इच्छा को प्रभु की इच्छा में पूर्णत: विलीन कर देता है और कभी भी उसकी इच्छा का उल्लंघन नहीं करता। आप कहते हैं:

भेद षट्चक्र कर उर्ध्व गमन, प्रकट होती वहाँ अनाहत धुन,[320]
सुनकर धुन शान्त हुआ मन, यूँ हुई साधना सफल।
पार उसके मिलती रिद्धि-सिद्धि, करती जो स्वप्थ से विचलित,
फँसे इसमें कई योगी जन, ऐसी साधना का क्या फल।
योगी करते साधना पाकर कष्ट, जिससे होता शरीर जर्जर,
प्राप्त कर सिद्धि मार्ग में आते विघ्न, खो देते आत्मिक धन।
बेधती न कभी वायु की गठर, ना समझे ये मन्द अक़्ल,[321]
कहे नामा छोड़ प्रेम-भक्ति, मूर्ख जन करते दूजी युक्ति॥

षड्चक्र भेदोनी जातां ऊर्ध्वपंथें
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2037

ऋद्धि-सिद्धि आदि शक्तियों के उपयोग का निषेध करते हुए आप कहते हैं कि शरीर में आँखों से नीचे छ: चक्र हैं जिनमें अलग-अलग शक्तियों का वास है। इन छ: चक्रों को बेधकर ऊपर जाने से अनहद ध्वनि प्रकट

होती है। उस ध्वनि को सुनने से मन मग्न हो जाता है और वश में आ जाता है। इस योग-साधना के दौरान कई प्रकार की सिद्धियाँ आदि प्राप्त हो जाती हैं, जो अभ्यासी को पथ से विचलित करने का प्रयत्न करती हैं। इन सिद्धियों के उपयोग से आध्यात्मिक उन्नति में बाधा पड़ती है। जिन्हें सच्चा गुरु या मार्गदर्शक नहीं मिलता, वे लोग अक्सर इन ऋद्धियों-सिद्धियों के माया-जाल में फँस जाते हैं। योगी अनेक कष्ट झेलकर योग-साधना करते हैं, जिससे उनका शरीर भी जर्जर हो जाता है। घोर तपस्या तथा अनेक कष्ट सहने के बाद प्राप्त की गई शक्ति को, केवल आध्यात्मिक उन्नति के लिये प्रयोग में लाना चाहिये। इसे करामात में नष्ट नहीं कर लेना चाहिये। वायु की गठरी नहीं बाँधी जा सकती। इसी तरह ऋद्धियों-सिद्धियों द्वारा प्रभु से मिलाप नहीं किया जा सकता। नामदेव जी उन लोगों को महामूर्ख बताते हैं जो प्रभु-भक्ति का सुगम, आनन्ददायक तथा लाभप्रद मार्ग छोड़कर अन्य अनेक साधनों में उलझकर मानव-जन्म का अमूल्य अवसर व्यर्थ गँवा देते हैं।

पूर्ण सन्त-महात्मा ही जीवों को समझाने का यत्न करते हैं कि आध्यात्मिक उन्नति के लिये कुल-मालिक की रज़ा में राज़ी रहना आवश्यक है। करामात करके दिखानेवाला व्यक्ति यह सिद्ध करने का यत्न करता है कि जो प्रभु ने नहीं किया, उसे वह करके दिखा सकता है। संसार में कुछ भी मुफ़्त नहीं मिलता। करामात दिखानेवाला जो कुछ करता है, अपनी साधना द्वारा अर्जित की गई शक्ति को ख़र्च करके करता है। एक तरह से वह प्रभु की रज़ा में राज़ी रहने की बजाय, प्रभु को अपने मन की इच्छा के अधीन करने का यत्न करता है जिसके लिये उसे भारी क़ीमत चुकानी पड़ती है।

अठ सिधि नव निधि करत निहोरौ

रांमसो धन ताको कहा अब थोरौ। अठ सिधि नव निधि करत निहोरौ॥[322]
हरिन कसिब बधकरि अधपति देई। इंद्रकौ विभौ प्रहलाद न लेई॥[323]
देव दांनव जाहि संपदा करि मानै। गोविंद सेवग ताहि आपदा करि जानै॥

अर्थ धरम काम की कहा मोषि मांगै। दास नांमदेव प्रेम भगति अंतरि
जो जागै ॥[324]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 3

नामदेव जी कहते हैं कि प्रभु को पाकर जीव इतना समृद्ध हो जाता है कि वह आठ सिद्धियों और नौ निधियों, जो उसके आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, की ओर देखता तक नहीं। नाम-मार्ग का साधक तथा सच्चा प्रभु-भक्त कभी भी ऋद्धियों-सिद्धियों के चक्कर में पड़कर अपनी साधना को नष्ट नहीं करता। हम सब जानते हैं कि हिरण्यकश्यप अपने बेटे प्रह्लाद को राजपाट और हर प्रकार के वैभव देना चाहता था, पर प्रह्लाद ने प्रभु-भक्ति को ही अपनाया; उसने इन्द्र के वैभव को भी ठुकरा दिया। जिस वैभव को पाने के लिये देवता और दानव दोनों प्रयत्नशील रहते हैं, प्रभु के सच्चे भक्त उसे बन्धन समझते हैं। वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा नहीं रखते, वे तो केवल प्रभु की भक्ति में ही मग्न रहना चाहते हैं।

पलटू साहिब की वाणी है:

संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार ॥[325]
नहीं पदारथ चार मुक्ति संतन की चेरी।
ऋद्धि सिद्धि पर थुकैं स्वर्ग की आस न हेरी॥
तीरथ करहिं न बर्त नहीं कुछ मन में इच्छा।
पुन्य तेज परताप संत को लगै अनिच्छा॥
ना चाहैं बैकुंठ न आवागवन निवारा।
सात स्वर्ग अपबर्ग तुच्छ सम ताहि बिचारा॥
पलटू चाहै हरि भगति ऐसा मता हमार।
संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार॥

पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुण्डली 57

आप कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त चार पदार्थ, मुक्ति, ऋद्धि-सिद्धि, स्वर्ग-बैकुण्ठ आदि किसी चीज़ की इच्छा नहीं रखते। वे सदैव प्रभु के प्रेम तथा प्रभु की भक्ति में मग्न रहना चाहते हैं।

समर्पण और प्रार्थना

प्रभु के प्रेम तथा प्रभु की भक्ति का मूल आधार यह दृढ़ विश्वास है कि जीवात्मा की अन्तिम भलाई अपने आपको पूरी तरह प्रभु को समर्पित कर देने में है। पूरी तरह से बिना शर्त अपने आपको उस दयालु प्रभु को समर्पित कर देने से उसे न स्वार्थ की चिन्ता रहती है, न परमार्थ की। इसलिये सन्त नामदेव जी उपदेश देते हैं कि तुम पूरी तरह उस समर्थ पुरुष की शरण में आ जाओ और उससे दया की भीख माँगो। तुम प्रभु से संसार की किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने की भूल न करो। प्रभु से प्रभु को माँगो। प्रभु से उसका प्रेम माँगो। प्रभु से उसकी दया माँगो। प्रभु के बिना और कुछ भी माँगना, प्रभु के ज्ञान, उसके प्रेम तथा उसकी दया पर सन्देह करना है। जो व्यक्ति प्रभु के सामने किसी सांसारिक वस्तु के लिये प्रार्थना करता है, वह एक तरह से प्रभु को यह बताना चाहता है कि उसे प्रभु से अधिक ज्ञान है और प्रभु को उसकी भलाई के बारे में कुछ पता नहीं है। सन्त नामदेव जी एक असहाय बालक की तरह अपने प्रभु पिता से विनती करते हैं:

लोभ लहरि अति नीझर बाजै॥ काइआ डूबै केसवा॥[326]
संसारु समुंदे तारि गोबिंदे॥ तारि लै बाप बीठुला॥[327]
अनिल बेड़ा हउ खेवि न साकउ॥ तेरा पारु न पाइआ बीठुला॥[328]
होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मो कउ॥ पारि उतारे केसवा॥
नामा कहै हउ तरि भी न जानउ॥ मो कउ बाह देहि बाह देहि बीठुला॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1196

हे बीठुला, हे मेरे परमपिता! उफनती हुई लोभ की लहरों में मैं ग़ोते खा रहा हूँ। मैं अपने बल-बूते से कभी भी इस भयानक समुद्र को पार नहीं कर सकता। आप दयालु हैं। आप कृपा करके जैसे भी हो, मुझे इस भयानक समुद्र से पार कर दें। मेरे जीवन की नैया तूफ़ानी भवसागर में हिचकोले खा रही है। मैं इसे खेने में असमर्थ हूँ। आप ही मेरा बेड़ा पार करें। मुझे तो दूसरा छोर ही (जहाँ तू खड़ा है) दिखाई नहीं देता। हे कृपानिधान! मेरा मिलाप सतगुरुरूपी नाविक से करवा दें जो मुझे अपनी दया द्वारा भवसागर

से पार ले जाए। हे मेरे दयालु पिता! मैं तैरना भी नहीं जानता। आप मुझे **अपनी बाँह** पकड़ाकर पार कर दें।

सन्त नामदेव जी सतगुरु की शरण के लिये प्रार्थना करते हैं, क्योंकि **सतगुरु** निराकार प्रभु का साकार रूप हैं। वास्तव में सतगुरु की शरण ही **प्रभु** की शरण है और सतगुरु की शरण का अर्थ मन-मर्ज़ी के यत्नों को त्यागकर सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु-भक्ति तथा नाम की कमाई में लग जाना है। शरण बातों का मज़मून नहीं है। यह प्रभु की रज़ा में राज़ी रहते हुए तन-मन से प्रभु-भक्ति अथवा नाम की कमाई करने पर आधारित है। नामदेव जी की वाणी है:

माधौ कैसै कीजै जोग।[329]
करत जोग बहुत कठिनाई तजि न सकौं या भोग॥
नहीं मेरे रहणीं नहीं मेरे करणीं, बंध्यौ पंच बसि पोष॥[330]
नहीं मेरे ग्यान नहीं मेरे ध्यांना, ब्यापै हरि षरसोक॥[331]
मैं अनाथ सुकृत हीनौं, तुम्हथै पर्‌यौ बियोग॥[332]
भणत नामदेव हरि सरणिं राषियौ, नहीं तौ हंसि हैं लोग॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2300

हे प्रभु! मैं असमंजस में हूँ कि आपसे मेरा मिलाप कैसे हो पाएगा। मुझ निर्बल का मन बुरी तरह भोगों में लिप्त है, जिस कारण मेरे लिये योग की साधना कर पाना सर्वथा असम्भव है। न मेरी रहनी योग-साधना के अनुकूल है और न ही करनी, बल्कि काम, क्रोध आदि पाँचों विकारों ने मुझे बुरी तरह जकड़ा हुआ है। हे प्रभु! मेरी बुद्धि भ्रमित है। न मुझमें विवेक है, न ही ध्यान कर सकने की क्षमता है। इसलिये मेरा हृदय शोकाकुल है। मैं अनाथ हूँ। आपके बिना मेरा और कोई सहारा नहीं। मैं अवगुणों से भरा हुआ हूँ। मैंने कोई भी शुभ-कर्म नहीं किया है। मैं आपके वियोग की पीड़ा से व्याकुल हूँ। हे प्रभु! शरणागत की लाज रख लें, नहीं तो लोग आपके भक्त की हँसी उड़ाएँगे।

इसी भाव को आप अपनी वाणी में इस तरह व्यक्त करते हैं:

संसार समंदे तारि गोबिंदे। हुं तिरही न जानूं बाप जी॥[333]
लोभ लहरि अति नीझर बरिषै। काया बूड़े केसवा॥
अनिल बेडा षेइ न जानूं। पार दे पार दे बीठला॥[334]
नांमा कहै मैं सेवग तेरा। बांह दे बांह दे बाबुला॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2156

हे विट्ठल! तू मुझे संसार-सागर से पार लगा, मुझे तो तैरना भी नहीं आता। मेरी जीवनरूपी नौका लोभ की तूफ़ानी लहरों के कारण डाँवाँडोल हो रही है, मैं इसे खेने में असमर्थ हूँ। तू ही मेरा बेड़ा पार कर दे। हे मेरे बाबुला! मैं तेरा सेवक हूँ। तू मुझे अपनी बाँह का सहारा देकर पार लगा दे।

वियोग में तड़प रही असहाय अबला की ओर से प्रार्थना करते हुए आप कहते हैं:

माधव भीतर मारो हेली। अबला कां बल कहा गुसाई।[335]
परथक जाय न पेली॥
ये अनेक मैं एक गुसाई। कहो कहां बस मेरा।
खेत की पहुंच काहानु राखौ। खसमन करै ही फेरा॥[336]
तुमसे बेद न ओखद औरे। मंत्र और नहीं जाना।
ब्याद असाद अगांध दया निधि। पचपच गये समाना॥[337]
जिनकु तुम हरि कारी किन्ही। बिथा और नहीं व्यापी।
नामदेव कहे नहीं बस मेरा। क्रिपा करो दुख कापी॥[338]

सन्त नामदेव, पद 231

हे दीनानाथ! मैं आपके वियोग में तड़प रही असहाय अबला हूँ। मैं आपको देख नहीं सकती, परन्तु आप मुझे देख रहे हैं। मैं स्वयं आपके पास नहीं पहुँच सकती, इसलिये आप ही कृपापूर्वक स्वयं मुझे आवाज़ देकर अपने पास बुला लें या मेरे पास आकर मेरी बाँह पकड़ लें। हे प्रभु! मुझ अकेली अबला को अनेक दुश्मनों ने घेर रखा है। मैं स्वयं कदापि इनसे अपना बचाव नहीं कर सकती। खेती की रक्षा करना किसान का तथा स्त्री की रक्षा करना

पति का कर्तव्य है। मुझ जीवात्मा की रक्षा करना आपका धर्म है। हे प्रभु! मैं अनेक रोगों से पीड़ित हूँ। आप वह वैद्य हैं जिसके पास हर रोग का उपचार है। हे प्रभु! अपने बल और बुद्धि द्वारा अपना उपचार तथा बचाव करने का प्रयत्न करनेवाले अनगिनत लोग भवसागर में डूब चुके हैं, परन्तु जिन पर आपकी दया-दृष्टि पड़ गई, वे हर प्रकार के रोगों से सदा के लिये मुक्त हो गए। हे प्रभु! मैं बिल्कुल विवश हूँ, मेरा कोई ज़ोर नहीं चलता। आप कृपापूर्वक मुझे शत्रुओं से बचा लें तथा असाध्य रोगों से मुक्त कर दें।

निर्बल जीव की करुणामय स्थिति का वर्णन करते हुए नामदेव जी कहते हैं:

बंदे की बंदि छोडि बनवारी।
असरन सरनि राम कहे बिन आइ परे जम धारी॥
केई बांधे जोग जप करि केई तीरथ दांना।
केई बांधे नेमा बरतां तेरे हाथि नाथ भगवाना॥
रामदेव तेरी दासी माया नाटी कपट कीन्हां।
थावर जंगम जीति लिया है आपा पर नहीं चीन्हां॥[339]
नांमदेव भणै मैं तुम थैं छूंटूं जो तुम छोडावौ गोपालजी।[340]
तुम बिन मेरे गाहक नांही दीनानाथ दयाल जी॥

श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2158

हे प्रभु! समस्त सृष्टि आपकी इच्छा का प्रसार है। मैं भी आपकी इच्छा से ही सृष्टि से बँधा हुआ हूँ। मैं स्वयं इस बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। आपकी शरण को छोड़कर कोई दूसरा सहारा लेनेवाले कभी भी यमदूतों की मार से नहीं बच सकते। नामदेव जी सावधान करते हैं कि मन-माया तथा आवागमन के जाल में बँधे लोग इससे मुक्ति प्राप्त करने के लिये जप-तप, तीर्थ-व्रत, दान-पुण्य आदि अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों का सहारा लेते हैं जब कि बन्धन-मुक्ति का वास्तविक साधन प्रभु अथवा सतगुरु की शरण है। आप कहते हैं, "हे प्रभु! आपके इच्छानुसार कार्यशील माया ने संसार के सब प्राणियों को बुरी तरह से अपने जाल में फँसा रखा है। माया से प्रभावित लोग भक्ति के मनचाहे अनेक साधनों का सहारा

लेते हैं। वे नाम की कमाई द्वारा मन को इन्द्रियों से और आत्मा को मन से अलग करके अपने आत्मिक स्वरूप को पहचानने की ओर ध्यान नहीं देते। फलस्वरूप वे सदैव मोह-माया तथा आवागमन के चक्र में बँधे रहते हैं। हे दीनानाथ! मोह-माया के जाल से मुक्ति प्राप्त कर सकना मेरे वश की बात नहीं है। आपने ही मुझे इस बन्धन में डाला है और आप ही मुझे इससे मुक्त कर सकते हैं। इसलिये मैं दूसरे सब सहारे त्यागकर आपकी शरण में आ गया हूँ।"

नामदेव जी निर्मल परमार्थ के इस सरल, परन्तु महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त पर प्रकाश डाल रहे हैं कि सर्वशक्तिमान प्रभु की इच्छा द्वारा रचना से बँधा जीव केवल उसकी इच्छा अथवा दया से ही इससे मुक्त हो सकता है। इसलिये जीवात्मा को दूसरे सब यत्न छोड़कर प्रभु अथवा सतगुरु की शरण प्राप्त करके उसके सम्मुख मुक्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। नामदेव जी की वाणी है:

मैया तू मेरी, मैं बालक तेरा,
हे प्रभु, हो प्रेम मगन, मुझको प्रेम पय पिला॥[341]
गैया माँ मेरी, मैं बछड़ा तेरा,
हे प्रभु, प्रेम-पय से अपने, न दूर करा।
मृगी माँ तू मेरी, मैं शावक तेरा,[342]
हे प्रभु, भव-बंधन से मुझको ले छुड़ा।[343]
पाँखी माता तू मेरी, मैं अण्डज तेरा,[344]
हे प्रभु, मेरे लिये प्रेम का दाना ला।
कछुवी अपलक हो, ज्यों सेती अण्डों को,
हे प्रभु, मुझ पर भी कर ऐसी कृपा।
रक्षक - मार्गदर्शक मेरा तू,
कहता है नामा, हे प्रभु।
प्रेम-भक्ति है तुझको प्यारी,
सँभाल मुझे जान कर शिशु।

तूं माझी माउली मी वो तुझा तान्हा
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1484

नामदेव जी परमेश्वर के आगे भक्ति-भाव से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! तू मेरी माँ है और मैं तेरा नन्हा-सा बालक हूँ। मुझे अपने प्रेम का दूध पिला। तू मेरी गाय है और मैं तेरा बछड़ा हूँ। मुझे अपने प्रेम के दूध से वंचित मत कर। हे प्रभु! तू मेरी हिरनी माँ है और मैं तेरा शावक हूँ, तू मेरी बेड़ी तोड़ दे। हे प्रभु! तू मेरी पक्षी माँ है और मैं तेरा नन्हा-सा पंछी बच्चा हूँ, तू मुझे मेरा चोगा दे। कछुवी पानी में रहती है, परन्तु उसकी दृष्टि हरदम बाहर सूखी जगह में छिपे अण्डों पर रहती है। वह अपने ध्यान से ही उन्हें सेती और पालती है। हे प्रभु! वैसी ही दया-दृष्टि मुझ पर बनाए रख। नामदेव जी कहते हैं कि हे प्रभु! तू ही मेरा मार्गदर्शक और रक्षक है, तुझे प्रेम-भक्ति प्यारी है। तू मुझ निर्बल बालक की सँभाल कर। नामदेव जी की वाणी है:

मूक हो कि विक्षिप्त बालक,[345]
करता पिता उसके भले की चिन्ता।
कर रहमत मुझ पर,
मेरा भी पोषण कर मेरे परमपिता।
अन्तर में दे, मुझे कोई निशानी,
हृदय आत्मा में रखूँगा नाम सँभाल।
चरणों में तेरे अर्पित, मेरा चित्त-वित्त,[346]
कहें नामदेव, अगर कहलाया मैं अभागा, होगा कौन लज्जित।

अपत्याचें हित किजे त्या जनकें
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1564

बालक पागल, गूँगा या रोगी हो, तो भी पिता उसकी भलाई चाहता है। वह प्रेम से उसका पालन तथा रक्षा करता है। नामदेव जी प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मैं भी आपका असहाय पागल, गूँगा और रोगी बालक हूँ, आप मेरी रक्षा तथा सँभाल करें। मैं आपके नाम को लाज नहीं लगने दूँगा। मैं कोई भी ऐसा काम नहीं करूँगा जिससे आप पर उँगली उठे। मेरा तन, मन, धन आपके चरणों में अर्पित है। मैं बाक़ी सब सहारे छोड़कर तन-मन से आपकी शरण में आ गया हूँ। शरण में आए हुए की लाज रखना आपका

स्वभाव है। यदि आप मेरी लाज नहीं रखेंगे तो दोष आपको ही दिया जाएगा। नामदेव जी की वाणी है:

चाहे गिरे आकाश सिर पर, प्रभु! मैं न छोड़ूँ तेरे चरण।
मीठे हैं तेरे चरण, सदा ही मीठे हैं तेरे चरण॥
पर्वत की तरह है जो हठी, उसे समझाने का बेकार है यत्न॥
कहे नामदेव, कैसे मैं करूँ तेरा वर्णन।
हैं शब्द असमर्थ, करूँ कुछ और जतन॥

तुटोनि आकाश पडेलहि शिरीं
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 536

नामदेव जी कहते हैं कि हे प्रभु! चाहे आकाश फटकर मेरे सिर पर आ गिरे, भले ही मेरे ऊपर आपदाओं के पर्वत टूट पड़ें, मैं आपके चरणों को नहीं छोड़ूँगा। आपके चरण मीठे, प्यारे और सुखदायी हैं। मैं किसी हालत में भी आपकी शरण नहीं छोड़ूँगा। आप विनती करते हैं कि हे प्रभु! आप पर्वत की तरह कठोर न बनें, बल्कि मेरे अवगुणों को क्षमा कर दें। मुझ में आपकी महानता का गुणगान कर सकने की क्षमता नहीं है। यदि कोई दूसरा आपकी महिमा बयान कर सकता है तो मुझे भी यह युक्ति समझा दें। आप समझाना चाहते हैं कि निर्बल जीव का अपने प्रयत्न द्वारा उस सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ प्रभु को समझ सकना असम्भव है। जीवात्मा केवल प्रभु की शरण द्वारा ही भवसागर से पार जा सकती है।

मै अंधुले की टेक

मै अंधुले की टेक तेरा नामु खुंदकारा॥[347]
मै गरीब मै मसकीन तेरा नामु है अधारा॥[348]
करीमां रहीमां अलाह तू गनी॥[349]
हाजरा हजूरि दरि पेसि तूं मनी॥[350]
दरीआउ तू दिहंद तू बिसीआर तू धनी॥[351]

देहि लेहि एकु तूं दिगर को नही॥
तूं दानां तूं बीनां मै बीचारु किआ करी॥[352]
नामे चे सुआमी बखसंद तूं हरी॥[353]

आदि ग्रन्थ, पृ. 727

नामदेव जी कहते हैं कि हे दयालु प्रभु! जैसे अन्धे को लाठी का सहारा होता है, वैसे ही तेरा नाम मुझ ग़रीब और अनाथ का सहारा है। हे प्रभु! तू दया का भण्डार है। तू बख़्शनहार है, तू मुझे सर्वत्र व्यापक दिखाई देता है। तू समुद्र से भी अधिक विशाल है और तेरे भण्डार अनगिनत रहमतों से भरे हुए हैं। तू सच्चा दाता है। देनेवाला भी तू ही है और लेनेवाला भी तू ही है। तेरे बिना कोई दूसरा नहीं है, तू सर्वज्ञाता है और तेरा ज्ञान तथा विवेक अकथनीय है। तेरे गुणों का बखान कर पाना असम्भव है। मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि तू मुझ जैसे पापियों के अनन्त पापों और अवगुणों को देखते हुए भी उनको बख़्श देता है।

दीन जानि बिनती मानि

मेरी कौन गति गुसाई। तुम जनत भरन देवा॥[354]
जनम हीन करम छीन। भूलि गयौ सेवा॥
बड़ौ पतित पतितन मैं। गज गनिका गामी॥
और पतित जगत प्रकट। तिनहूं मैं नांमी॥
तुम दयाल मैं गरीब। टेरि कह्यौ रामा॥[355]
दीन जानि बिनती मानि। गावै दास नामा॥

सन्त नामदेव, पद 66

नामदेव जी विनम्र भाव से कहते हैं, "हे जगत् के प्रतिपालक! आप मेरी दशा जानते हैं कि मैं जन्म और कर्म से नीच और तुच्छ हूँ। मैं आपकी सेवा तथा भक्ति करना भी नहीं जानता। संसार में हुए गज जैसे असहाय और गणिका जैसे बड़े-बड़े पापियों में मेरा नाम सबसे ऊपर है। मैं ग़रीब

और दीन हूँ और आप दीनदयाल हैं। मुझ ग़रीब की विनती मानकर मुझ पर कृपा कीजिये और अपने चरणों का दास बना लीजिये।" सन्त तुकाराम जी का कथन है:

धर विश्वास हुआ निश्चिन्त, रखा हृदय तेरे चरणों पर।
करूँगा पालन तेरे वचन, अब डुबो, चाहे तार।
नहीं जानता, लाया क्यों सत्मार्ग पर, जो दे सहर्ष स्वीकार।
करूँ न कोई माँग, बता करूँ तेरी सेवा किस प्रकार।
तुका कहे! करूँ कुछ कि देखूँ तेरी लीला अपरम्पार।

विश्वास धरूनि राहिलों निवांत
श्रीतुकाराम गाथा, अभंग 3808

मैंने अपने मन को तेरे चरणों में रख दिया है और तेरा आसरा लेकर मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। मैंने तेरे वचनों का पालन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है; अब तू चाहे मुझे उबार ले, चाहे डुबा दे। मैं नहीं जानता कि तू मुझे सत्य के मार्ग पर क्यों ले आया है, परन्तु हे प्रभु, सुख या दुःख जो भी तू मुझे देगा, उसे मैं सहर्ष स्वीकार कर लूँगा। इतनी कृपा कर कि अब मेरी कोई भी माँग न रहे। मुझे केवल यह बता दे कि मैं तेरी सेवा कैसे करूँ। हे प्रभु, तू ही बता कि मैं कुछ करूँ या केवल मौन रहकर तेरी लीला देखता रहूँ।

एक दृष्टान्त

एक भोला-भाला, निर्धन ग्रामीण एक राजा का दास बन गया। राजा का उसके साथ संक्षिप्त वार्तालाप इस प्रकार है:

राजा: भले मानस, तेरा नाम क्या है?
दास: मेरा कोई नाम नहीं है। जिस नाम से आप मुझे पुकारेंगे, वही मेरा नाम हो जाएगा।
राजा: तुम खाते क्या हो?
दास: जो आप मुझे खाने के लिये देंगे, मैं वही खा लूँगा।
राजा: तू कपड़े कैसे पहनेगा?

दास : जैसे आप पहनने के लिये दे देंगे।

राजा : तू काम क्या करेगा?

दास : जो आप करने के लिये कहेंगे।

राजा : तू चाहता क्या है?

दास : मेरे मालिक! दास की कोई इच्छा नहीं होती, जो आपकी इच्छा है, वही मेरी इच्छा है।

राजा इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ, उसने हुक्म दिया कि तू सदैव मेरे साथ रहेगा। दास की आँखों में से आँसू बहने लगे और उसने ख़ुशी के साथ सिर झुका दिया। राजा ने उसका परिवार भी अपने महल में बुलवा लिया और दास तथा उसके परिवार की सारी ज़िम्मेदारियाँ अपने ऊपर ले ली।

सन्त नामदेव जी उपदेश देते हैं कि जो पूरी तरह प्रभु का हो गया, प्रभु पूरी तरह उसका हो गया। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है :

पिता क्रिपालि आगिआ इह दीनी बारिकु मुखि मांगै सो देना॥
नानक बारिकु दरसु प्रभ चाहै मोहि ह्रिदै बसहि नित चरना॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1266

उस कृपालु पिता ने आज्ञा दी कि जीवात्मारूपी बालक जो भी इच्छा करे, उसकी इच्छा पूरी की जाए। पिता के प्रेम का रूप बन चुकी जीवात्मा ने प्रार्थना की कि मेरी केवल यह इच्छा है कि मुझे सदैव आपके चरण-कमलों का आश्रय प्राप्त रहे और मुझे सदैव आपके दर्शन होते रहें।

जिसने प्रभु से संसार माँगा, वह सदैव संसार से बँधा रहा। जिसने प्रभु से प्रभु को माँगा, उसने प्रभु को पा लिया।

सार

हम अनेक सन्तों-महात्माओं के जीवन और वाणी को ध्यान से पढ़ते हैं ताकि हमें भी अपने जीवन को उचित दिशा में ढालने की प्रेरणा मिले। सन्त नामदेव जी के जीवन से यह प्रेरणा मिलती है कि साधारण जाति में जन्म लेने के बावजूद भी इनसान प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप कर सकता है।

यदि हम अलग-अलग वक़्त में हुए महात्माओं के जीवन पर दृष्टि डालकर देखें तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि वे बिल्कुल साधारण इनसान थे और उनको अपना जीवन कठोर, संकटयुक्त तथा परस्पर विरोधी हालातों में गुज़ारना पड़ा। फिर भी वे प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप करने में कामयाब हो गए। वह दयालु पिता सन्तों, महात्माओं के उदाहरण द्वारा हमारे अन्दर यह विश्वास पैदा करना चाहता है कि हमारे हालात जैसे भी हों, हम प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप कर सकते हैं।

उस परमेश्वर द्वारा हमें मनुष्य-जन्म का वरदान दिया जाना ही इस बात का सबसे बड़ा आश्वासन है कि हमारे अन्दर उससे मिलाप करने का सामर्थ्य है। सन्त-महात्मा भी जीवों को अपनी शरण में लेते समय उनके देश, धर्म, जाति, अमीर-ग़रीब, औरत-मर्द, अनपढ़-विद्वान, ऊँच-नीच, अच्छा-बुरा होने की तरफ़ ध्यान नहीं देते। वे इस भरोसे से जीवों को नाम की अन्तर्मुख साधना की युक्ति समझाते हैं कि हर व्यक्ति, हर प्रकार की कठिनाइयों के बावजूद अपनी लिव अन्तर में प्रभु के नाम से जोड़कर, प्रभु से मिलाप कर सकता है।

सन्त नामदेव जी गृहस्थ महात्मा थे। आप ने घर-गृहस्थी के सब कर्तव्य निभाते हुए प्रभु से मिलाप किया। आपके जीवन से प्रेरणा मिलती है कि त्याग का सम्बन्ध मन से है, शरीर से नहीं। प्रभु-प्राप्ति का सम्बन्ध घर-गृहस्थी के त्याग से नहीं, अपनी वृत्ति को स्वार्थी की बजाय, परमार्थी बनाने से है।

प्रभु की इच्छा या रज़ा में प्रसन्न रहना ही प्रभु के प्रति सच्चा विश्वास प्रकट करना है। सन्त-महात्मा प्रभु को शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप तथा प्रेम-रूप मानते हैं। ऐसे गुणों से सम्पन्न वह परमपिता कुछ भी ऐसा नहीं कर सकता जिसमें उसके पुत्र आत्मा का वास्तविक भला न हो। सन्त नामदेव जी ने अपने जीवन में प्रभु की इच्छा को सर्वोत्तम मानने का व्यक्तिगत उदाहरण हमारे सामने रखा है।

किसी का दुःख सुनना, उसको समझना, उसमें शामिल होना और उसे दूर करना दया है। किसी के अवगुणों की ओर ध्यान दिये बिना उस पर दया करना पूर्ण सन्तों का श्रेष्ठ गुण है। दया और क्षमा एक ही सिक्के के दो पहलू

हैं। उस वक़्त के बादशाह ने सन्त नामदेव जी की जान लेने की कोशिश की, परन्तु आपने उसको दुर्वचन तक नहीं कहे। बादशाह के दुर्व्यवहार का आपके मन पर रत्ती भर प्रभाव न पड़ा। आपने उसे इस तरह माफ़ कर दिया, मानो कुछ हुआ ही न हो। दया, क्षमा, प्रभु-भक्ति, हर प्राणी में प्रभु को समाया हुआ देखना, प्रभु की रज़ा में राज़ी रहते हुए पल-पल उसके ध्यान में मग्न रहना, सन्त नामदेव जी के जीवन का सार है।

सन्त नामदेव जी की वाणी से प्रेरणा मिलती है कि मनुष्य-जन्म का अमूल्य वरदान प्रभु अपने साथ मिलाप के लिये प्रदान करता है। वह पिता-परमेश्वर अन्दर है और उससे मिलने का साधन, उसका नाम भी हर जीव के अन्दर ही है। सतगुरु की संगति तथा उपदेश द्वारा ध्यान को अन्तर में प्रभु के नाम में लीन करके जीवात्मा सहज ही उससे मिलाप कर सकती है।

यह संसार कर्म-भूमि है। समस्त सृष्टि कर्म-प्रतिकर्म अथवा कर्म तथा फल के अटल नियम के अनुसार चल रही है। वर्तमान जन्म में ऐसे कर्मों से बचना चाहिये जो आगे के लिये गले का फन्दा बन सकते हों और पूर्व जन्मों के कर्मों का साधु-संगति तथा नाम की कमाई द्वारा नाश करने का यत्न करना चाहिये ताकि कर्म और फल तथा आवागमन के चक्र को तोड़कर सदा के लिये प्रभु में समा जाएँ।

सन्त नामदेव जी उपदेश देते हैं कि जीवन क्षण-भंगुर है। जीवन पल-पल घटता जा रहा है। मौत मुँह फाड़े तेज़ी से हमारी ओर दौड़ी चली आ रही है। कुछ मालूम नहीं कि काल कब दबोच ले। इसलिये विलम्ब किये बिना आज और अभी, प्रभु-भक्ति द्वारा, प्रभु से मिलाप करने के लिये भरसक प्रयास करना चाहिये।

संकलित रचनाएँ

हे प्रभु, तू मेरी माता है

इस अभंग में नामदेव जी प्रभु को प्रेम-रूप बताते हुए उससे प्रार्थना करते हैं कि मुझसे इस तरह प्रेम करो जैसे माता पुत्र से और गाय बछड़े से करती है। आप बहुत-से ऐसे अन्य उदाहरण देकर प्रभु से विनती करते हैं कि पल-पल मेरी रक्षा करो, मेरा मार्ग-दर्शन करो और मुझे सदैव अपनी भक्ति में लगाए रखो।

मैया तू मेरी, मैं बालक तेरा,
हे प्रभु, हो प्रेम मगन, मुझको प्रेम पय पिला॥[1]
गैया माँ मेरी, मैं बछड़ा तेरा,
हे प्रभु, प्रेम-पय से अपने, न दूर करा।
मृगी माँ तू मेरी, मैं शावक तेरा,[2]
हे प्रभु, भव-बंधन से मुझको ले छुड़ा।[3]
पाँखी माता तू मेरी, मैं अण्डज तेरा[4]
हे प्रभु, मेरे लिये प्रेम का दाना ला।
कछुवी अपलक हो, ज्यों सेती अण्डों को,
हे प्रभु, मुझ पर भी कर ऐसी कृपा।
रक्षक-मार्गदर्शक मेरा तू,
कहता है नामा, हे प्रभु।

प्रेम-भक्ति है तुझको प्यारी,
सँभाल मुझे जान कर शिशु।
तूं माझी माउली मी वो तुझा तान्हा
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1484

राम अभै पद दाता

इतिहास तथा पुराणों में प्रभु द्वारा अपने भक्तों की अलग ढंग से की गई रक्षा का उल्लेख है। भक्त कैसे भी संकट में ग्रस्त क्यों न हो, जब वह सच्चे हृदय से प्रभु की शरण लेता है तो प्रभु जिस ढंग से उसका संकट दूर करता है, मन उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

रांम रांम रांम जपिबौ करै। हिरदै हरि जी कौ सुमिरन धरै॥
संडामरका जाइ पुकारे। पढ़े नहीं हम सब पचि हारे।
हरि हरि कहै अरु ताल बजावै। चटरा सबै बिगारे[5]
सब वसुधा बसि कीन्हीं राजा। बीनती करै पटरानी।
पुत्र प्रहिलाद कह्यौ नहीं मानत। इहिं कछु औरै ठानी॥
राजसभा मिलि मंत्र उपायो। बालिक बुधि घणेरी[6]
जलथल गिरि ज्वाला थैं राख्यो। राम राइ माया फेरी॥
काढ़ि षडग काल ह्वै कोप्यौ। मोहिं बताइ तोहिं को राषै[7]
षंभा मांहि प्रगट्यौ परमेस्वर। सकल बियापी सति भाषै[8]
हरिनाकुसकौ उदर विदार्‌यौ। सुर नर कीये सनाथा[9]
भणत नामदेव तुम्ह सरणागति। राम अभै पद दाता॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 118

काल भै बापा सहया न जाइ

नामदेव जी कहते हैं कि मेरे प्रभु पिता, मैं काल से बुरी तरह भयभीत हूँ। मैं ही नहीं, अनेक ऋषि-मुनि, पीर पैग़म्बर, देवता आदि काल तथा उसकी

रची हुई चौरासी का नाम सुनकर काँपते हैं। पाँचों तत्त्व और तीनों गुणों से बनी हुई सृष्टि काल के भय से त्राहि-त्राहि कर रही है। केवल वह प्रभु काल से परे और ऊपर है। वह निश्चल प्रभु अमर और अविनाशी है। कोई भी अथाह की थाह नहीं पा सकता।

काल भै बापा सहया न जाइ। महा भै भीत जगत कूं षाइ॥
अनेक मुनेस्वर झूझै जाइ। सुर नर थाके करत उपाइ॥[10]
कंपै पीर पैकंबर देव। रिसि कंपै चौंरासी जेव॥[11]
चंद्र सूर धर पवन अकास। पाणी कंपै अगिन गरास॥
कंपै लोक लोकंतर षंड। ते भी कंपै अस्थिर प्यंड॥[12]
अविचल अभै नराइन देव। नामदेव प्रणवै अलष अभेव॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 44

सो भजि परि है गुर की सरना

विषय-वासना के लोभ में पड़कर सांसारिक जीव पाप के पथ पर चलते हैं और दुःख भोगते हैं। वे न केवल इस जन्म में दुःख पाते हैं, बल्कि आगे के जन्मों के लिये भी दुःख बाँध लेते हैं। गुरु की शरण में जाकर नाम का अभ्यास करने से ही पार उतरा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

घर की नारि तिआगै अंधा॥ पर नारी सिउ घालै धंधा॥[13]
जैसे सिंबलु देखि सूआ बिगसाना॥ अंत की बार मूआ लपटाना॥[14]
पापी का घरु अगने माहि॥ जलत रहै मिटवै कब नाहि॥
हरि की भगति न देखै जाइ॥ मारगु छोडि अमारगि पाइ॥
मूलहु भूला आवै जाइ॥ अंम्रितु डारि लादि बिखु खाइ॥[15]
जिउ बेस्वा के परै अखारा॥ कापरु पहिरि करहि सींगारा॥[16]
पूरे ताल निहाले सास॥ वा के गले जम का है फास॥
जा के मसतकि लिखिओ करमा॥ सो भजि परि है गुर की सरना॥[17]
कहत नामदेउ इहु बीचारु॥ इन बिधि संतहु उतरहु पारि॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 1164-65

कांइ रे मन विषिया बन जाहिं

विषय-विकारों में खोया हुआ जीव कभी साधु की संगति की ओर ध्यान नहीं देता। आप उपदेश देते हैं कि मन को मायावी संसार और इसके विकारों से निकालकर प्रभु की भक्ति में लगाना चाहिये।

कांइ रे मन विषिया बन जाहिं। देषत ही ठग मूली षांहिं॥[18]
मधुमाषी संचियो अपार। मधु लीन्हौ मुष दीन्हीं छार॥
गऊ बछ कौ संचै षीर। गलै बांधि दुहि लेइ अहीर॥
जैसे मीन पानी मैं रहै। काल जाल की सुधि न लहै॥
जिभ्या स्वारथ निगल्यौ लोह। कनक कामनी बांध्यौ मोह॥
माया काज बहुत कर्म करै। सो माया ले कुंडे धरै॥[19]
अति अयान जानै नहीं मूढ। धन धरती अचला भयो धूल॥[20]
काम क्रोध त्रिस्ना अति जरै। साध संगति कबहूँ नहिं करै॥
प्रणवत नांमदेव ताकी आण। निरभै होइ भजौ किन राम॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 62

राम रसायन रसना चाषौं

इस पद में कहते हैं कि अन्य सभी इष्टों को भुलाकर केवल एक प्रभु की शरण लेनी चाहिये और उसके सम्मुख ही नतमस्तक होकर प्रार्थना करनी चाहिये। आप कहते हैं कि वह प्रभु सत्य तथा सर्वव्यापक है। उसका नाम सब दुःखों को दूर करने की औषधि है। उसको छोड़कर किसी दूसरे की भक्ति में लगना सर्वथा व्यर्थ है।

रांम जुहारि न और जुहारौ।[21]
जीवनि जाइ जनम कत हारौं॥
आनदेव सौं दीन न भाषौं।[22]
राम रसाइन रसना चाषौं॥[23]
थावर जंगम कीट पतंगा।
सत्य राम सब हिन के संगा॥

भणत नांमदेव जीवनि रामा।
आंनदेव फोकट बेकामा॥[24]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 30

रामची भगति दुहेली रे बापा

इस पद में समझाते हैं कि प्रभु की सच्ची अन्तर्मुख भक्ति कठिन है। संसार के अधिकतर लोग बहिर्मुखी भक्ति में लगे हैं। वे तीर्थों पर स्नान करके शरीर को साफ़ कर लेते हैं, परन्तु इससे मन की मलिनता दूर नहीं होती। लोग पत्थर की मूर्तियों को देव समझकर उनके आगे पुष्प चढ़ाते हैं, परन्तु उन्हें नाम की अन्तर्मुख आराधना का ज्ञान नहीं है। नामदेव जी कहते हैं कि बहिर्मुखी भक्ति से दुनिया के लोगों की वाह-वाह प्राप्त की जा सकती है परन्तु प्रभु इससे प्रसन्न नहीं होता।

रामची भगति दुहेली रे बापा। सकल निरन्तरि चीन्हिले आपा॥[25]
बाहरि उजला भीतरि मैला। पांणी पिंड पषालिन गहला॥[26]
पुतली देव की पाती देवा। इहि बिधि नाम न जानै सेवा॥[27]
पाषंड भगति राम नहीं रीझै। बाहरि आंधा लोक पतीजै॥[28]
नामदेव कहै मेरा नेत्र पलट्या। राम चरना चित चिउट्या॥[29]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 21

नामदेव प्रीति नराइंण लागी

नामदेव जी कहते हैं कि जब मेरे हृदय में प्रभु का प्रेम समा गया तो मेरा मन सहज ही संसार के मोह से विरक्त हो गया। आप कहते हैं कि जैसे भूखे का अनाज से, प्यासे का पानी से, लोभी का धन से, कामी का नारी से तथा माता को बालक से प्रेम होता है, ऐसे ही मेरे अन्दर भी प्रभु का प्रेम समाया हुआ है।

नामदेव प्रीति नराइंण लागी। सहज सुभाइ भए बैरागी॥
जैसी भूषै प्रीति अनाज। तृषावंत जल सेती काज।[30]

मूरिष नर जैसे कुटुंब पराइण। ऐसी नामदेव प्रीति नराइण॥[31]
जैसे पर पुरिषा रत नारी। लोभी नर धन कौ हितकारी।
कामी पुरिष काम रत नारी। ऐसी नामदेव प्रीति मुरारी॥
जैसी प्रीति बालक अरु माता। ऐसें यहु मन हरि सौं राता।
नामदेव कहै मेरी लागी प्रीति। गोबिंद बसै हमारे चीत॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 115

तू ही कर्ता

इस अभंग में कहते हैं कि प्रभु सबका कर्ता है। वह सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है। जब ध्यान हरि में लगा तो पता चला कि सृष्टि माया का प्रपंच है इसलिये ध्यान को हर ओर से मोड़कर केवल प्रभु के नाम में लीन करना चाहिये।

तू ही कर्ता, तू ही सखा,
कण-कण में तू है समाया।
साधना से मैंने हरि को पाया,
पाकर हरि को जाना, प्रपंच है माया।
व्यर्थ बातें ना बोल,
कहे नामा, पूर्ण हरि बोल।
'नाम' उच्चरने में लगता नहीं मोल।

आपणची कर्ता आपणची मित्र
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 330

कउन को कलंकु रहिओ राम नामु लेत ही

अपने आरम्भिक जीवन में नामदेव कर्मकाण्डी थे तथा उपवास, मूर्ति-पूजा आदि मनोयोग से करते थे। विसोबा खेचर सतगुरु मिलने के बाद और 'नाम' प्राप्त होने पर, इन बहिर्मुखी कर्मकाण्डों की असलियत का भी ज्ञान हो गया और आपने समझ लिया कि जो कुछ भी अन्तर में मिला है, सतगुरु के

बताए हुए मार्ग पर चलने से ही मिला है, अन्य किसी साधन से नहीं। राम (परमेश्वर) का नाम लेने से ही सभी तरे हैं।

कउन को कलंकु रहिओ राम नामु लेत ही॥
पतित पवित भए रामु कहत ही॥
राम संगि नामदेव जन कउ प्रतगिआ आई॥[32]
एकादसी ब्रतु रहै काहे कउ तीरथ जाईं॥
भनति नामदेउ सुक्रित सुमति भए॥[33]
गुरमति रामु कहि को को न बैकुंठि गए॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 718

धृग ते बकता

इस पद में नामदेव उन सांसारिक व्यापारों को धिक्कारते हैं जो परमेश्वर-प्राप्ति में सहायक नहीं हैं। नामदेव ने वेदों-शास्त्रों के अर्थहीन पठन-पाठन का निषेध किया है। पण्डित तो वेद बखानता है, लेकिन नामदेव तो केवल राम-नाम ही जानता है।

धृग ते बकता धृग ते सुरता।[34]
प्राननाथ कौ नांव न लेता॥
नाद वेद सब गालि पुरांनां।[35]
रामनाम को मरम न जाना॥
पंडित होइ सो बेद बषानै।[36]
मूरिष नांमदेव राम ही जानै॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 10

सभ्य वेषधारी चोर

इस अभंग में फ़रमाते हैं कि कुछ लोग बाहर से भक्त होने का दिखावा करते हैं परन्तु अन्तर में कपट से भरे होते हैं। वे प्रभु का दास होने का

ढोंग करते हैं परन्तु पैसे के लिये लोगों का गला तक काटते हैं। नामदेव जी कहते हैं कि ऐसे चोरों से सावधान रहते हुए अपना ध्यान प्रभु के चरणों में लगाना चाहिये।

मुख में राम, हाथ से दे ताली,
दया से मन सदा उनका ख़ाली।
क्या होगा करके ऐसा गान,
ऐसे मिथ्या आचरण को धिक् मान।[37]
सिर हिलाकर कहते ख़ुद को हरि का दास,
कौड़ी के लिये लेते दूसरों के प्राण।
साधुओं के पाँव पड़ते भले,[38]
केश पकड़, लोगों के काटते गले।
नामा कहे, ये सब हैं चोर,
हरि का नाम है अनमोल॥

मुखीं नाम हातीं टाळी
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1804

जागि रे जीव कहा भुलाना

नामदेव जी उपदेश देते हैं कि ऐ अज्ञानी जीव, तू माया के भ्रम में पड़कर यह मत भूल कि तुझे आज नहीं तो कल इस संसार से कूच करना पड़ेगा। यह मायामय संसार भ्रम मात्र है। नामदेव जी कहते हैं कि मेरे प्यारे, तुम्हारा रास्ता बहुत लम्बा और ऊबड़-खाबड़ है। तुम सचेत होकर प्रभु भक्ति में लग जाओ।

जागि रे जीव कहा भुलाना।
आगै पीछै जाना ही जाना॥
दिवस चारि का गोवलि बासा।[39]
तामैं तोहिं क्यौं आवै हासा॥
इहि भ्रमि लागि कहां तू सोवै।

काहे कूं जनम बादि ही षोवै॥[40]
कहां तू सोवै बारंबारा।
रामनाम जपि लेउ गंवारा॥
भणत नांमदेव चेति अयांना।[41]
औघट घाट अरु दूरि पयांना॥[42]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 122

निर्मल मन में ही परमात्मा निवास करता है

नामदेव नेक और पाक जीवन और परमेश्वर की भक्ति को मुक्ति की प्राप्ति का असली साधन मानते हैं। इस शब्द में जीव को हर प्रकार के ऐब और पाप त्यागकर परमेश्वर की भक्ति करने का उपदेश देते हैं ताकि उससे मिलाप हासिल हो सके।

पर धन पर दारा परहरी॥ ता कै निकटि बसै नरहरी॥[43]
जो न भजंते नाराइणा॥ तिन का मै न करउ दरसना॥
जिन कै भीतरि है अंतरा॥ जैसे पसु तैसे ओइ नरा॥
प्रणवति नामदेउ नाकहि बिना॥ ना सोहै बतीस लखना॥[44]

आदि ग्रन्थ, पृ. 1163

भाई रे इन नयननि हरि पेषो

सन्त नामदेव जी उपदेश देते हैं कि मेरे भाई, अपने अन्दर स्वयं प्रभु के दर्शन करो। जो समय साधु की संगति और हरि की भक्ति में बीतता है केवल वही सकार्थ होता है। जो चरण प्रभु के प्रेम में नाचते हैं, जो हाथ रोज़ उसकी पूजा करते हैं, जो शीश साधु के सामने झुकता है तथा जो रसना सदैव प्रभु के नाम का सिमरन करती है वही उत्तम है। यह संसार एक हाट के समान है और सब लोग जो यहाँ व्यापार करने आए हैं, व्यापारी है। जो जैसा माल एकत्रित करता है उसे वैसा ही लाभ प्राप्त होता है। आपका भाव है कि जो

प्रभु-भक्ति का धन इकट्ठा करता है उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है। जो मायावी वस्तु संग्रह करता है, वह मायावी संसार को प्राप्त होता है। बुद्धिमान व्यक्ति मानव-जन्म से उचित लाभ उठाता है, जब कि मूर्ख व्यक्ति पूर्व जन्म के पुण्यों की जो पूँजी साथ लाता है, उसे भी व्यर्थ गँवा देता है। इस देह के अन्दर प्रभु का निवास है, इसलिये अन्तर में उसके दर्शन करने चाहियें। धन्य है वह व्यक्ति जो प्रभु के बिना किसी दूसरी वस्तु की ओर ध्यान नहीं देता।

भाई रे इन नयननि हरि पेषो॥[45]
हरी की भक्ति साधु की संगति सोई दिन धनि लेख्यो।
चरन सोई जो नचत प्रेम सो, कर जो करै नित पूजा॥
सीस सोई जो नवै साधु को, रसना और न दूजा।
यह संसार हाट कौ लेखा, सब कोउ बनीजहिं आया।[46]
जिन जस लादा तिन तस पाया, मूरख मूल गवाया॥
आतम राम देह धरि आयो, तामै हरि कौ देखौ।
कहत नामदेव बलि बलि जैहो, हरि मनि और न लेखौ॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 227

कर नाम सिमरन, सुन शब्द-धुन

इस अभंग में उपदेश देते हैं कि मेरे प्यारे, तू सदा नाम का सिमरन करता रह तथा ध्यान को शब्द-धुन से जोड़कर रख। इससे तेरे मानव-जन्म का लक्ष्य पूरा हो जाएगा। प्रभु तेरे अनन्त जन्मों के कर्मों का नाश कर देंगे। तू इस बात को समझ ले कि जो भी आध्यात्मिक उन्नति होती है केवल नाम द्वारा होती है।

कर नाम सिमरन, सुन शब्द-धुन।
ऋद्धि-सिद्धि हो चेरी, भागता है यम॥
साधना से साध लक्ष्य, तज अन्य उपाय।
जन्मों-जन्मों के दुःख हरता राम॥

देवी-देवता का नहीं यह काम।
कहे नामा, सब कुछ है केवल हरि-नाम॥

स्मरण करितां रामनाम ध्वनी
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 668

तुम बिनु घरि येक रहूं नहि न्यारा

नामदेव जी कहते हैं कि हे प्रभु, मैं एक घड़ी भी आपसे जुदा नहीं रह सकता। यदि आप पर्वत हो तो मैं मोर हूँ। यदि आप चाँद हो तो मैं चकोर हूँ। यदि आप वृक्ष हो तो मैं पक्षी, आप सरोवर हो तो मैं मछली बन जाता हूँ। आप दीया हो तो मैं बाती, आप पंथ हो तो मैं पथिक, यदि आप शिव हो तो मैं बेलपूजा हूँ। मुझे आपके बिना कुछ नहीं सूझता।

तुम बिनु घरि येक रहूं नहि न्यारा।[47]
सुन यह केसव नियम हमारा॥
जहाँ तुम गीरीवर ताहां हम मोरा।
जहाँ तुम चंदा तहां मैं चकोरा॥
जहाँ तुम तरुवर तहां मै पंछी।
जहाँ तुम सरोवर तहां मैं मच्छी॥
जहाँ तुम दिवा तहां मैं बत्ती।
जहाँ तुम पंथी तहां मैं साथी॥
जहाँ तुम शिव तहां मैं बेलपूजा।
नामदेव कहे भाव नहीं दूजा॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 191

तूं ह्वै मैं नहीं हौं मांधौ

नामदेव जी कहते हैं कि हे प्रभु! मेरा सम्बन्ध साधारण जाति से है, कोई भी मेरे निकट आने के लिये तैयार नहीं है। हे प्रभु, मैं तो कुछ नहीं हूँ। तुम ही

एक से अनेक होकर हर जगह व्यापक हो। जैसे नदिया सागर में मिलकर सागर हो जाती है, उसी तरह तुम्हारी कृपा से संसार में तुच्छ माने जानेवाले तुम्हारे भक्त भी तुम में समाकर तुम्हारा रूप हो जाते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जाती है और काल की फाँसी सदा के लिये कट जाती है। हे मेरे मुक्तिदाता, मैं अन्य सब इष्टों को छोड़कर तुम्हारी शरण में आ गया हूँ।

देवा मेरी हीन जाती है काहू पै सहीं न जाती हो॥
मैं नहीं मैं नहीं मैं नहीं मांधौ तूं ह्वै मैं नहीं हौं।
तू एक अनेक है बिस्तरयो मेरी चरम नसाई हो॥[48]
जैसे नदिया समद समानी धरनी बहती हो।
तुम्हारी कृपा थें नीच ऊंच भए तूं काल की कांती हो॥[49]
नामौ कहै मेरी देवी न देवा संग न साथी मीतुला।[50]
तुम्हारी सरनि मैं भाजि दुरयौं हैं बंदि छोडि बाबा बीठुला॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 53

राम को नामु जपउ दिन राती

मैं सदैव प्रभु के नाम के सिमरन में लगा रहता हूँ। मैं संसार के बाकी सब कार्य भी करता हूँ परन्तु मेरा ध्यान निरन्तर प्रभु के ध्यान में रहता है। इस तरह मेरे कर्मों के बंधन टूट गए हैं तथा मुझे परमात्मा की प्राप्ति हो गई है।

मनु मेरो गजु जिहबा मेरी काती॥[51]
मपि मपि काटउ जम की फासी॥
कहा करउ जाती कह करउ पाती॥
राम को नामु जपउ दिन राती॥
रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ॥[52]
राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ॥[53]
भगति करउ हरि के गुन गावउ॥
आठ पहर अपना खसमु धिआवउ॥[54]

सुइने की सूई रुपे का धागा॥[55]
नामे का चितु हरि सउ लागा॥[56]

आदि ग्रन्थ, पृ. 485

सुख के सागर सतगुरु

इस अभंग में अपने सतगुरु विसोबा खेचर का गुणगान करते हुए नामदेव जी कहते हैं कि मेरे सतगुरु, तू सुख का सागर है, तेरी कृपा से मुझे प्रभु का दर्शन हो गया। मेरा मन प्रभु के दर्शन में मग्न हो गया। जैसे बूँद समुद्र में मिलकर समुद्र हो जाती है उसी तरह प्रभु से मिलकर मेरा अहं-भाव समाप्त हो गया है। प्रभु के नाम द्वारा मुझे यह एहसास हुआ कि प्रभु आनन्द-रूप है। उसमें समाकर मैं भी आनन्द-रूप हो गया हूँ।

हे सतगुरु खेचर, तू है सुख का सागर,
मालिक का दर्शन, पाया तेरे कारण।
दर्शन पाकर, तल्लीन हुआ मेरा मन,
लीन हुई आँखें, उसके ध्यान में भरकर।
ज्यों बूंद हुई सागर से मिलकर,
त्यों मिल उसमें मिटा मेरा हंकार।[57]
है अब आनंद ही आनंद,
नाम से जाना नामा ने, प्रभु है परमानंद॥

सुखाचा सद्गुरु सुखरूप खेचरू
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 1378

जब देखा तब गावा

यह शब्द नामदेव के अन्तर के रूहानी अनुभव पर प्रकाश डालता है। आप विशेष तौर पर अलौकिक प्रकाश वाले आन्तरिक शब्द के रसीले राग का वर्णन करते हैं। आप अपने सतगुरु की महिमा करते हैं जिन्होंने अपार दया-मेहर करके आपको यह दात बख़्शी है।

जब देखा तब गावा। तउ जन धीरजु पावा॥
नादि समाइलो रे सतिगुरु भेटिले देवा॥
जह झिलि मिलि कारु दिसंता॥ तह अनहद सबद बजंता॥
जोती जोति समानी॥ मै गुर परसादी जानी॥
रतन कमल कोठरी॥ चमकार बीजुल तही॥
नैरै नाही दूरि॥ निज आतमै रहिआ भरपूरि॥
जह अनहत सूर उज्यारा॥ तह दीपक जलै छंछारा॥
गुर परसादी जानिआ॥ जनु नामा सहज समानिआ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 656–57

भावार्थ: जब मैंने अपने प्रभु को देखा तो ख़ुशी से मैं गा उठा और मुझे शान्ति मिल गई। सतगुरु के मिलने से मैं शब्दरूपी नाद में समा गया और मेरा प्रभु से मिलाप हो गया। वहाँ झिलमिल रोशनी दिखती है और अनहद शब्द धुनकारें देता है। गुरु की कृपा से मैंने यह जान लिया और उस ज्योति में मेरी ज्योति समा गई, भाव आत्मारूपी जोत परमात्मा में लीन हो गई। हृदय कमलरूपी कोठरी में अनेक रत्न भरे पड़े हैं। वहाँ बिजली जैसी चमक है। वहाँ अनहद नाद के सूर्य का प्रकाश होता है जिसके सामने सूर्य की रोशनी दीपक जैसी लगती है। प्रभु दूर नहीं, निकट ही दिखाई देता है और अपनी आत्मा में समाया हुआ प्रतीत होता है। नामदेव जी कहते हैं कि गुरु की दया से ही मुझे यह अवस्था प्राप्त हुई है और मैं सहज में समा गया हूँ।

अपना पयांनां राम

नामदेव के मतानुसार सच्चा बादशाह वह नहीं है जो लौकिक रूप से धनी है, सच्चा बादशाह वह है जिसके हृदय में परमेश्वर का प्रेम है, भले ही वह दुनिया की नज़रों में भिखारी हो।

अपना पयांनां राम अपना पयांनां। नामदेव मूरिष लोग सयाना॥[58]
जब हम हिरदै प्रीति बिचारी। रजबल छांडि भए भिषारी॥[59]

जब हरि कृपा करी हम जांनां। तब था चेरा अब भए रांनां॥
नामदेव कहै मैं नरहर गाया। पद षोजत परमारथ पाया॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 11

दास अनिंन मेरो निज रूप

परमात्मा सब तरह से समर्थ है पर अपने भक्तों के वश में है। वह कहता है कि मेरे अनन्य भक्त मेरा अपना ही रूप हैं; ऐसे भक्तों के पल भर दर्शन करने से तीनों ताप – शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक – नष्ट हो जाते हैं और उनके स्पर्श से गृहस्थी के कूप से मुक्ति मिल जाती है। जिसे मैं बाँधूँ उसे भक्त छुड़ा सकता है, पर भक्त के द्वारा बाँधा हुआ मैं नहीं छुड़ा सकता; अगर कभी एक बार वह मुझे भी बाँध दे तो उसका मेरे पास कोई जवाब नहीं, मैं भक्त के गुणों से बँधा हुआ हूँ; मैं सबका जीवन हूँ, पर भक्त मेरे जीवन हैं। नामदेव जी कहते हैं कि जिसकी जैसी भक्ति हो, उसको वैसा ही फल मिलता है।

दास अनिंन मेरो निज रूप॥[60]
दरसन निमख ताप त्रई मोचन परसत मुकति करत ग्रिह कूप॥[61]
मेरी बांधी भगतु छडावै बांधै भगतु न छूटै मोहि॥
एक समै मो कउ गहि बांधै तउ फुनि मो पै जबाबु न होइ॥
मै गुन बंध सगल की जीवनि मेरी जीवनि मेरे दास॥
नामदेव जा के जीअ ऐसी तैसो ता कै प्रेम प्रगास॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1252–53

ऐसे जगथैं दास नियारा

इस पद में नामदेव ने कई उपमाओं का प्रयोग करके यह बताया है कि किस प्रकार परमेश्वर के प्रेम से मनुष्य उसी के समान हो जाता है। फिर वह वापस आवागमन के चक्र में नहीं आता है।

ऐसे जगथैं दास नियारा।
वेद पुरांन सुमृत किन देषौ पंडित करउ बिचारा॥

दधि बिलोइ जैसे घृत लीजे। बहुरि न ऐकठ थाई॥[62]
पावक दार जतन करि काढ्या, बहुरि न दार समाई॥[63]
पारस परसि लोह जैसे कंचन, बहुरि न त्र्यंबक होई।[64]
आक पलास बेधीया चंदन, कास्ट कहै नहीं कोई॥[65]
जे जन राम नाम रंगि राता, छाडि करम की आसा।
ते जन रामै राम समानै, प्रणवत नामदेव दासा॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 82

हुआ जब प्रभु से मिलन

नामदेव जी कहते हैं कि जब प्रेम, भक्ति और ज्ञान-रूप प्रभु से मिलाप हुआ तो मेरा चंचल मन निश्चल हो गया। अब यह सदैव उसी में मग्न रहता है। जैसे घड़ा नदी में डूबा हुआ हो, वैसे ही सब प्रभु में समाए हुए हैं और प्रभु सब में समाया हुआ है।

हुआ जब प्रभु से मिलन,
स्थिर हुआ चंचल मन।
प्रभु में तन्मय होकर,
डूबा रहता उनमें हर-क्षण।
अब, लौटना नहीं चाहता, यह मन,
क्योंकि प्रभु है विराग, भक्ति और ज्ञान।
वह सबमें, सब उसमें हैं यूँ,
घट नदी में डूबा हो ज्यूँ।[66]
अब, जल समाया जल में ऐसे,
रूह प्रभु से मिल गई जैसे।
कहे नामदेव जनाबाई से,
कैसा है वह, कहूँ मैं कैसे॥

चाळक माझें मन पांगुळ पैं जालें
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 355

जिन पाया तिनही लुकाया

नामदेव जी आश्चर्य प्रकट करते हैं कि लोग बाक़ी सब कार्य करते हैं परन्तु मन को स्थिर करने का यत्न नहीं करते जब कि वास्तविक आवश्यकता मन को निश्चल करने की है। जिसका मन मैला है, वह बाहर से भले कितना ही निर्मल होने का यत्न कर ले, वह भवसागर से पार नहीं हो सकता। उदाहरणों द्वारा नामदेव जी इस धारणा को सिद्ध करते हैं। हरि के ध्यान द्वारा सहज-समाधि की अवस्था प्राप्त करनी चाहिये। जो लोग वास्तव में हरि को पा लेते हैं, कभी भी बाहर उसका दिखावा नहीं करते।

मनथिर होइ वा रे न होइ। ऐसा चिहन करै संसार॥[67]
भीतरि मैला धूतिग फिरै। क्यूं उतरै भव पार॥ टेक॥[68]
रुद्राष सषा जप माला मंडै। ताकौ मरम न जानै कोई।[69]
आप न देषै और दिषावै। कपट मुक्ति क्यों होई॥
सींगी जटा बिभूति लगावै। संबर सिध कहावै रे।[70]
नाथन बोलषै मरम न जाणै। भाव चंडाली लावै॥[71]
ब्रह्मा पढि गुणि बेद सुनावै। मन की भ्रांति न जावै।
करम करै सो सूझै नाहीं। बहुतक करम कराई॥
मास दिवस लग रोजा साधै। कलमां बांग पुकारै।
मनमें कांती जीव संघारै। नांव अलह का सारै॥[72]
केवल ब्रह्म सत्ति करि जाण्यां। सहज सुनि मैं ध्याया रे।
प्रणवत नामदेव गुरु प्रसादैं। पाया तिनही लुकाया॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 64

आन्तरिक अनुभव

नामदेव जी कहते हैं कि मैंने चारों वेदों को खोजकर उनमें से यह सार निकाला है कि प्रभु प्रेम-रूप है। मैंनें छः शास्त्रों तथा अनेक यज्ञकर्ताओं के यत्न से यह तत्त्व निकाला है कि प्रभु को केवल सन्तों की कृपा द्वारा जाना जा सकता है।

शोध कर चारों वेदों को जान लिया मैंने यह सार,
हे मन! समझ, समझ प्रेम-रूप ही है भगवान।
षट् शास्त्रों का कर मंथन, जाना मैंने यह सार,[73]
जान लिया मैंने यज्ञ-कर्त्ताओं का अन्तिम ध्येय।
नामा कहता सन्त कृपा से जान लिया मैंने भगवान॥

शोधोनियां चारी वेद
श्रीनामदेव गाथा, अभंग 2026

देवा तेरी भगति न मो पै होइ जी

ये पद असहाय जीव की स्थिति पर प्रकाश डालता है। नामदेव जी निर्बल जीव की ओर से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मुझ में तेरी भक्ति कर सकने का सामर्थ्य नहीं है। जिस सेवा अथवा भक्ति से तू प्रसन्न होता है, मुझे उसका ज्ञान नहीं है। न मैं तेरा सिमरन करता हूँ और न ही मुझे तेरी महिमा का बोध है। सृष्टि के सब जीव आप में से ही उत्पन्न हुए है और आप हर जीव में समाए हुए हैं। परन्तु माया द्वारा फैलाई गई अज्ञानता के कारण, सर्वव्यापक होने के बावजूद तुम कहीं भी दिखाई नहीं देते। मैं मरने के बाद देवलोक में जाने का इच्छुक नहीं हूँ, मैं तो जीते-जी मुक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम्हारे दर्शन के बिना मैं अति दुःखी हूँ। मुझे अपने साथ मिला लो ताकि मैं सदैव तुम्हारा गुणगान करता रहूँ।

देवा तेरी भगति न मो पै होइ जी।[74]
जिहि सेवा साहिब भल मानै। करिहूं न जानै कोइ जी॥
सुमृत कथा होइ नहिं मोपै। कथूं त होइ अभिमान जी।[75]
जोई जोई कथूं उलटि मोहिं बांधै। त्राहि त्राहि भगवान जी॥
जामैं सकल जीव की उतपति। सकल जीव मैं आप जी।
माया मोह करि जगत भुलाया। घटि घटि व्यापक बाप जी॥
सो बैकुंठ कहौं धौं कैसो। प्यंड परे जहँ जाइये।[76]
यहु परतीति मोहिं नहिं आवै। जीवत मुकति न पाइये॥

मैं जन जीव ब्रह्म तुम माधौ। विन देषे दुष पाईये।
राषि समीप कहै जन नांमा। संगि मिला गुन गाईये॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 48

आन न जानौं देव न देवा

सन्त नामदेव जी जीवात्मा को अन्य सब इष्टों में से ध्यान निकालकर केवल एक प्रभु की शरण लेने तथा उसकी भक्ति करने का उपदेश देते हैं, क्योंकि वह प्रभु ही सब दुःखों का नाश करके, उसे अनन्त-अपार आनन्द का वरदान प्रदान कर सकता है:

आन न जानौं देव न देवा। जित जित प्राण तित ही तेरी सेवा॥ टेक॥
तूं सुष सागर आगर दाता। तूं ही मेरे प्राण पिता गुर माता॥
नामौं भणै मेरे सब कुछ साईं। मनसा बाचा दूसर नाहीं॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 126

रांम सो नामा नाम सो रांमा

नामदेव जी कहते हैं: हे प्रभु! मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं। जिस तरह पंछी को वृक्ष के बिना कोई सहारा नहीं मिलता, मुझे भी आपके बिना कोई दूसरा आश्रय प्राप्त नहीं है। आप कहते हैं: मैंने प्रभु की भक्ति द्वारा अहं का नाश कर लिया है। इस तरह मैं उस में समाकर उसका ही रूप हो गया हूँ:

रांम सो नामा नाम सो रांमा। तुम साहिब मैं सेवग स्वामां॥ टेक॥
हरि सरवर जन तरंग कहावै। सेवग हरि तजि कहुं कत जावे॥
हरि तरवर जन पंषी छाया। सेवग हरिभजि आप गवाया॥[77]
नामा कहै मैं नरहरि पाया। राम रमे रमि राम समाया॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 7

कोई बोलै निरवा कोई बोलै दूरि

नामदेव जी कहते हैं: कोई प्रभु को निकट बताता है तो कोई दूर। यह इसी तरह है जैसे पानी में रहनेवाली मछली खजूर के वृक्ष पर चढ़कर उसका वर्णन कर रही हो। आप कहते हैं: भले लोगो! व्यर्थ के विवाद में न पड़ो, जो प्रभु में समा जाता है, वह रस-मग्न होकर चुप हो जाता है:

कोई बोलै निरवा कोई बोलै दूरि॥ जल की माछुली चरै खजूरि॥[78]
कांइ रे बकबादु लाइओ॥ जिनि हरि पाइओ तिनहि छपाइओ॥
पंडितु होइ कै बेदु बखानै॥ मूरखु नामदेउ रामहि जानै॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 718

नांम न बिसरूं एकौ घड़ी

नामदेव जी कहते हैं कि जब से मैंने होश सँभाली है, मैंने कभी पल-भर के लिये भी प्रभु के नाम से ध्यान को दूर नहीं किया। जिसे प्रभु के नाम से संकोच है, उसे अन्त समय यम की यात्नाएँ सहनी पड़ती हैं। आप कहते हैं कि हरि के नाम द्वारा मेरे पापों का नाश हो गया और मुझे उससे मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो गया है:

ऐवडी सीमौंनैं बुधि आवडी। नाम न बिसरूं एकौ घडी॥ टेक॥[79]
हरि हरि कहतां जे नर लाजै। जम की डांग तिनै सिरि बाजै॥
हरि हरि कहतां न कीजै बांतां। गयौ पाप जे पोतै हुता॥[80]
नामदेव कहै मैं हरि हरि मनौं। कटै पाप अरु लाभ होइ घनौं॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 81

जपि रांम नांम नर लै पुरी

नामदेव जी कहते हैं: राम-नाम के सुमिरन द्वारा जीव पूरी तरह निर्भय हो जाता है। नाम द्वारा पत्थर बन चुकी अहिल्या का उद्धार हो गया। राम-नाम के बिना बाक़ी सब कुछ व्यर्थ है। इसलिये मैंने राम-नाम की शरण ले ली है:

जपी राम नाम नृ लै उरी। जीणों चरण आहिल्या उधरी॥ टेक॥
रामनाम मेरे हिरदै लखी। रामबिना सब फोकट देखी॥
जे बोलीये तो कहिये राम। अनेक बचन सों नाहीं काम॥
नामा भणैं मेरे यही नाउं। राम नाउं की मै बलि जाउं॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 182

नाराअिंण सूं मन न रंजै

नामदेव जी कहते हैं: मेरा पापी मन प्रभु-भक्ति में नहीं लगता। न इस में कोई संयम है, न ही इसमें प्रभु का भरोसा है और न ही यह निश्चल होकर अन्तर में बैठता है। यह अज्ञानता के कारण कर्मकाण्ड की क्रियाओं में फँसकर अपनी देह को कई तरह के दु:ख दे रहा है। यह दूसरों की निन्दा करके बहुत प्रसन्न होता है और सच को छोड़कर झूठी गवाही देता है। यह दिन-रात परायी स्त्रियों के पीछे मारा-मारा फिरता है। इस ने शिष्टाचार और धर्म दोनों को त्याग रखा है। यह तीर्थों पर जाकर निर्मल होने के लिये स्नान करता है परन्तु इससे इसके अन्तर की मैल नहीं छूटती। नामदेव जी प्रभु के आगे विनती करते हैं कि हे प्रभु, जीव अज्ञानी है, इसे कुछ पता नहीं कि यह किसकी पूजा-आराधना करे, कृपा करके आप ही इसे राह दिखाएँ:

नाराअिंन सूं मन न रंजै। संजम चूकै अरु ब्रत षंडै॥ टेक॥
ऐकादसी ब्रत जुगति न जानैं। चंचल चित मन थिर न धरै॥
पंच आतमा राषि न सकई। राम दोष दे भूष मरै॥
पर निंद्या जु आप परकास। झूठी साषि सहजि टारै॥
परत्रिया सूं रंमै रैन दिन। नेम धरम सबै हारै॥
जलहर पैसि पषालै काया। अंतरि मैल न तउ अुतरै॥[81]
भणै नांमदेव कछू न सूझै। पूजा कौन देव की करै॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 103

रांम तजि मेरौ मन अनत न जाई

नामदेव जी कहते हैं कि हे भाई, प्रभु के बारे में वाद-विवाद करना छोड़ दे, क्योंकि प्रभुरूपी धन तो तेरे अन्तर में है। मेरा मन राम-नाम को छोड़कर और कहीं नहीं जाता। हे भाई! धागे की माला फेरकर जिसे तू ढूँढ़ रहा है, वह तो तेरे अन्तर में है। तूने इतने दिन यों ही प्रभु-भक्ति के बिना गँवा दिये हैं, अब तो राम-नाम जप ले। तीनों-लोकों में परम तत्त्व केवल प्रभु का नाम ही है, इसके सिवाय और कुछ भी नहीं। प्रभु का नाम ही संजीवनी-बूटी है। इसी का सुमिरन करना चाहिये। राम-नाम के सिवाय, प्रभु से मिलने का कोई और उपाय नहीं है। नामदेव जी कहते हैं कि वह तो प्रभु के नाम से इस भवसागर से पार हो गया है, अगर तुझे भी पार होना है तो प्रभु-नाम का सुमिरन कर ले, अन्यथा प्रभु-भक्ति के बिना बार-बार जन्म-मरण के फेर में पड़ा रहेगा।

वाद छाडि रे भगता भाई। हरि सी तैं निधि पाई।[82]
राम तजि मेरौ मन अनत न जाई॥ टेक॥
जप माला तागै पोई। सरीर अंतरि हैं सोई।
वादि बिमुष हरि बिनु दिन षोई।
राम नाम जपि लोई। परम तत है सोई।[83]
तीनौ रे त्रिलोक ब्यापै दूजौ नहीं कोई॥ 1॥
सजीवन मूरी सोई नटारंभ संगि गाई।[84]
रामनाम बिन नाहीं आन उपाई।
नामदेव उतरयौ पार। चेतहु रे चेतन हार।
हरि की भगति बिन औतरोगे बारंबार॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 89

देवा पाहन तारीअले

नामदेव जी बहुत-सी पौराणिक कथाओं द्वारा समझाते हैं कि जीव की दशा कितनी भी दयनीय क्यों न हो, प्रभु की दया से उसके नाम द्वारा उसका उद्धार

हो जाता है। आप कहते हैं: श्री रामचन्द्र जी द्वारा पत्थरों पर राम-राम लिखने से पत्थर पानी पर तरने लग गए। तोते को राम-नाम का जाप सिखाती हुई गणिका का उद्धार हो गया। राम-नाम द्वारा कुरूप कुबजां, नीच अजामल, श्री कृष्ण जी के चरणों पर तीर चलानेवाले शिकारी, दासी के पुत्र बिदर, निर्धन सुदामा, कंस के पिता उग्रसैन आदि का भव-सागर से पार-उतारा हो गया। नामदेव जी कहते हैं: हे प्रभु! यदि मैं तपहीन, कुल-हीन तथा कर्म-हीन हूँ, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी दया द्वारा मैं भव-सागर से पार हो जाऊँगा:

देवा पाहन तारीअले॥ राम कहत जन कस न तरे॥ रहाउ॥
तारीले गनिका बिनु रूप कुबिजा बिआधि अजामलु तारीअले॥
चरन बधिक जन तेऊ मुकति भए॥ हउ बलि बलि जिन राम कहे॥
दासी सुत जनु बिदरु सुदामा उग्रसैन कउ राज दीए॥
जप हीन तप हीन कुल हीन क्रम हीन नामे के सुआंमी तेऊ तरे॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 345

हरि हरि करत मिटे सभि भरमा

इस पद में समझा रहे हैं कि प्रभु का नाम ही श्रेष्ठ धर्म और श्रेष्ठ कर्म है। यह अन्धे की लाठी है तथा भव-सागर से पार जाने का एक ही सच्चा साधन है। हरि ने अपना नाम जपनेवाले प्रह्लाद भक्त की रक्षा के लिये हिरण्यकश्यप का वध कर दिया। हरि ने अपने नाम द्वारा दुराचारी अजामल को बैकुण्ठ-धाम में पहुँचा दिया और गणिका का उद्धार हो गया। प्रभु ने द्रौपदी तथा शिला बन चुकी अहिल्या का उद्धार कर दिया। हरि ने अपने भक्तों को दु:ख देनेवाले कंस का नाश कर दिया तथा अपनी दया द्वारा कालीनाग का उद्धार कर दिया। नामदेव जी कहते हैं कि हरि का नाम जीव को हर प्रकार के संकट से छुड़ाकर उसका उद्धार कर सकता है:

हरि हरि करत मिटे सभि भरमा॥ हरि को नामु लै ऊतम धरमा॥
हरि हरि करत जाति कुल हरी॥ सो हरि अंधुले की लाकरी॥

हरए नमसते हरए नमह॥ हरि हरि करत नही दुखु जमह॥ रहाउ॥
हरि हरनाकस हरे परान॥ अजैमल कीओ बैकुंठहि थान॥
सूआ पड़ावत गनिका तरी॥ सो हरि नैनहु की पूतरी॥
हरि हरि करत पूतना तरी॥ बाल घातनी कपटहि भरी॥
सिमरन द्रोपद सुत उधरी॥ गऊतम सती सिला निसतरी॥
केसी कंस मथनु जिनि कीआ॥ जीअ दानु काली कउ दीआ॥
प्रणवै नामा ऐसो हरी॥ जासु जपत भै अपदा टरी॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 874

मो कउ तारि ले रामा तारि ले

नामदेव जी विनती करते हैं: हे प्रभु! मैं आपका अज्ञानी बालक हूँ, आप मेरा उद्धार कर दो। आप कहते हैं कि सतगुरु की दया से मुझे वह युक्ति प्राप्त हो गई है, जिससे जीव मनुष्य से देवता बन जाता है। आप प्रार्थना करते हैं: हे प्रभु! जैसे आपने ध्रुव भक्त तथा नारद का उद्धार कर दिया, मुझे भी भव-सागर से पार कर दो।

मो कउ तारि ले रामा तारि ले॥
मै अजानु जनु तरिबे न जानउ बाप बीठुला बाह दे॥ रहाउ॥
नर ते सुर होइ जात निमख मै सतिगुर बुधि सिखलाई॥
नर ते उपजि सुरग कउ जीतिओ सो अवखध मै पाई॥
जहा जहा धूअ नारदु टेके नैकु टिकावहु मोहि॥
तेरे नाम अविलंबि बहुतु जन उधरे नामे की निज मति एह॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 873

हरि का नामु नित नितहि लीजै

नामदेव जी समझाते हैं कि दूसरा कोई साधन प्रभु के नाम की बराबरी नहीं कर सकता। चाहे कोई व्यक्ति उल्टा लटककर बनारस में तप कर ले,

अश्वमेध यज्ञ कर ले, भारी मात्रा में सोने का दान कर दे, सब से श्रेष्ठ तीर्थों में स्नान कर ले या हिमालय की बरफ़ में तपस्या कर ले, प्रभु के नाम की अराधना की बराबरी नहीं की जा सकती। प्रभु का नाम अमर-जीवन प्रदान करनेवाला अमृत है, इसलिये बिना विलम्ब के प्रभु के नाम के साथ लिव जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये:

बानारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै अगनि दहै काइआ कलपु कीजै॥
असुमेध जगु कीजै सोना गरभ दानु दीजै राम नाम सरि तऊ न पूजै॥
छोडि छोडि रे पाखंडी मन कपटु न कीजै॥
हरि का नामु नित नितहि लीजै॥ रहाउ॥
गंगा जउ गोदवरि जाईऐ कुंभि जउ केदार न्हाईऐ
गोमती सहस गऊ दानु कीजै॥
कोटि जउ तीरथ करै तनु जउ हिवाले गारै राम नाम सरि तऊ न पूजै॥
असु दान जग दान सिहजा नारी भूमि दान ऐसो दानु नित
नितहि कीजै॥
आतम जउ निरमाइलु कीजै आप बराबरि कंचनु दीजै
राम नाम सरि तऊ न पूजै॥
मनहि न कीजै रोसु जमहि न दीजै दोसु निरमल निरबाण
पदु चीन्हि लीजै॥
जसरथ राइ नंदु राजा मेरा राम चंदु प्रणवै नामा ततु रसु अंम्रितु पीजै॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 973

रांम नांम खेती रांम नांम बारी

नामदेव जी कहते हैं कि किसान के लिये खेती-बाड़ी आमदनी का एक ही साधन होता है। इसी तरह सन्तों के लिये प्रभु का नाम ही परमार्थ का धन कमाने का एकमात्र साधन होता है। नाम की महिमा अपार है। इसे न चोर चुरा सकता है और न ही कभी ज़ंग लग सकता है। वह प्रभु सर्वव्यापक है। उसका सन्तों के हृदय में निवास है, परन्तु वह मनमुखों को दूर प्रतीत

होता है। नामदेव जी कहते हैं कि मैं हर प्रकार के वाद-विवाद को त्यागकर केवल एक प्रभु और उसके नाम की भक्ति में लग गया हूँ।

रांम नांम षेती रांम नांम बारी। हमारै धन बाबा बनवारी॥ टेक॥
या धन की देषहु अधिकाई। तसकर हरै न लागै काई॥[85]
दहदिसि राम रह्या भरपूरि। संतनि नीयरै साकत दूरि॥[86]
नामदेव कहै मेरे क्रिसन सोई। कूंत मसाहति करै न कोई॥[87]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 2

माई तूं मेरे बाप तूं

सन्त नामदेव जी कहते हैं कि प्रभु ही मेरा माता-पिता और सच्चा सम्बन्धी है। वह मेरे लिये भव-सागर से पार जानेवाली नौका है तथा यह नौका साधु की संगति द्वारा भव-सागर को सहजे ही पार कर लेती है।

माई तूं मेरै बाप तूं। कुटुंबी मेरा बीठला॥ टेक॥
हरि हैं हमची नाव री। हरि उतारै पैली तिरी॥[88]
साध संगति मिलि षेई चार। केसौ नामदेव चा दातार॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 34

जौ बोलौ तौ रामहिं बोलि

सन्त नामदेव जी उपदेश देते हैं कि जिह्वा द्वारा भी सदैव प्रभु के नाम का सुमिरन करना चाहिये और हृदय पर भी उसका नाम लिख लेना चाहिये। अन्य कुछ भी कहना या करना व्यर्थ है।

जौ बोलै तौ रामहिं बोलि। नहीं तर बदन कपाट न षोलि॥ टेक॥
जे बोलिये तो कहिये रांम। आन बकन सौं नाहीं काम॥
राम नाम मेरे हिरदै लेष। राम बिना सब फोकट देष॥
नामदेव कहै मेरे एकै नाउं। रामनांम की मैं बलि जाउं॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 119

रांमनाम मेरे पूंजी धना

नामदेव जी कहते हैं कि मेरे लिए प्रभु का नाम ही सच्चा धन है। मैं इस धन को ही बटोरने में लगा हुआ हूँ। जिसके पास यह अमूल्य धन है, वही सच्चा साहूकार है। कोई दूसरा धनी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। दुनिया की धन-दौलत वृक्ष की छाया के समान है। नाम की सच्ची पूँजी को न अग्नि जला सकती है, न ही इसे ज़ंग लग सकता है। न इसे चोर चुरा सकता है और न ही राजा दण्ड लगाकर इसे छीन सकता है। यह अद्भुत अनुपम धन मन-इन्द्रियों को गम्यता से परे है। यह अमूल्य धन उस दयालु प्रभु की कृपा से प्राप्त होता है।

रामनांम मेरे पूंजी धनां। ता पूंजी मेरौ लागौ मना॥ टेक॥
यहु पूंजी है अगम अपार। ऐसा कोई न साहूकार॥
साह की पूंजी आवै जाइ। कबहूं आवै मूल गंवाइ॥
जारी जरै न काई षाइ। राजा डंडै न चोर लै जाइ॥
अलष निरंजन दीन दयाला। नामदेव कौ धन श्रीगोपाला॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 128

ऐसे रामहिं जानौ रे भाई

नामदेव जी उपदेश देते हैं: मेरे भाई! तू राम-नाम के साथ लिव जोड़ ले। जिस तरह भृंगी अपने ध्यान द्वारा साधारण कीट को भी अपना रूप बना लेती है, उसी तरह राम-नाम से लिव जोड़ने पर तू भी उसका ही रूप हो जाएगा। वह प्रभु जो तीनों गुणों की हद से परे है, सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ है। वह जड़ और चेतन सबके अन्दर समान रूप से समाया हुआ है। आप कहते हैं: वह प्रभु ही मेरा सच्चा सगा-सम्बन्धी है और उसका नाम ही मेरे लिये सब सुखों का भण्डार है।

ऐसे रामहिं जानौ रे भाई। जैसे भृंगी कीट रहै ल्यौ लाई॥ टेक॥
सरब रुप सरबेसर स्वामी। त्रिगुण रहत देव अंतर जामी॥[89]

थावर जंगम कीट पतंगा। सति राम सबहिन के संगा॥
नामा कहै मेरे बंध न भाई। रामनांम मैं नौ निधि पाई॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 57

ऐसे राम ऐसे हेरौं

नामदेव जी कहते हैं कि मैं अपना ध्यान सदैव प्रभु के नाम में लीन रखता हूँ। जिस तरह कामी का पर-नारी में, जुआरी का कौड़ियों में, चौपड़ खेलनेवाले का पासे में तथा सुनार का सोने में ध्यान होता है, मेरा ध्यान सदैव प्रभु में रहता है।

ऐसे राम ऐसे हेरौं। राम छांडि चित अनत न फेरौ॥ टेक॥[90]
ज्यूं विषई हेरै परनारी। कौडा डारत फिरै जुवारी॥[91]
ज्यूं पासा डारै पसवारा। सोना घडता हरै सोनारा॥[92]
जत्र जाउं तत्र तू ही रामा। चित चिंउंट्या प्रंणवै नामा॥[93]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 58

पांणीया बिन मीन तलफै

नामदेव जी कहते हैं: जिस तरह पानी के बिना मछली और बछड़े के बिना गाय तड़पती है, उसी तरह राम-नाम के बिना मेरा मन तड़पता है। जिस तरह बछड़ा अपनी माँ के स्तन से दूध के घूँट पीता है, मैं उसी तरह राम-नाम का माखन खाता हूँ। जिस तरह अग्नि से माखन पिघल जाता है, उसी तरह नाम के बिना बेचारा नामा व्याकुल हो जाता है। जिस तरह विषयी का ध्यान सदैव पर-नारी में रहता है, नामदेव के हृदय में परमेश्वर के नाम का प्रेम समाया रहता है।

पांणीयां बिन मीन तलफै। ऐसे रांम नांम बिन बापुरौ नामा॥ टेक॥
तन लागिलै ताला बेली। बछा बिन गाइ अकेली॥[94]
जैसे गाइ का बछा छूटिला। थन लागिलै मांषन घूंटिला॥

मांषन मेंल्हिलै ताती धांमा। ऐसे रांम नांम बिन बापुरो नांमा॥[95]
जैसे बिषई चित पर नारी। ऐसे नांमदेव प्रीति मुरारी॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 59

जे न भजै नर नारांइना

नामदेव जी कहते हैं: जो लोग प्रभु की भक्ति नहीं करते, मैं उनका मुँह नहीं देखना चाहता। जो अपना समय प्रभु की भक्ति के बिना व्यर्थ गँवा देते हैं और जिनके अन्दर प्रभु का प्रेम नहीं है, वह पशुओं के समान हैं। प्रभु के भक्तों के लिये परायी स्त्री विष के समान होती है। जो लोग पर-धन और पर-नारी का त्याग कर देते हैं, प्रभु उनके निकट से निकट है। जिस प्रकार नाक के बिना सुन्दरता के बत्तीस लक्षण व्यर्थ होते हैं, उसी तरह प्रभु के प्रेम और उसके नाम के बिना मनुष्य कुरूप दिखाई देता है।

जे न भजै नर नारांइना। ताका मैं न करौं दरसना॥ टेक॥
जाहिं सवारे आवहिं सांझ। ते नर गिनिए पसुवा मांझ॥[96]
जिनके हरि नही अभिअंतरा। जैसे पसवा तैसे नरा॥
जैसी संतौ विष की डरी। तैसी पर घर की सुंदरी॥
परधन परदारा परहरी। तिनके निकटि बसै नरहरी॥
प्रणवत नामदेव नांका बिना। न सोहै बतीस लक्षनां॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 125

लाधौ तौ लाधौ मैं राम नांम लाधौ

नामदेव जी कहते हैं कि मैंने राम-नाम को रेशम की डोर में पिरोकर गले का हार बना लिया है। नाम ही मात्र सार-पदार्थ है। इसके सुमिरन द्वारा जीव भव-जल से पार हो जाता है।

लाधौ तौ लाधौ मैं राम नांम लाधौ।[97]
प्रेमै पाटै सुत्रै पोयौ, कंठि लै बांधौ॥ टेक॥[98]

राम नाम ततसार। सुमरि सुमरि जन उतरै पार॥
रामं जननी राम पिता। राम बंधू भौ तारिता॥
भणत नांमदेव हरि गुण गाऊं। बहुरि न जोनी संकुट आऊं॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 88

माधौ भीतरि मार दुहेली

नामदेव जी कहते हैं: हे प्रभु! मैं निर्बल हूँ, मेरे अन्दर असहनीय पीड़ा समाई हुई है। आप जगत् के स्वामी हैं। यदि मालिक खेत की रक्षा नहीं करेगा, तो खेत का बचाव कैसे होगा? आप ही सच्चे वैद्य हैं और आप ही सच्ची औषधि और मन्त्र हैं। बिना आपकी सहायता से जन्म-मरण का असाद्य रोग दूर नहीं हो सकता। जिन पर आपकी कृपा हो जाती है, वह सब दुःखों से मुक्त हो जाते हैं। आप मुझ पर भी कृपा करके मेरे दुःख का नाश कर दो।

माधौ भीतरि मार दुहेली।[99]
अबला कौ बल कहा गुंसाई। परतषि जाइ न पेली॥ टेक॥[100]
ऐ अनेक मै एक गुसाई। कहौ कहा बस मेरा।
षेत की पहुंचि कहां लौ राषै। षसम न करही फेरा॥
तुम से बैद न औषदि औरै। मंत्र और नहीं जाना।
व्याधि असाधि दयानिधि। पचि पचि गये सयांना॥
जिनकूं तुम हरि कारी कीन्हीं। बिथा औरि नहीं व्यापी।[101]
नांमदेव कहै नहीं बस मेरा। कृपा करौ दुष कापी॥[102]

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 96

लागी जनम जनम की प्रीति

इस पद में प्रभु के भक्त के प्रति प्रेममय कोमल भाव अति सुन्दर शैली में प्रकट किये गए हैं। नामदेव जी कहते हैं: मेरे अन्दर अनन्त जन्मों से प्रियतम का प्रेम समाया हुआ है। कोई उसे जाकर यह सन्देश दे कि तुम्हारे दर्शन

से मेरा हृदय शान्त हो जाएगा। जिसकी जिसके साथ प्रीति होती है, उसका ध्यान उसके सिवाय किसी दूसरे की ओर नहीं जाता। भले ही सागर सामने फैला हो, पपीहा उसकी ओर ध्यान नहीं देता, उसे जब भी शान्ति मिलती है, स्वाति बूँद से मिलती है। चन्द्रमा आकाश में लाखों कोस दूर होता है, परन्तु धरती पर कुमुदिनी उसको देखते ही खिल जाती है। मेरे प्रभु! आप मुझे दर्शन दो ताकि मेरा वियोग का दुःख दूर हो जाए।

लागी जनम जनम की प्रीति, चित नहीं बीसरै रे॥ टेक॥
जेन्है मुषडौ दीठै सुष थाई, तेन्हें कोई जाइ कहौ रे॥[103]
जासों मन बांधी प्रीति अपार, अपरछन थई रह्यो रे॥
भर्‌यौ सरवर लहर्‌या जाइ, धायौ नहीं पपीहरौ रे॥
तेन्हौ घन बिन तृपति न थाइ जोवौ तेन्हौ नेहरौ रे॥[104]
दोइ लष चंदल दूरि कमोदनि बिगसै रे॥[105]
जन नामदेव नौ स्वामी दीन दयाल, ते बेदनि लहै रे॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 136

इन औसर गोबिंद भजि रे।

नामदेव जी उपदेश देते हैं: मेरे प्यारे! तुम्हें मानव-जन्म का अमूल्य जन्म प्राप्त हुआ है। माया के फँदे में मत फँसो। प्रभु के भजन द्वारा उससे मिलाप करने का प्रयत्न करो। प्रभु का नाम भव-सागर से पार ले जानेवाली नौका है। यह वह विमान है जो बिना किसी दूसरी करनी के जीव को प्रभु के धाम में ले जाता है। आत्मारूपी हंस शरीररूपी पिंजरे में क़ैद है। यह केवल प्रभु के नाम के सुमिरन द्वारा ही इस पिंजरे से छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

इन औसर गोबिंद भजि रे।
यह परपंच सकल बिनसैगे माया का फंदन तजि रे॥ टेक॥
नांव प्रताप तिरे जठ जल मैं मांगत नांव कीयों हठ रे॥
बिन सेवा बिन दान पुनि बिन चाढ़ि विमांन सकल सझ रे॥

तन सरवर एक हंस बसेत हैं ताहूं काल करत फंद रे।
नामदेव भनै निरंजन का गुन, राम सुमिरि पिंजरा सझिरे॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 174

माधो जी कहा करुं या मन कौ।

नामदेव जी कहते हैं: हे प्रभु! मेरा चंचल मन मेरे वश में नहीं है। मैं अनेक यत्न करके इसे अन्दर में स्थिर करके नाम के अमृत की धारा के साथ जोड़ने का यत्न करता हूँ, लेकिन यह फिर मुँह-ज़ोर होकर इन्द्रियों के भोगों तथा विषय-विकारों की विष की ओर भागता है। लाख समझाने पर भी यह समझता नहीं। मेरी आप से विनती है की आप ही मेरे ऊपर कृपा करें ताकि मैं मन को वश करने में सफल हो जाऊँ।

माधो जी कहा करुं या मन कौ।
मन मैमत नहीं बस मेरौ बरजत हार्‌यौ दिन कौ॥ टेक॥
स्वांति प्रमोधि लै घरि आंऊं धीर पकरि बैठाऊं।
पीछै हीतै मतौ उपावै बहुरि न इहि घरि आऊं॥
अम्रत झांडि बिषै क्यूं ध्यावै, करत आप मनि मायौं।
कहै सुनै की कछू न मानै अनेक बार समझइयो॥
कब लग तंत रहूं या मनकै जतन कीया नहीं जाई।
या अरदास करै जन नामौं, सुनि लीज्यौं राम राई॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 175

रामनांम मैं पिंड पषाल।

नामदेव जी कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रभु के नाम द्वारा मन को निर्मल बना लेता है, उसको दोबारा मल नहीं लगती। राम-नाम धोबी की शिला के समान है, जिस पर मन का वस्त्र साफ़ हो जाता है।

रामनांम मैं पिंड पषाल।[106]
मल नहीं लागै जपत गोपाल॥ टेक॥

रामनाम डूंगर सी सिला।[107]
धोबिया धोवै अंतरि मला॥
बरणांश्रम नाना मती।
नांमदेव का स्वामी कंबलापती॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 129

पांडे मोंहि पढावहु हरी

भक्त प्रह्लाद पण्डित से कहते हैं: हे पण्डित! मुझे तेरी बाहरी विद्या की आवश्यकता नहीं है। तू मुझे राम-नाम का पाठ पढ़ा। बिना राम-नाम के बाक़ी सब विद्या व्यर्थ है। राम-नाम ही भव-सागर से पार जाने का सच्चा साधन है। हे पाण्डे! मुझे पोथियों अथवा धर्म-ग्रन्थों के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। मैं तो राम-नाम के जाप से ही भव-सागर से पार हो जाऊँगा।

पांडे मोंहि पढावहु हरी। विद्या अपनी राषउ धरी॥ टेक॥
बारह अक्षर की बाहर खड़ी। हरि बिन पढिबे की आषड़ी॥
ररौ ममौ दोऊ अषिरा। पार उतारै भव सागरा॥
हम तुम पांड़े कैसा बाद। रामनाम पढ़िहैं प्रहिलाद॥
पतरा पोथी परहा करौ। रामनाम जपि दुस्तर तरो॥
थंभा मांहि प्रगट्यो हरी। नामदेव कौ स्वामी नरहरी॥

सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 127